MAHL-102

मध्यकालीन कविता

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय–हल्द्वानी 263139
फोन नं : 05946–261122, 261123
टोल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232 ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

विशेषज्ञ समिति

प्रो. एच.पी. शुक्ला **निदेशक– मानविकी विद्याशाखा** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही'** निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, रामगढ़, नैनीताल
प्रो. एस.डी. तिवारी विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढ़वाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	**डॉ. जितेन्द्र श्रीवास्तव** हिन्दी विभाग इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि. दिल्ली
प्रो. डी.एस. पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल	**प्रो. नीरजा टंडन** हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं सम्पादन

डॉ. शंशाक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**डॉ. राजेन्द्र कैड़ा** अकादमिक एसोसिएट, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. पुनीत कुमार राय हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय	**1,2,3**
डॉ. राजेन्द्र कैड़ा अकादमिक परामर्शदाता, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**4,5,6**
डॉ. अधीर कुमार, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर	**7,8**
डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी हिंदी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर	**9,10**
डॉ. शंशाक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**11**
प्रो. चन्द्रकला रावत हिंदी विभाग, डी.एस.बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल	**12,13**
डॉ. निर्मला ढ़ैला हिंदी विभाग, डी.एस.बी. परिसर, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल	**14,15**

मुद्रण : मई–2016 **ISBN 978-93-84632-68-7**

कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण : जून 2012, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

प्रकाशक निदेशालय : अध्ययन एवं प्रकाशन (उ.मु.वि.वि.) – 263139
mail : studies@uou.ac.in
मुद्रक : दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर मुद्रित प्रतियाँ 1000

अनुक्रम

MAHL-102

मध्यकालीन कविता

		पृष्ठ संख्या
खण्ड –1	**भक्तिकालीन कविता : स्वरूप एवं प्रक्रिया**	
इकाई 1	भक्तिकालीन कविता का उदय	1–21
इकाई 2	भक्तिकालीन कविता : प्रक्रिया एवं विकास	22–43
इकाई 3	भक्तिकालीन कविता : विविध शाखाएँ	44–66
खण्ड –2	**भक्तिकालीन कविता: पाठ एवं आलोचना**	
इकाई 4	कबीर : जीवन एवं साहित्य	67–75
इकाई 5	कबीर : पाठ एवं आलोचना	76–92
इकाई 6	सूरदास : साहित्य एवं आलोचना	93–119
इकाई 7	जायसी : जीवन एवं साहित्यालोचना	120–133
इकाई 8	तुलसी : परिचय, पाठ एवं आलोचना	134–150
इकाई 9	मीराबाई : पाठ एवं आलोचना	151–171
इकाई 10	नानक : परिचय, पाठ एवं आलोचना	172–191
खण्ड –3	**रीतिकालीन कविता : परिचय, पाठ एवं आलोचना**	
इकाई 11	रीतिकाल : परिचय एवं आलोचना	192–206
इकाई 12	बिहारी : परिचय, पाठ एवं आलोचना	207–232
इकाई 13	केशवदास : परिचय, पाठ एवं आलोचना	233–255
इकाई 14	घनानन्द : परिचय, पाठ एवं आलोचना	256–276
इकाई 15	मतिराम : परिचय, पाठ एवं आलोचना	277–292

इकाई 1 भक्तिकालीन कविता का उदय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण
1.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश
  1.4.1 राजनीतिक परिस्थिति
  1.4.2 आर्थिक परिस्थिति
  1.4.3 सामाजिक परिस्थिति
  1.4.4 सांस्कृतिक परिस्थिति
1.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप
1.6 भक्ति का उदय
1.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत
  1.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद
  1.7.2 द्वैतवाद
  1.7.3 शुद्धाद्वैतवाद
  1.7.4 द्वैताद्वैतवाद
1.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार
  1.8.1 संत काव्य का दार्शनिक आधार
  1.8.2 सूफी मत
1.9 भक्ति आन्दोलन
  1.9.1 भक्ति आंदोलन: उदय एवं विकास
  1.9.2 भक्ति आंदोलन: उदय के कारण
  1.9.3 भक्ति आंदोलन: महत्व
1.10 भक्ति कालीन कविता का उदय
1.11 सारांश
1.12 शब्दावली
1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम लोग भक्ति कविता के आधार एवं जिस परिवेश में भक्ति कविता का जन्म होता है, की चर्चा करेंगे। साहित्य में भक्ति की धारा का प्रादुर्भाव सहसा नहीं होता। पूर्व परम्परा एवं युगीन परिस्थितियों दोनों मिलकर भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य को जन्म देती हैं। इस इकाई के अंतर्गत भक्तिकाल सीमांकन एवं नामकरण, भक्तिकालीन युग एवं परिवेश, भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप भक्ति का उदय, भक्ति सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत, निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार, भक्ति आंदोलन, भक्तिकालीन कविता का उदय-की विस्तृत विवेचना की जाएगी। दरअसल यह इकाई भक्तिकालीन कविता की पूर्व पीठिका के तौर पर है। उपरोक्त विभिन्न पक्षों के क्रमवार विवेचन द्वारा भक्तिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं धाराओं, उसकी पृष्ठभूमि को बेहतर ढंग से समझ पाना संभव होगा।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- पूर्व मध्यकाल की समय-सीमा एवं नामकरण को जान सकेंगे।
- भक्तिकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति के अर्थ एवं स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता के दार्शनिक आधार को बतला सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन के उदय, विकास एवं महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के उदय की व्याख्या कर सकेंगे।

1.3 भक्तिकाल: सीमांकन एवं नामकरण-

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में पूर्व-मध्यकाल की समय सीमा 1318 ई. से 1643 ई. तक निर्धारित की है। आचार्य शुक्ल के इस सीमांकन को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। आदिकालीन सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में दिखलाई पड़ने वाले भक्ति तत्व के आधार पर न तो इस काल की सीमा को पीछे खींचा जा सकता है और न ही रीतिकालीन, भक्तिकालीन रचनाओं के आधार पर इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। क्योंकि सिद्ध, नाथ, जैन साहित्य में भक्ति का वह उन्मेष, वह तन्मयता नहीं दिखलाई पड़ती, जो भक्ति काव्य में निहित हैं। दूसरी तरफ रीतिकालीन भक्तिपरक रचनाएँ सरस तो हैं, किंतु उनमें अधिकांशतः भक्तिकाव्य का ही अनुकरण है। अतः उपलब्ध सामग्री के आधार पर आचार्य शुक्ल का सीमांकन ही सर्वथा उचित और ग्राह्य हैं। मोटे तौर पर हम पूर्व मध्यकाल को 14वीं सदी के मध्य

से 17वीं सदी के मध्य तक मान सकते है। क्योंकि आदिकालीन रचना प्रवृत्तियों का प्राधान्य 14वीं सदी के मध्य तक दिखलाई पड़ता है और 17वीं सदी के मध्य तक आते-आते साहित्य में भक्ति के स्थान पर रीति कालीन प्रवृत्तियों की प्रबलता दृष्टिगोचर होने लगती है।

पूर्वमध्यकाल का आचार्य शुक्ल ने भक्तितत्व की प्रधानता के आधार पर भक्ति काल नामकरण किया है। हम देखते हैं कि इस युग के कविता की मूल संवेदना भक्ति है। चाहे संतकाव्य हो या प्रेमाख्यानक काव्य, रामभक्ति मार्ग हो या कृष्ण भक्तिमार्ग -सबमें भक्ति की ही केन्द्रीयता है, भले ही भक्ति के स्वरूप में भिन्नता है। भक्ति के अतिरिक्त इस युग में वीरगाथा, नीति और रीतिनिरूपण की प्रवृत्ति भी मिलती है। किंतु भक्तिपरक रचनाओं की तुलना में ऐसी रचनाओं की संख्या कम है। नीति तो बहुधा भक्ति के साथ संयुक्त होकर आई है। अतः पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल कहना उचित ही है।

1.4 भक्तिकालीन युग एवं परिवेश

युगीन परिस्थितियाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों को निर्मित करती है, उन्हें प्रेरित, प्रभावित करती हैं। रचनाकार जिस युग एवं परिवेश की उपज होता है। वह उससे उदासीन नहीं रह सकता। वह रचना में अपने युग के अभिव्यक्त ही नहीं करता, बड़ा रचनाकार युगीन सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने युग को नए मूल्य-मान, नया स्वप्न-संकल्प भी देता है। पूर्व मध्यकाल राजनीतिक सत्ता, सामाजिक अवस्था, सांस्कृतिक परिवेश में बड़े परिवर्तनों और उलट-फेर का काल है। मुसलमानों के आक्रमण एवं मुसलमानी सत्ता की स्थापना से पूरे समाज पर एक गहरा प्रभाव पड़ा, नयी आर्थिक-सामाजिक स्थितियाँ निर्मित हुई जो भक्ति आंदोलन के उदय में सहायक हुई। अतः भक्ति कालीन कविता को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का परिचय आवश्यक है। आइए हम क्रमवार इन्हें देखे-

1.4.1 राजनीतिक परिस्थिति

भक्तिकाल राजनीतिक दृष्टि से तुगलकवंश से लेकर मुगल बादशाह शाहजहाँ के शासन तक का काल है। दसवीं शताब्दी में पश्चिममोत्तर भारत में तुर्कों के कई आक्रमण हुए, तत्कालीन भारतीय राजाओं की आपसी फूट एवं प्रतिस्पर्धा के कारण धीरे-धीरे मुसलमानों का राज उत्तर भारत में स्थापित हो गया। पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गोरी के बीच 1192 में लड़े गए तराइन के युद्ध में गोरी की विजय होती है। पृथ्वीराज उस समय का सबसे प्रतापी राजा था। भारतीय इतिहास में यह युद्ध काफी निर्णायक माना जाता है, इस युद्ध ने भारत में तुर्कों की सत्ता स्थापित करने की जमीन तैयार कर दी। 1194 के चंदावर युद्ध में कन्नौज के शासक जयचंद को भी गोरी ने परास्त कर दिया। अब तुर्कों की ताकत से टकराने वाला कोई नहीं था। गोरी विजित भारतीय क्षेत्रों का शासन अपने गुलाम सेनापतियों को सौंपकर वापस गजनी लौट गया। 1206 में तुर्की गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में गुलाम वंश की नींव डाली। उधर गजनी में चल्दोज गोरी का उत्तराधिकारी बना, उसने दिल्ली पर अपना दावा पेश किया। तभी से दिल्ली सल्तनत ने गजनी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इससे मध्य एशिया की राजनीति से अलग दिल्ली

सल्तनत का अपना स्वतंत्र विकास हुआ। तुर्कों की अपनी सत्ता स्थापित करने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। उन्हें तुर्की अमीरों के आतंरिक विरोध, राजपूत राजाओं और विदेशी आक्रमण से खतरा था। किंतु अन्ततः सभी बाधाओं पर काबू पा लिया गया और एक सुदृढ़ और विस्तृत तुर्की राज्य बना। बलबन गुलाम वंश का सबसे प्रभावशाली शासक सिद्ध हुआ। प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो एवं अमीर हसन उसी के दरबार में रहते थे।

1290 से 1320 तक दिल्ली सल्तनत पर खिलजी वंश का शासन रहा। अदाउद्दीन खिलजी (1296-1316) ने अपनी आक्रामक नीति से जहाँ दिल्ली सल्तनत को दक्षिण तक फैलाया वहीं बाजार नियंत्रण, राजस्व-व्यवस्था के पुर्नगठन द्वारा शासन-व्यवस्था को भी मजबूती प्रदान किया। अमीर खुसरों का उसका राजाश्रय प्राप्त था। 1320 में गयासुद्दीन तुगलक ने तुगलक वंश की नींव डाली। गयासुद्दीन के पश्चात् मुहम्मद बिन तुगलक उत्तराधिकारी बना। मध्यकालीन सुल्तानों में वह सर्वाधिक योग्य, शिक्षित और विद्वान था। अपनी दो योजनाओं (1) दिल्ली से दौलताबाद राजधानी परिवर्तन (2) सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन के कारण वह इतिहास में प्रसिद्ध है। अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता उसी के शासन काल में भारत आया था। उसी के शासनकाल में विजयनगर और बहमनी राज्य नामक दो स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आते हैं। मुहम्मद बिन तुगलक के पश्चात् फिरोज तुगलक दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बैठा। वह अपने सुधार-निर्माण कार्यों के लिए प्रसिद्ध है, उसने लगभग 300 नये नगरों की स्थापना की, जिनमें हिसार, फिरोजाबाद, फतेहाबाद, जौनपुर, फिरोजपुर आदि प्रमुख हैं। तुगलक वंश के पश्चात् 1398 में तैमूर का आक्रमण होता है, उसने दिल्ली को तहस-नहस कर दिया। दिल्ली सल्तनत पर क्रमशः सैय्यद और लोदी वंश का शासन रहा। अंतिम लोदी सुल्तान इब्राहिम शाह लोदी के समय में पंजाब के शासक दौलत खां लोदी के निमंत्रण पर बाबर ने भारत पर आक्रमण। पानीपत के प्रथम युद्ध 1526 ई. में उसने इब्राहिक शाह लोदी को पराजित कर मुगल वंश की नींव डाली। पानीपत के पश्चात् खानवा, चंदेरी और घाघरा के युद्धों में विजय हासिल कर उसने मुगल राज्य को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बना दिया। बाबर एक सफल सेनानायक, साम्राज्य निर्माता ही नहीं अपितु एक साहित्यकार भी था, उसने 'बाबरनामा' नाम से अपनी आत्मकथा लिखी। 1530 में बाबर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र हुमायूँ उत्तराधिकारी बना। उसका शासनकाल संकटों और चुनौतियों से भरा रहा। 1540 में बिलग्राम युद्ध में अफगान वंशीय शेरशाह सूरी ने हुमायूँ को पराजित कर आगरा, दिल्ली पर कब्जा कर लिया। हुमायूँ को सिंध भागना पड़ा। जहाँ उसे 15 वर्षों तक निर्वासित जीवन जीना पड़ा। शेरशाह एक कुशल योद्ध और शासक था। कुशल प्रशासन और केन्द्रीकृत व्यवस्था द्वारा उसने व्यापार को बढ़ावा दिया, उसने ग्रांड ट्रक रोड की मरम्मत करवाई, पाटिलपुत्र को पटना के नाम से पुनः स्थापित किया, डाक प्रथा का प्रचलन करवाया। 1545 में कालिंजर के किले को जीतने के क्रम में उसका असामयिक निधन हो गया। मौका पाकर 1555 में हुमायूँ पंजाब के शूरी शासक सिकंदर को पराजित कर पुनः दिल्ली पर कब्जा करने में सफल रहा। 1556 में पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई। उसी वर्ष पंजाब के कलानौर में 13 वर्ष की अल्पायु में हुमायूँ के पुत्र अकबर का राज्याभिषेक हुआ। 1556-60 तक बैरम खाँ उसका संरक्षक रहा। अकबर के शासनकाल में मुगल साम्राज्य

भलीभाँति भारत में स्थापित हो गया। उसका साम्राज्य पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में असम तक, उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में अहमद नगर तक विस्तृत था। वह दूरदर्शी, उदार और साहित्य-कला का संरक्षक शासक था। अकबर के पश्चात् जहाँगीर (1605-1627) और शाहजहाँ (1628-58) बादशाह बनते हैं। इनका शासनकाल प्रायः शांतिपूर्ण रहा यह व्यापार-वाणिज्य साहित्य, कला, संस्कृति के उन्नति का काल था। सल्तनत काल में विजयनगर, बहमनी राज्य, जौनपुर, काश्मीर बंगाल, मालवा, गुजरात, मेवाड़, खानदेश स्वतंत्र राज्य भी थे, कालांतर में इन पर मुगल साम्राज्य का आधिपत्य हो गया।

1.4.2 आर्थिक परिस्थिति

सल्तनत काल एवं मुगल काल में स्थिर एवं केन्द्रीकृत व्यवस्था के कारण अर्थव्यवस्था में प्रगति हुई। कुछ अपवादों को छोड़ कर यह कालखण्ड प्रायः शांतिपूर्ण था। शासन व्यवस्था सुव्यवस्थित थी, राजस्व वसूली की एक नियमित व्यवस्था थी। सुचारू प्रशासन के लिए मुगल साम्राज्य का बँटवारा सूबों में, सूबों का सरकार में, सरकार का परगना या महाल में, महाल का जिला या दस्तूर में, दस्तूर ग्राम में बँटे थे। केन्द्रीय प्रशासन के साथ स्थानीय शासन व्यवस्था भी थी। ये परिस्थितियाँ आर्थिक प्रगति में सहायक सिद्ध हुई। अलाउद्दीन, शेरशाह सूरी, अकबर ने भूराजस्व प्रणाली को व्यवस्थित बनाया। अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी। कृषि के विकास के लिए अलग से कृषि विभाग (दीवाने को ही) की स्थापना, उत्पादकता के हिसाब से भूमि का वर्गीकरण, सिंचाई हेतु नहरों का निर्माण कराया गया।

इस काल में आगरा, पटना, दिल्ली, जौनपुर, हिसार आदि कई नए नगरों का उदय हुआ। इससे कामगार, कारीगर वर्ग को रोजगार के लिए अवसर मिले और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ। नए नगर व्यापार-वाणिज्य के केन्द्र के रूप में भी विकसित हुए। तुर्कों के आगमन से भारत में कई नयी तकनीकि भी आई, जैसे चरखा, धुनकी, रहत, कागज, चुम्बकीय कुतुबनुमा, समयसूचक उपकरण, तोपखाना आदि। इसका प्रभाव उद्योग-धंधे एवं व्यापार पर पड़ा। वस्त्र उद्योग, धातु खनन, हथियार निर्माण, कागज निर्माण, इमारती पत्थर का काम, आभूषण निर्माण उस समय के प्रमुख उद्योग धंधे थे। आगरा नील उत्पादन के लिए, सतगाँव रेशमी रजाईयों के लिए, बनारस सोने, चाँदी एवं जड़ी काम के लिए, ढाका मलमल के लिए प्रसिद्ध था।

इस काल में व्यापार-वाणिज्य की खूब उन्नति हुई। व्यापक पैमाने पर नयी सड़कों का निर्माण एवं पुरानी सड़कों की मरम्मत कराया गया। सड़कों के किनारे सराय बनवाये गए। राहगीरों एवं व्यापारियों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। इसका सीधा प्रभाव व्यापार पर पड़ा। देशीय व्यापार के साथ विदेशी व्यापार की स्थिति भी अच्छी थी। यहाँ से सूती एवं रेशमी वस्त्र, चीनी, चावल, आभूषण आदि का निर्यात होता था। देवल अंतर्राष्ट्रीय बंदरगाह के रूप में प्रसिद्ध था।

निस्संदेह मध्यकाल में उद्योग, व्यापार में प्रगति हुई, कृषि में सुधार हुआ। किंतु गाँवों में किसानों की स्थिति अच्छी नहीं थी। लगान और अकाल के कारण उन्हें काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ता था। अकाल और भूख से बेहाल किसान की पीड़ा को तुलसी ने व्यक्त किया है- 'कलि बारहि बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।' उस समय यदि एक वर्ग खुशहाल था तो दूसरा वर्ग भूख, गरीबी, बेकारी से त्रस्त था, तुलसी लिखते हैं-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीघमान सोच बस,
कहै एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी'।।

1.4.3 सामाजिक स्थिति

इस काल में हिंदू समाज वर्णों और जातियों में विभक्त था। सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था, शूद्रों की निम्न स्थिति थी। जातिगत श्रेष्ठता एवं छुआछूत की भावना तत्कालीन परिवेश में व्याप्त थी। मुसलमानों के आक्रमण एवं उनकी सत्ता स्थापित होने से परंपरागत भारतीय समाज को एक धक्का लगा। सामंतों एवं पुरोहितों की स्थिति कुछ कमजोर हुई। एक तरफ जहाँ परम्परागत सामाजिक संरचनाको बचाये रखने के लिए वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा का कठोरता से पालन करने पर जोर दिया गया, वहीं दूसरी तरफ समानता और आपसी भाईचारे पर आधारित इस्लाम के प्रति हिंदू समाज की निचली जातियाँ आकर्षित हुई। बहुतों ने धर्मांतरण कर इस्लाम स्वीकार कर लिया। धर्मांतरण स्वेच्छा में भी हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा बलात् भी कराया गया। ऊँच-नीच की भावना सिर्फ हिंदू समाज में ही नहीं मुस्लिम समाज में भी विद्यमान थी। अफगानी, तुर्की, ईरानी एवं भारतीय मुसलमानों में नस्लगत श्रेष्ठता एवं प्रतिस्पर्धा की भावना थी। मुसलमान शासक भारत में आक्रांता के रूप में आए थे, हिंदुओं में उनके प्रति अलगाव, विरोध, शंका का भाव होना स्वाभाविक था। किंतु दोनों कौमों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान एवं सामंजस्य भी बढ़ रहा था। सूफियों का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान है। मुस्लिम शासकों एवं राजपूत शासकों में वैवाहिक संबंध भी स्थापित हुए।

उस काल में सामान्यतः संयुक्त परिवार का प्रचलन था। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। हिन्दू समाज में बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा प्रथा, सती प्रथा प्रचलित थी। मुस्लिम समाज में भी स्त्रियों की स्थिति हिंदू स्त्रियों की तरह ही थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस समय दास प्रथा का भी प्रचलन था।

1.4.4 सांस्कृतिक स्थिति-

संस्कृति किसी देश समाज की मूलभूत प्रवृत्तियों उसकी सौन्दर्यबोधात्मक एवं मूल्यबोधों क्रियाकलापों-उपलब्धियों, उसके आचार-विचार का समन्वित रूप हैं। धर्म, कला, साहित्य, संगीत, शिल्प आदि संस्कृति के विभिन्न तत्व हैं। मध्यकालीन भारतीय समाज

धर्मप्राण समाज है। हिंदू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, सिक्ख उस समय प्रचलित प्रमुख धर्म थे। बहुसंख्यक जनता हिंदू धर्मावलंबी थी। हिंदू धर्म भी शैव, शाक्त, वैष्णव आदि कई संप्रदायों में विभक्त था। इन विभिन्न संप्रदायों में परस्पर संघर्ष एवं सामंजस्य दोनों स्थितियाँ दिखलाई पड़ती हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, अवतारवाद, बहुदेव उपासना, गौ एवं ब्राह्मण का सम्मान, शास्त्रों के प्रति श्रद्धा, कर्मफलवाद, स्वर्ग-नरक की अवधारणा, आदि हिंदू धर्म एवं समाज की विशेषता थी। पश्चिम भारत में जैनियों की बहुलता थी, बौद्ध धर्म को मानने वाले पूर्वी भारत में ज्यादा थे। बौद्ध धर्म तंत्रयान, मंत्रयान, ब्रजयान आदि शाखाओं में विभक्त था, उसका मूल स्वरूप विकृत हो गया था और वह कई प्रकार की रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों का शिकार हो गया था। फलतः उसका पहले जैसा प्रभाव और आकर्षण नहीं रह गया था। सिद्धों और नाथों का तत्कालीन समाज पर गहरा असर था। धर्म का जहाँ तक शास्त्रीय रूप था, वहीं उसका एक लोकवादी रूप भी था स्थानीय देवताओं की पूजा, जादू-टोना आदि इसी के अंतर्गत आता है। मध्यकाल में साधनाओं एवं संप्रदायों की एक बाढ़ सी दिखलाई पड़ती है। धर्म के आवरण में मिथ्याचार, अनाचार, व्यभिचार भी पनप रहा था, धर्मक्षेत्र में एक अराजकता-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। इन्हीं परिस्थितियों के बीच भक्ति आंदोलन का उदय और विकास होता है, जिसने भारतीय समाज को काफी गहरे तक प्रभावित किया।

इस काल में साहित्य, कला, वास्तु, संगीत में प्रगति दिखलाई पड़ती है। इस्लामी एवं भारतीय संस्कृति के मेल से कला की नयी शैलियों का जन्म होता है।

1.5 भक्ति का अर्थ एवं स्वरूप

भक्ति पूर्व-मध्यकालीन साहित्य का मूलभूत तत्व है। आइए हम भक्ति को समझने की कोशिश करते हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, प्रेम, समर्पण की भावना ही भक्ति हैं। 'भक्ति' शब्द की निष्पत्ति 'भज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'भजना'। अर्थात् ईश्वर का चिंतन-मनन, उसके गुणों का श्रवण-कीर्तन, उसकी सेवा करना। काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि सांसारिक प्रवृत्तियों का शमन कर ईश्वर के प्रेम में डूबे रहना। भारतीय चिंतन परम्परा में ईश्वर-प्राप्ति, मोक्ष के तीन मार्ग बतलाए गए हैं-कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म का सम्बन्ध व्रत, तप, जप, तीर्थ यज्ञादि कर्मकाण्डों से जिनका सम्यक् व्यवहार कर मनुष्य ईश्वर के सानिध्य-साक्षात्कार का लाभ प्राप्त करता है। ज्ञान का सम्बन्ध ईश्वर विषयक तत्व-चिंतन से है, इसमें सम्यक ध्यान-समाधि द्वारा व्यक्ति ब्रह्मानंद को प्राप्त करता है। भक्ति विशुद्ध भाव मूलक है, इसके लिए न तो कर्मकाण्ड अपेक्षित है और न ही तत्व-चिंतन। भक्ति मार्गमें ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा-समर्पण द्वारा ही मनुष्य मुक्तिपद को प्राप्त करता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को 'परम प्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है- 'सात्वस्मिन परम प्रेमरूपा, अमृतस्वरूप च।' तात्पर्य यह है कि ईश्वर के प्रति परम प्रेम जो अमृत के समान फलदायक है, वही भक्ति है। इस भक्ति को प्राप्त करने पर व्यक्ति सांसारिक इच्छाओं और बंधनों से ऊपर उठ जाता है, वह आनंदमग्न, आत्माराम हो जाता है। नारद मुक्ति सूत्र में

कहा गया है- ''उस परम प्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है। उस भक्ति को प्राप्त करने के बाद मनुष्य को न किसी भी वस्तु की इच्छा रहती है न वह शोक करता है, न वह द्वेष करता है, न किसी वस्तु में ही आसक्त होता है। उस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त करे वह प्रेम में उन्मत्त हो जाता है।'' 'शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र' में 'ईश्वर में परम अनुरक्ति' को भक्ति कहा गया है- ''सा परानुक्तिरीश्वरे''। अर्थात् ईश्वर के प्रति अत्यंत गहरी निष्ठा-प्रेम की अनुभूति-अभिव्यक्ति ही भक्ति है। ईश्वर प्राप्ति के जो कर्म, ज्ञान, भक्ति तीन मार्ग बतलाए गए है, इनमें उत्कट राग की उपस्थिति भक्ति मार्ग में ही होती है। ज्ञान एवं कर्म मार्ग में प्रेम को केन्द्रीय महत्व नहीं दिया गया है। भक्ति पर व्यावहारिक लौकिक दृष्टि से विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति कहा है। भक्ति की व्याख्या करते हुए वह लिखते हैं- ''जब पूजा भाव की बुद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण, कीर्तन, ध्यान आदि में आनंद का अनुभव होने लगे-जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की ओर भी मन आकर्षित होने लगे, तब भक्ति रस का संचार समझना चाहिए।'' (चिंतामणि, भाग-1, पृ0 26) स्पष्ट है कि शुक्लजी के मत में भक्ति के लिए ईश्वर के प्रति सिर्फ प्रेम भाव ही नहीं पूज्य भाव भी होना चाहिए, भक्त ईश्वर की महिमा-महत्व से अभिभूत रहता है, वह उन्हें अपना सर्वस्व अर्पित कर, उन्हीं को अपना सर्वस्व मान लेता है।

भक्ति को ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुगम माध्यम माना गया है। सहज, साध्य होने के कारण ही आचार्यों ने भक्ति को प्रमुखता दी है-'अन्य स्मात् सौलभ्यं भक्तौ।' शास्त्रों में कहा गया है कि कलियुग में केवल ईश्वर के नामस्मरण द्वारा ही जीव का उद्धार हो जाता है वह परम पद को प्राप्त कर लेता है। नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को निष्काम कहा गया है, क्योंकि वह निरोध स्वरूप है। निरोध का अर्थ सांसारिक विषयों-प्रपंचों से विमुख होकर चित्त को पूर्णतया ईश्वरोन्मुख कर देना। भक्त मन, वचन, कर्म से अपना सर्वस्व अर्पित कर प्रभु को भजता है। उसके लिए शास्त्रीय विधि-विधान, लौकिक कर्मों का कोई महत्व नहीं है, भक्ति ज्ञानमूलक, कर्ममूलक न होकर भावमूलक है। नारद भक्ति-सूत्र में कहा गया है- 'वह प्रेमरूपा भक्ति, कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठकर है, क्योंकि वह फलरूपा है अर्थात् उसका कोई अन्य फल नहीं है, वह स्वयं ही फल है।?' भक्ति ही भक्त का चरम लक्ष्य है, वह साधन भी है और साध्य भी। इस भक्ति की प्राप्ति प्रभुकृपा से होती है। भक्ति के लिए प्रभु का गुण श्रवण और कीर्तन-गान अनिवार्य तत्व है। नारद के अनुसार उस परमात्मा की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण समपर्ण और विस्मरण में परम व्यापकता होनी चाहिए- 'नारदस्तु तदर्पिताऽखिला चारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।' भक्ति के स्वरूप के संदर्भ में नारद ने कहा है- 'प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है- गूंगे के स्वाद की तरह।.....वह प्रेम गुणरहित है, कामनारहित है, प्रतिक्षण बढ़ता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है और अनुभवरूप है। उस प्रेम को प्राप्त करके प्रेमी उस प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वर्णन करता है और प्रेम का ही चिंतन करता है अर्थात् अपनी मन-बुद्धि इंद्रियों से केवल प्रेम का ही अनुभव करता हुआ प्रेममय हो जाता है।' आचार्य शुक्ल के अनुसार भक्ति

सांसारिक व्यक्ति के प्रति भी हो सकती है और ईश्वर के प्रति भी। ईश्वरीय भक्ति की विवेचना करते हुए उन्होंने लिखा है- 'भक्ति का स्थान मानव हृदय है- वहीं श्रद्धा और प्रेम के संयोग से उसका प्रादुर्भाव होता है। अतः मनुष्य की श्रद्धा के जो विषय ऊपर कहे जा चुके हैं, उन्हीं को परमात्मा में अत्यंत विशद रूप में देखकर उसका मन खींचता है और वह उस विशद-रूप विशिष्ट का सीमाप्य चाहता है, उसके हृदय में जो सौन्दर्य का भाव है, जो शील का भाव है, जो उदारता का भाव है, जो शक्ति का भाव है उसे वह अत्यंत पूर्ण रूप में परमात्मा में देखता है और ऐसे पूर्ण पुरूष की भावना से उसका हृदय गदगद हो जाता है और उसका धर्मपथ आनंद से जगमगा उठता है। धर्म-क्षेत्र या व्यवहार पथ में वह अपने मतलब भर ही ईश्वरता से प्रयोजन रखता है। राम, कृष्ण आदि अवतारों में परमात्मा की विशेष कला देख एक हिंदू की सारी शुभ और आनंदमयी वृत्तियाँ उनकी ओर दौड़ पड़ती है, उसके प्रेम, श्रद्धा आदि को बड़ा भारी अवलंब मिल जाता है। उसके सारे जीवन में एक अपूर्व माधुर्य और बल का संचार हो जाता है। उसके सामीप्य का आनंद लेने के लिए कभी वह उनके आलौकिक रूप-सौन्दर्य की भावना करता है, कभी उनकी बाल लीला के चिंतन से विनोद प्राप्त करता है, कभी-धर्म-वंदना करता है-यहाँ तक कि जब जी में आता है, प्रेम से भरा उलाहना भी देता है। यह हृदय द्वारा अर्थात् आनंद अनुभव करते हुए धर्म में प्रवृत्त होने हो सुगम मार्ग है।' (चिंतामणि भाग-1, पृष्ठ 31) भक्ति के इस स्वरूप-प्रकृति के कारण ही शुक्ल जी ने भक्ति को ''धर्म की रसात्मक'' अनुभूति'' कहा है। दरअसल भक्ति ईश्वर के प्रति समर्पण की एक रागयुक्त प्रवृत्ति, अवस्था है। भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद्सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति का उल्लेख मिलता है। इसे ही नवधा भक्ति कहा गया है। दरअसल ये प्रभु की भक्ति की विभिन्न प्रक्रियाएं हैं। परम्परा में भक्ति के दो रूप बतलाये गए है- गौणी और परा। गौणी भक्ति के अंतर्गत देवपूजा, भजन-सेवा आदि प्रवृत्तियाँ आती है। पराभक्ति को सर्वश्रेष्ठ और सिद्धावस्था का सूचक माना गया है। गौणी भक्ति को साधकर ही भक्त पराभक्ति की अवस्था में पहुँचता है। गौणी भक्ति के भी दो भेद हैं-वैधी और रागानुगा। वैधी भक्ति शास्त्रानुमोदित विधि विधान पर आधारित है औरा रागानुगा भक्ति का आधार प्रेम अथवा राग है। रामागनुगा भक्ति के दो रूप है-संबंध रूपा और कामरूपा। विभिन्न सांसारिक संबंधों-भावों का ईश्वरोन्मुखीकरण ही सम्बधरूपा भक्ति है। भक्त ईश्वर से विभिन्न संबंध-भाव निवेदित-स्थापित कर भक्ति करता है इसके अन्तर्गत पाँच भावों को स्वीकारा गया है-शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव। कामरूपा भक्ति कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है इसके अंतर्गत भक्त प्रणय या दांपत्य भावना से प्रभु की भक्ति करता है।

अब आप भक्ति के तात्विक स्वरूप से परिचित हो चुके है अब हम भक्ति के उदय की पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करेंगे।

1.6 भक्ति का उदय-

भक्ति की प्रवृत्ति, पद्धति का सम्बन्ध सिर्फ भागवत् धर्म और भक्ति आंदोलन से ही नहीं है। भक्ति का एक क्रमिक विकास होता है। वैसे भक्ति के बीज वेदों में मिलते हैं। विभिन्न प्राकृतिक उपादनों का दैवीकरण, सुख-शांति समृद्धि की कामना से उनकी स्तुति वैदिक ऋचाओं की मूल विशेषता है। ईश्वर की कल्पना, आत्म निवेदन, शरणागत की भावना, दैन्य भाव, श्रद्धा का भाव आदि जो भक्ति की मूलभूत विशेषताएं हैं-ये बातें हमें वैदिक ऋचाओं में भी मिलती हैं। परमात्मा की माता-पिता, बंधु-सखा के रूप में अर्चना की गई है-'प्रभु! तुम्हीं हमारे पिता हो, तुम्हीं हमारी माता हो। हे अनंतज्ञानी! आपसे ही हम आनंद-प्राप्ति की अकांक्षा करते है-

'त्व हि नों पिता वसोत्वं माता शतक्रतो वभूविथ। अद्या ते सुम्नमीमहे (ऋग्वेद 8/98/11)।' पूरी तन्मयता और सर्वस्व सर्मपण की भावना को प्रकट करते हुए ऋग्वेद का ऋषि कहता है-'प्रभो ये हैं तेरे उपासक, तेरे भक्त। ये प्रत्येक स्तवन में, तेरे कीर्तन-गान में ऐसे तन्मय होकर बैठते हैं, जैसे मधुमक्षिकाएँ मधु को चारों ओर से घेर कर बैठ जाती हैं। तेरे अंदर बस जाने की कामना रखने वाले तेरे ये स्तोता अपनी समस्त कामनाओं को तुझे सौंपकर वैसे ही, निश्चिंत हो जाते हैं, जैसे कोई व्यक्ति रथ में निश्चिंत होकर बैठ जाता है।'

में हि ब्रह्मकृतः सुते सचा मधो न मक्ष आसते।
न्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः।। (ऋ. 7/32/2)

वेदों मं ईश्वर की सर्वसमर्थता, उसकी महिमा का बखान, उसके प्रति श्रद्धा निवेदित किया गया हैं-

यो भूतं च भव्यं च सर्व श्चाधितिष्ठति
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः (अथर्ववेद-10 /8/1)

अर्थात् भूत भविष्य और वर्तमान का जो स्वामी है, जो समस्त विश्व में व्याप्त हैं तथा जो निर्विकार आनद प्रदान करने वाला है, उस ईश्वर को मेरा प्रणाम।' उपनिषदों में तत्व-चिंतन की प्रधानता है- किंतु कहीं-कहीं पर भक्ति विषयक बातें भी मिलती है। ऐतरेय, श्वेताश्वतरोपनिषद में भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया हैं, कठोपनिषद में कहा गया है- 'यह आत्मा उत्कष्ट शास्त्रीय व्याख्यान के द्वारा उपलब्ध नहीं किया जाता, मेघा के द्वारा प्राप्त, नहीं होता, बहुत पांडित्य के द्वारा भी नहीं प्राप्त होता। यह जिसको वरण करता है, उसी को प्राप्त होता है। जिसके सामने आत्मा अपने स्वरूप को व्यक्त करता है।'

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष विवृणुते तनू, स्वाम।।'

यहाँ प्रभुकृपा का वर्णन है, जो कि भक्ति का आधार है। भगवत्कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती और भक्ति से ईश्वर की प्राप्ति। भक्ति चिंतन में ईश्वर ही परमतत्व, जगत निर्माता, जगत नियंता, सृष्टि विनाशक है, उसी के द्वारा सृष्टि का सृजन होता है और उसी में सृष्टि विलीन हो

जाती है। छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है 'सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शांत उपासीत।' अर्थात् 'जगत की सभी वस्तुएं ब्रह्म हैं, क्योंकि सभी ब्रह्म से ही उत्पन्न होती हैं, ब्रह्म में ही अवस्थान करती है तथा ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। इस प्रकार चिंतन करते हुए मन को शांत रखकर उपासना करनी चाहिए।' छांदोग्य उपनिषद में ही भक्ति को सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस कहा गया है- 'स एवं रसानां रसतमः परम परार्धे।

उपनिषदों के बाद भक्ति की प्रबल धारा भागवत धर्म के रूप में प्रकट हुई। भागवत धर्म के प्रवर्तन के साथ ही अवतारवाद की अवधारणा का जन्म हुआ बहुदेवोपासना और लीलागान का प्रचलन हुआ। इसमें ईश्वर को ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेज-इन 6 गुणों से युक्त माना गया, जिनके द्वारा वह सृष्टि का निर्माण, भरण-पोषण और संहार करता है। अवतारवाद एवं भक्ति का पुराणों में विस्तृत वर्णन है। इनमें भागवत पुराण मुख्य है। दक्षिण के आलवार नयनार भक्तों ने भक्ति तत्व का प्रचार प्रसार किया, आठवीं सदी में शंकराचार्य के अद्वैत एवं मायावाद के कारण भक्ति का प्रवाह थोड़ा अवरूद्ध होता है। किंतु कालांतर में रामानुजाचार्य, निम्बाकाचार्य, विष्णुस्वामी, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य ने राम-कृष्ण की भक्ति को लोकप्रिय ही नहीं बनाया उसे एक सैद्धांतिक आधार प्रदान कर शास्त्रीय गरिमा भी दी।

इस प्रकार हम देखते है कि भक्ति का तत्व वेद उपनिषद महाभारत, पुराण आदि से होते हुए सतत् प्रवाहमान रहा, निरंतर विकसित होता रहा। भक्ति आंदोलन ने उसे व्यापक और लोकप्रिय बना दिया। अब आप भक्ति के उदय को समझ गए होंगे, वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्ति विषयक सिद्धांतों एवं भक्ति आंदोलन की आगे चर्चा की जाएगी।

1.7 भक्ति संबंधी विभिन्न दार्शनिक सिद्धांत

भक्ति के दार्शनिक पक्ष की स्थापना भक्ति आंदोलन की देन है। 8-9वीं सदी में शंकराचार्य दार्शनिक स्तर पर बौद्धों, जैनों से टकराते हैं और वैदिक धर्म को पुनप्रतिष्ठित करते हैं। शंकर का दार्शनिक सिद्धांत अद्वैतवाद कहलाता है। उनके अनुसार ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या। आत्मा परमात्मा दोनों एक हैं, दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। किंतु सांसारिक माया के कारण मनुष्य आत्मा-परमात के अद्वैत का अनुभव नहीं कर पाता है। ज्ञान द्वारा ही अपने आत्मस्वरूप को जाना जा सकता है। वह ज्ञान मार्गी हैं और निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं। शंकर के अद्वैतवाद और मायावाद का परवर्ती वैष्णव आचार्यों द्वारा विरोध किया गया, उन्होंने ज्ञान की जगह भक्ति को प्रमुखता दी। शंकर ने माया वाद द्वारा जिस जगत को मिथ्या कहकर, खारिज कर दिया था, उस जगत को इन आचार्यों ने सत्य माना, ब्रह्म का अंश मानते हुए उसे प्रभु की लीला भूमि के रूप में देखा। आइए, अब हम भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के सिद्धांतों से अवगत हों।

1.7.1 विशिष्टाद्वैतवाद

आचार्य रामानुजाचार्य ने अवतारी राम को उपास्य देव स्वीकार कर विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की स्थापना की। उनकी दृष्टि में पुरुषोत्तम ब्रह्म सगुण और सविशेष है। ब्रह्म चित्त और अचित विशिष्ट है। ब्रह्म की तरह जीव और माया भी सत्य है। इस भक्ति मार्ग को श्री संप्रदाय भी कहते है। श्री अर्थात् लक्ष्मी इसकी आदि आचार्य हैं, जीव 'लक्ष्मी' की शरण में जाने से ही सगुण ब्रह्म अर्थात् विष्णु तक पहुँच सकता है। भक्तों पर अनुग्रह के निमित्त ही भगवान अवतार ग्रहण करते हैं। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। जीव और ब्रह्म का सम्बन्ध शेष-शेषी भाव का है। जीव सेवक है ब्रह्म सेव्य। प्रपत्ति या शरणागति ही परमकल्याण का मार्ग है।

जीव, जगत, माया ब्रह्म से भिन्न हेाते हुए भी ब्रह्म के ही अंग है। रामानुज का मत शंकर की अपेक्षा उदार है। उन्होंने भक्ति को जाति भेद से ऊपर मानते हुए सभी मनुष्य की समानता-एकता का प्रतिपादन किया है। इस संप्रदाय का गहरा प्रभाव रामानंद पर पड़ा। गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति भी सेव्य-सेवक भाव की है।

1.7.2 द्वैतवाद

इस मत का प्रवर्तन मध्वाचार्य (12वीं शता0) ने किया। इनके अनुसार जगत सत्य है, ईश्वर और जीव का भेद, जीव का जीव से भेद, जड़ का जीव से भेद वास्तविक है। जीव और जगत परतंत्र है तथा ईश्वर स्वतंत्र। जीवों के बीच ऊँच एवं नींच की तारतम्यता है, यह सांसारिक अवस्था में ही नहीं मोक्ष दशा में भी विद्यमान रहती है। जीव की अपनी वास्तविक सुखानुभूति ही मुक्ति है। जिसे अमला भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। समस्त जीव हरि के अनुचर हैं। वेद का समस्त तात्पर्य विष्णु ही है। इस संप्रदाय के आचार्य ब्रह्मा है, अतः इसे ब्रह्म संप्रदाय भी कहते है। रामानुज की तरह मध्वाचार्य भी भक्ति मार्ग में सबकी समानता के पक्षधर थे। इस संप्रदाय में कांत या माधर्य भाव की भक्ति है।

1.7.3 शुद्धाद्वैतवाद

इस संप्रदाय के आचार्य रूद्र है अतः इसे रुद्र संप्रदाय भी कहा गया है। इस संप्रदाय के आचार्य विष्णुस्वामी (13-14वी सदी) के अनुसार ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है, जो सदैव अपनी संविद् शक्ति से युक्त रहता है और माया उसी के अधीन रहती है। उन्होंने नृसिंह को ईश्वर का प्रधान अवतार माना है। कुछ लोगों के मत में वे नृसिंह और गोपाल दोनों के उपासक थे।

विष्णु स्वामी की शिष्य परंपरा में ही वल्लभाचार्य (15वीं सदी) आते हैं। उन्होंने रूद्र संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार ब्रह्म सर्वथा शुद्ध है। अपनी तीन शक्तियों-संघिनी, संवित तथा आह्लादिनी द्वारा वह क्रमशः सत्, चित् और आनंद का आविर्भाव करता है। ब्रह्म सत्य और नित्य है। उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जीव भी नित्य हैं। जीव अणु है और ब्रह्म भूमा। शुद्ध, संसारी और मुक्त-जीव की तीन कोटियाँ हैं। जड़ जगत की उत्पत्ति एवं का विनाश नहीं होता उसका केवल आर्विभाव और तिरोभाव ही होता है। उन्होंने भगवान

के पोषण (अनुग्रह) को ही भक्ति की प्राप्ति का आधार माना है। इसीलिए उनके मत को पुष्टि मार्ग कहा गया। रागानुगा भक्ति ही पुष्टि भक्ति है जो साधन भक्ति से श्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म, पुरुषोत्तम और रसरूप है। इस संप्रदाय में कृष्ण के बालरूप की साधना को प्रमुखता दी गयी है।

1.7.4 द्वैताद्वैतवाद-

निम्बार्क (11वीं सदी) ने द्वैताद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। उनके अनुसार जीव का ब्रह्म के साथ भेद और अभेद दोनों संबंध है। इसका मूल कारण अवस्था भेद है। जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी संबंध है। जीव अल्पज्ञ अणु है। जीव ईश्वर का अंश होने से नित्य है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण को युगलोपासना को प्रमुखता दी गई है। इस संप्रदाय के आचार्य सनकादि होने से इसे सनकादि संप्रदाय भी कहते है। इस संप्रदाय की भक्ति सख्य भाव की है।

निम्नलिखित तालिका द्वारा उपरोक्त भक्ति विषयक सिद्धांतों को सरलता से याद किया जा सकता है।

दर्शन	संप्रदाय	संस्थापक	भक्ति-भाव
विशिष्टाद्वैतवाद	श्री	रामानुजाचार्य	दास्य
द्वैतवाद	ब्रह्म	मध्वाचार्य	कांत या माधुर्य
शुद्धाद्वैतवाद	रुद्र	विष्णुस्वामी/वल्लभाचार्य	वात्सल्य
द्वैताद्वैतवाद	सनकादि/निम्बार्क	निम्बार्काचार्य	सख्य

1.8 निर्गुण भक्ति का दार्शनिक आधार

निर्गुण भक्ति के अंतर्गत संत मत और सूफीमत आता हैं। दोनों भक्ति मार्ग में ईश्वर केा अजन्मा, अशरीरी, अगोचर माना गया है। आइए दोनों भक्ति मार्ग के दार्शनिक आधार का हम अध्ययन करें।

1.8.1 संतकाव्य का दार्शनिक आधार

संतमत का विकास वैष्णव धर्म, सिद्धों, नाथों, सूफी मत, शंकर के अद्वैतवाद से प्रेरणा-प्रभाव ग्रहण कर होता है। वैष्णवों से अहिंसा और प्रपत्ति भावना, सिद्धों-नाथों से जाति-पाति, कर्मकाण्ड, शास्त्र का नकार, काया योग, शून्य समाधि, शंकराचार्य से अद्वैत दर्शन, सूफियों से प्रेमतत्व को लेकर कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, अजन्मा मानते हुए अवतारवाद, बहुदेववाद का खण्डन किया। परमतत्व एक ही है जो

सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है। जीव अज्ञानता के कारण क्षणभंगुर संसार को सत्य समझ परमात्मा से विमुख रहता है। सदुरू की कृपा से व्यक्ति को आत्मज्ञान मिलता है, और ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है। उस परमात्मा की भक्ति के लिए न तो शास्त्रज्ञान अपेक्षित है और न ही बाह्य विधि-विधान। ब्रह्म, माया, जीव, जगत सम्बन्धी संत मत की अवधारणाएं शंकराचार्य से प्रभावित है।

1.8.2 सूफी मत

सूफी मत इस्लाम की ही एक शाखा है जिसका उदय इस्लाम के प्रवर्तन के ढाई-तीन सौ वर्षों बाद होता है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। यह एक उदार, सहिष्णु मत है जो इस्लाम की शाखा होते हुए भी उससे बहुत मामलों में भिन्न हैं। 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई, इस पर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति 'सफ' से मानते है जिसका अर्थ होता है पंक्ति। उनके अनुसार ईश्वर का प्रिय होने के कारण जो लोग कयामत के दिन सबसे पहली पंक्ति में खड़े होंगे, उन्हें सूफी कहते हैं। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सूफ' शब्द से हुई, जिसका अर्थ है मस्जिद का चबूतरा। जो फकीर मस्जिद के चबूतरे पर सोकर अपनी रात गुजारते थे, सूफी कहलाए। कुछ लोगों के अनुसार 'सूफ' का अर्थ 'पवित्र' है। 'सूफ' ऊन के भी अर्थ में है। सादा और पवित्रता युक्त जीवन जीने वाले और ऊनी चोंगा पहनने वाले फकीरों को ही सूफी कहा जाने लगा। कुछ के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति 'सोफिया' शब्द से हुई जिसका अर्थ होता है ज्ञान। परमात्मा का ज्ञान रखने वाले फकीरों को सूफी कहा गया। इस प्रकार सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सम्बन्धी कई मत है। आचार्य शुक्ल के अनुसार ''प्रारंभ में सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम में लीन रहते थे।'' ('जायसी ग्रंथावली' की भूमिका, पृ0 168)। इस प्रकार सूफी वे फकीर थे जो सांसारिक भोग-विलास से दूर रहकर, सादा एवं त्यागपूर्ण जीवन जीते हुए हमेशा खुदा के ख्वाब-ख्याल में डूबे रहते थे। सूफियों के अनुसार खुदा सारी कायनात में व्याप्त है। उनका मत इस्लामी एकेश्वरवाद की अपेक्षा शंकर के अद्वैतवाद के ज्यादा करीब है। सूफी मत में साधना की चार अवस्थाएँ हैं- (1) शरीअत-अर्थात् शास्त्रानुसार विधि-निषेधों का सम्यक् पालन (2) तरीकत-वाह्य विधि-विधान से परे हटकर हृदय को शुद्ध रखकर ईश्वर का ध्यान। (3) हकीकत-साधना द्वारा तत्व-बोध की अवस्था। (4) मारिफत-आत्मा का परमात्मा में लीन होने की अवस्था, सिद्धावस्था। सूफीमत का मूल तत्व है प्रेम। परमात्मा के प्रेम में पूरी तरह लीन, उन्मुक्त होकर ही प्रेमस्वरूप परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता हैं किंतु यह प्रेम-साधना सरल नहीं, अत्यंत कठिन है। सूफी कवि इश्क मिजाजी (लौकिक प्रेम) के जरिए इश्क हकीकी (अलौकिक) प्रेम का वर्णन करते हैं। उन्होंने परमात्मा को प्रेयसी रूप और आत्मा को प्रेमी रूप में चित्रित किया है। गुरुकृपा से ही परमात्मा का (प्रियतमा के सच्चे रूप का) ज्ञान होता है। प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए प्रेमी को ढेर सारी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। माया या शैतान के कारण विघ्न-बाधाएँ उपस्थिति होती हैं। अन्ततः अपने सच्चे प्रेम के कारण गुरु और परमात्मा की कृपा से उसे सफलता मिलती है।

1.9 भक्ति आंदोलन

भक्ति आंदोलन मध्यकाल की एक महत्वपूर्ण घटना है। एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक प्रक्रिया जिसने भारतीय समाज की गहरे तक प्रभावित किया। बुद्ध के बाद का सबसे प्रभावी आंदोलन जो समूचे देश में फैला जिसमें ऊँच-नीच, स्त्री-पुरूष, हिंदू-मुस्लिम सभी की भागीदारी थी। अपने मूल रूप में यद्यपि यह एक धार्मिक आंदोलन था, किंतु सामाजिक रूढ़ियों, सामंती बंधनों के नकार का स्वर, एक सहिष्णु, समावेशी समाज की संकल्पना भी इसमें मौजूद थी। भक्ति काव्य इसी भक्ति आंदोलन की उपज है। आइए हम इसके विविध पक्षों-उदय एवं विकास, उत्पत्ति के कारणों, महत्व एवं प्रदेय की पड़ताल करें-

1.9.1 भक्ति आंदोलन उदय एवं विकास

मध्यकाल में लगभग 3-4 सौ वर्षों तक चलने वाले भक्ति आंदोलन का जन्म सहसा नहीं होता। भक्ति आंदोलन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते 6-10 सदी और 10-16 सदी का कालखण्ड। भक्ति के बीज तो वैदिक काल में ही मिलते है। ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण से होते हुए क्रमशः भक्ति का विस्तार होता है। और भागवत संप्रदाय के रूप भक्ति को एक व्यापक आयाम मिलता है। एक आंदोलन के रूप में भक्ति को प्रचारित-प्रसारित करने का श्रेय, दक्षिण के अलवार, नयनार भक्तों को है जिनका समय 6-10 सदी तक है। भक्ति आंदोलन का उदय दक्षिण से हुआ और वह क्रमशः उत्तर भारत में फैलता गया। हिन्दी में उक्ति है-'भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद/प्रगट करी कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड।' दोनों उद्धरणों से विदित होता है कि भक्ति का उदय द्रविड़ देश (तमिलनाडु) में हुआ। एक संस्कृत श्लोक से ज्ञात होता है कि द्रविड़ देश में उदय के पश्चात्, भक्ति का आगे विकास कर्नाटक, फिर महाराष्ट्र में हुआ और उसका पतन गुजरात देश में हुआ, फिर वृंदावन में उसे पुनर्जीवन, उत्कर्ष मिला। हिन्दी की अनुश्रुति में भक्ति को रामानंद द्वारा दक्षिण से उत्तर ले जाने और कबीर द्वारा प्रचारित-प्रसारित किए जाने का स्पष्ट संकेत है। स्पष्ट है कि संस्कृत श्लोक का सम्बद्ध कृष्ण भक्ति से और हिन्दी अनुश्रुति का सम्बन्ध रामभक्ति से है। बहरहाल आलवारों नयनारों का प्रमुख विरोध बौद्ध और जैन धर्म से था। उन दिनों दक्षिण में इन दोनों धर्मों का काफी प्रभाव था, किन्तु अपने मूल स्वरूप को खोकर ये धर्म कर्मकाण्डीय जड़ता और तमाम तरह की विकृतियों के शिकार हो गए थे। ऐसे समय में आलवार (विष्णुभक्त) और नयनार (शिव भक्त) संतों ने जनता के बीच भक्ति को प्रचारित करने का कार्य किया। महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन को ज्ञानदेव, नामदेव ने आगे बढ़ाया। इनकी भक्ति सगुण-निर्गुण के विवादों से परे थी। ज्ञानदेव की भक्ति पर उत्तर भारत के नाथ पंथ का भी गहरा प्रभाव था। आगे चलकर महाराष्ट्र में तुकाराम और गुरु रामदास हुए। आठवीं सदी में शंकराचार्य ने बौद्धधर्म का प्रतिवाद करते हुए वेदों, उपनिषदों की नई व्याख्या कर वैदिक धर्म को पुनः प्रतिष्ठित किया। उनका विरोध अलवार एवं नयनार से भी था। उन्होंने अद्वैतवाद, मायावाद का प्रवर्तन कर ज्ञान को, सर्वोपरि महत्ता दी। शंकराचार्य का विरोध परवर्ती वैष्णव आचार्यों रामानुज, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, निम्बार्क ने किया। ये लोग सगुण ब्रह्म के उपासक और भक्ति द्वारा

मुक्ति को मानने वाले थे। शंकराचार्य जहाँ वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक थे वहीं इन आचार्यों का भक्तिमार्ग भेदभाव रहित था।

रामानुज के शिष्य राघवानंद ने भक्ति को उत्तर भारत में प्रचारित किया। इनके शिष्य रामानंद हुए, जिन्होंने भक्ति मार्ग को और भी उदार बनाकर सगुण-निर्गुण दोनों की उपासना का उपदेश दिया। इनके शिष्यों में सगुण भक्त और निर्गुण संत दोनों हुए। इनके बाहर शिष्य प्रसिद्ध है- रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद, अनंतानंद, सुरसुरानंद, पद्मावती, सुरसुरी। रामानंद ने रामभक्ति मार्ग को प्रशस्त किया, जिसमें आगे चलकर तुलसीदास हुए। श्री कृष्ण भक्तिमार्ग को वल्लभाचार्य, विष्णुस्वामी, निम्बार्क, हितहरिवंश, विट्ठलनाथ ने आगे बढ़ाया निर्गुण भक्तिमार्ग में कबीर सर्वोपरि है, उन्होंने, वैष्णव सम्प्रदाय से ही नहीं, सिद्धों, नाथों और महाराष्ट्र के संतज्ञानेश्वर, नामदेव से बहुत कुछ ग्रहण कर निर्गुण पंथ का उत्तर भारत में प्रवर्तन किया।

भारत में इस्लाम के आगमन के साथ सूफी मत का भी प्रवेश हुआ। सूफी मत इस्लाम की रूढ़ियों से मुक्त एक उदारवादी शाखा है। इसके कई संप्रदाय है-चिश्ती, कादिरा, सुहरावर्दी, नक्शबंदी, शत्तारी। भारत में चिश्ती और सुहरावर्दी संप्रदाय का विशेष प्रसार हुआ। हिंदू-मुस्लिम के सांस्कृतिक समन्वयीकरण में सूफी मत काफी सहायक हुआ।

इस प्रकार भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से शुरु होकर समूचे भारत में फैला और शताब्दियों तक जन सामान्य को प्रेरित-प्रभावित करता है। उसका एक अखिल भारतीय स्वरूप था, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी जगहों पर हम इस आंदोलन का प्रसार देखते हैं, सभी वर्ग, जाति, लिंग, समुदाय, संप्रदाय, क्षेत्र की इसमें भूमिका, सहभागिता थी। महाराष्ट्र में ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, रामदास, गुजरात में नरसी मेहता, राजस्थान में मीरा, दादू दयाल, उत्तर भारत में, कबीर, रामानंद, तुलसी, सूर जायसी, रैदास, पंजाब में गुरु नानक देव, बंगाल में चण्डीदास, चैतन्य, जयदेव असम में शंकरदेव सक्रिय थे। भक्ति आंदोलन में दौरान कई संप्रदायों का जन्म हुआ, जिन्होंने मानववाद के उच्च मूल्यों का प्रसार किया, सामान्य जन-जीवन में स्फूर्ति एवं जागरण का संचार किया।

1.9.2 भक्ति-आंदोलन के उदय के कारण-

भक्ति आंदोलन का उदय मध्यकालीन इतिहास की एक प्रमुख घटना है। इसका उदय अकस्मात नहीं होता है बल्कि बहुत पहले से ही इसके निर्माण की प्रक्रिया चल रही थी, जिसे युगीन परिस्थितियों ने गति प्रदान किया। ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन माना है- उनका यह मत अप्रमाणिक, अतार्किक है। आचार्य शुक्ल ने इसे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम मानते हुए पराजित हिंदू समाज की सहज प्रतिक्रिया माना है, वह लिखते है-'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिंदू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने उनके देव-मंदिर गिराए जाते थे, देव, मूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नही कर सकते थे।

ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे न बिना लज्जित हुए सुन सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनैतिक उलटफेर के पीछे हिंदू जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरुष से हताश लोगों के लिए भगवान की शक्ति और कारण की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ. 60)। इस प्रकार शुक्ल जी भक्ति आंदोलन के उदय केा इस्लाम के आक्रमण से क्षत-विक्षत, अपने पौरुष से हताश हिन्दू जाति के पराजय बोध से जोड़ते हैं। भक्ति काल के उदय सम्बन्धी शुक्ल जी के मत से असहमति जताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि-'मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस हिंदी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता, जैसा कि आज है।' (हिंदी साहित्य की भूमिका) आचार्य द्विवेदी भक्तिआंदोलन पर इस्लामी आक्रमण का प्रभाव तो स्वीकार करते हैं, किंतु भक्ति आंदोलन को उसकी प्रतिक्रिया नहीं मानते। बहरहाल दोनों आचार्यों के मतों में भिन्नता के बावजूद इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भक्ति आंदोलन का एक सम्बन्ध इस्लामी आक्रमण से भी है। द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन को भारतीय पंरपरा का स्वाभाविक विकास मानते है, इसे उन्होंने शास्त्र और लोक के द्वन्द्व की उपज माना है जिसमें शास्त्र पर लोकशक्ति प्रभावी साबित हुई, और भक्ति आंदोलन का जन्म हुआ। इसके मूल में वह बाहरी कारणों की जगह भीतरी शक्ति की ऊर्जा देखते है-'भारतीय पांडित्य ईसा की एक शताब्दी बाद आचार-विचार और भाषा के क्षेत्रों में स्वभावतः ही लोक की ओर झुक गया था। यदि अगली शताब्दियों में भारतीय इतिहास की अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना अर्थात् इस्लाम का प्रमुख विस्तार न भी घटी होती तो भी वह इसी रास्ते जाता। उसके भीतर की शक्ति उसे इसी स्वाभाविक विकास की ओर ठेले जा रही थी।' (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ0-15)। द्विवेदी जी, मध्यकालीन भक्ति साहितय के विकास के लिए बौद्ध धर्म के लोक धर्म में रूपांतरित होने और प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगार प्रधान कविताओं की प्रतिक्रिया को देखते है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत उल्लेखनीय है-'अच्छा होगा कि प्रभाव और प्रतिक्रिया दोनों रूपों में इस्लाम की व्याख्या सहज भाव और अकुंठ मन से किया जाए। तब आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी के बीच दिखने वाला यह प्रसिद्ध मतभेद अपने-आप शांत हो जाएगा। भक्ति-काव्य के विकास के पीछे बौद्ध धर्म का लोक मूलक रूप है और प्राकृतों के श्रृंगार काव्य की प्रतिक्रिया है तो इस्लाम के सांस्कृतिक आतंक से बचाव की सजग चेष्टा भी है।' (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ0-33) वह मध्यकालीन भक्तिकाव्य के उदय में इस्लाम की आक्रामक परिस्थिति का गुणात्मक योगदान स्वीकार करते हैं। भक्ति आंदोलन के उदय के पीछे तत्कालीन आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियाँ भी कार्यरत थी, इसका विवेचन के दामोदरन, इरफान हबीब, रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध ने किया है। इस्लामी राज्य की उत्तर भारत में स्थापना और उसकी स्थिरता के कारण व्यापार वाणिज्य का तेजी, से विकास होता है, नये उद्योग-धंधे ही नहीं, स्थापित होते, नए-नए नगरों का भी निर्माण होता है, इसके फलस्वरूप भारत का जो कामगार वर्ग था, जिसमें प्रायः निचली जातियों के लोग अधिक थे की आर्थिक स्थिति में सुधार होता और उनमें एक आत्मसम्मान,

अपनी सम्मानजनक सामाजिक स्थिति को पाने की भावना बलवती होती है। यह अकारण नहीं है कि भक्ति आंदोलन में इन निचली जातियों की भागीदारी सर्वाधिक है। इस्लामी राज्य स्थापित से होने से परम्परागत सामाजिक ढाँचें को एक धक्का लगता है, सामंतों एवं पुरोहितों का प्रभुत्व-प्रभाव कम होता है। कह सकते है भक्ति आंदोलन के उदय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ सभी अपना योगदान दे रही थी। अत: भक्ति आंदोलन के उदय में कई कारणों का संयुक्त योगदान है।

1.9.3 भक्ति आंदोलन का महत्व-

भक्ति आंदोलन मध्यकाल का एक व्यापक और प्रभावी आंदोलन था, जिसने भारतीय समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इसने एक ओर जहाँ सत्य शील, सदाचार, करूणा, सेवा जैसे उच्च मूल्यों को प्रचारित किया वहीं समाज के दबे-कुचले वर्ग को भक्ति का अधिकारी, बनाकर उनके अंदर आत्मविश्वास का संचार भी किया। भक्ति आंदोलन की प्रगतिशील भूमिका को रेखांकित करते हुए शिवकुमार मिश्र लिखते है-'इस आंदोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भूभाग के निवासी तथा कोटि-कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं करते, समग्र राष्ट्र की शिराओं में इस आंदोलन की ऊर्जा स्पंदित होती है, एक ऐसा जबर्दस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते है, सब एक दूसरे को प्रेरणा देते है, एक-दूसरे से प्रेरणा लेते है, और मिलजुल कर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि-कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं, अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्म् विश्वास, जिंदा रहने की, आत्म सम्मान के साथ जिंदा हरने की शक्ति पाते हैं।' (भक्ति-आंदोलन और भक्तिकाव्य-पृ. 11) भक्ति आंदोलन एक व्यापक लोकजागरण था।

1.10 भक्ति कालीन कविता का उदय-

भक्तिकाव्य भक्ति आंदोलन की उपज है। सबसे पहले हमें निर्गुण पंथ दिखलाई पड़ता हैं, जिनमें कबीर प्रमुख हैं। कबीर रामानंद के शिष्य हैं। कबीर के पहले महाराष्ट्र में नामदेव हिंदी में रचना कर चुके थे, उनमें निर्गुण और सगुण दोनों की उपासना है। कबीर ने निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया। उन पर अद्वैतवाद, वैष्णवी अहिंसावाद, प्रप्रत्तिवाद, सिद्ध, नाथ मत का पूरा प्रभाव था। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर जोर देते हुए, बहुदेववाद, शास्त्रों एवं कर्मकाण्डों का विरोध किया। उनकी भक्ति भावमूलक हैं, जिसकी उपलब्धि सद्गुरू की कृपा से होती है। कबीर की ही परंपरा में रैदास, रज्जब, दादू आदि संत कवि आते हैं। सूफी मत पर आधारित प्रेमाख्यानक काव्य तब प्रकाश में आता है जब भारत में सूफी मत का प्रसार होता हैं। सूफी फकीरों में निजामुद्दीन ओलिया और ख्वाजामुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख हैं। सूफी संत कवियों में कुतुबुन, मंझन, मलिजक मुहम्मद जायसी, उसमान आदि प्रमुख हैं। इन सूफी संतों ने प्रचलित हिंदू कथाओं को, आधार बनाकर ईश्वरीय प्रेम का निरूपण किया है। रामभक्ति की शुरुआत रामानंद से होती है। जिसे चरमोत्कर्ष पर गोस्वामी तुलसीदास ले जाते हैं। उत्तर भारत में कृष्ण

भक्ति का प्रसार वल्लभाचार्य ने किया। पुष्टिमार्गी अष्टछाप के कवियों ने कृष्णकाव्य का प्रणयन किया इनमें सूरदास और नंददास प्रमुख है। अष्टछाप कवियों के पूर्व संस्कृत में जयदेव और मैथिल में विद्यापति ने कृष्ण काव्य की रचना की थी। आगे की इकाई में भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं के उद्भव एवं विकास का विस्तृत विवेचन किया जाएगा।

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आलवर भक्तों में महिला भक्त थीं?
2. द्वैताद्वैत का प्रवर्तन किसने किया?
3. शंकराचार्य के अद्वैतवाद का विरोध करने वाले प्रथम वैष्णव आचार्य हैं?
4. गुजरात के प्रमुख भक्त कवि हैं?
5. नवधा भक्ति का उल्लेख किस ग्रंथ में हैं?
6. भक्ति आंदोलन को ईसाईयत की देन किसने माना है?
7. भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपवरा का स्वाभाविक विकास किस आलोचक ने माना है?
8. नामदेव की भक्ति किस प्रकार हैं?

1.11 सारांश

हिंदी साहित्य का पूर्वमध्यकाल (14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक) के साहित्य की मूल संवेदना भक्ति होने के कारण भक्तिकाल कहा गया। भक्ति के आदि बीज वेदों में मिलते हैं, ब्राह्मण, ग्रंथों, उपनिषद, पुराणों से होते हुए भागवत धर्म में भक्ति को व्यापक आयाम मिलता है। कालांतर में वैष्णव आचार्यों रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क, मध्वाचार्य ने भक्ति को दार्शनिक आयाम देते हुए भक्ति मार्ग को उदार बनाया। दक्षिण के आलवार भक्तों ने राम, कृष्ण की उपासना पर जोर दिया और दक्षिण भारत में एक आंदोलन की तरह भक्ति आंदोलन का प्रचार किया। दक्षिण से भक्ति आंदोलन का प्रसार उत्तर भारत में होता है रामानंद, वल्लभाचार्य के माध्यम से। भक्ति आंदोलन एक व्यापक आंदोलन था जिसमें सभी वर्ग, जाति, क्षेत्र, भाषा की भूमिका थी। मूलतः धार्मिक आंदोलन होते हुए भी भक्ति आंदोलन का एक सामाजिक आयाम भी है। तत्कालीन राजनीति, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ और पहले चली आ रही लोकपरम्परा, भक्ति आंदोलन के उदय का कारण बनती है। भक्ति काव्य इसी आंदोलन की उपज है। इसी की कोख से, संत काव्य, सूफी प्रेमाख्यान काव्य, रामकाव्य, कृष्ण भक्ति काव्य का जन्म होता है। जिसे कबीर, जायसी, सूर, तुलसी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

1.12 शब्दावली

(1) अवतारवाद- वैष्णव संप्रदाय में ईश्वर के अवतार की कल्पना की गई। ईश्वर धर्म और धरा की रक्षा के लिए धरती पर जन्म लेता है। विभिन्न शास्त्रों में अवतारों की संख्या भिन्न-भिन्न है, कहीं 7, कहीं 10 कहीं 24 अवतारों का उल्लेख मिलता है। राम और कृष्ण प्रमुख अवतार है, जिनकी भक्ति का मध्यकालीन भक्ति काव्य में वर्णन मिलता है।

(2) प्रपत्ति भावना- प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पित कर देना। प्रपत्ति को भक्ति का प्रमुख साधन माना गया हैं।

(3) अनात्मवाद- भारतीय चिंतन परंपरा में आत्मा सम्बन्धी दो विचारधारा है- आत्मवाद और अनात्मवाद या नैरात्म्यवाद। आत्मवाद के अनुसार आत्मा नित्य, अजर-अमर, चेतन है। हिंद-धर्म-दर्शन आत्मवादी है। अनात्मवाद के अनुसार या तो आत्मा है ही नहीं और यदि है तो वह नश्वर और परिवर्तनशील है।

(4) मायावाद- शंकराचार्य के अनुसार आत्मा, परमात्मा दोनों में अद्वैत संबंध है। किंतु माया के कारण मनुष्य दोनों की अद्वैतता का अनुभव नहीं कर पाता। माया के कारण ही मनुष्य सांसारिक प्रपंचों और जगत केा सत्य मान परमात्मा से विमुख रहता है। इस माया के नाश द्वारा ही मनुष्य को परमपद की प्राप्ति हो सकती है। माया के बंधनों से मुक्ति ज्ञान से होती है।

(5) बहुदेवोपासना- बहुदेववाद हिंदू धर्म की विशेषता है। हिंदू धर्म में ईश्वर के कई रूपों की मान्यता है। दअसल बहुदेववाद अवतारवाद की देन है।

(6) नवधाभक्ति-भागवत पुराण में भक्ति के नौ साधनों का उल्लेख है। ये नौ साधन हैं-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य, आत्मनिवेदन। यही नवधा भक्ति है।

1.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अंडाल
2. निम्बार्क
3. रामानुजाचार्य
4. 'नरसी मेहता
5. भागवत पुराण
6. ग्रियर्सन
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. सगुण-निर्गुण

1.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
4. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
5. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।

1.15 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. नगेंद्र
3. भारतीय चिंतन परम्परा - के0 दामोदरन
4. हिन्दी साहित्य कोश-भाग-1 - सं. धीरेन्द्र वर्मा
5. भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार - सं. गोपेश्वर सिंह
6. भक्ति काव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर

1.16 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) भक्ति विषयक वैष्णव आचार्यों के मतों का परिचय दीजिए?

(2) भक्ति आंदोलन के उदय एवं विकास पर प्रकाश डालिए?

(3) 'अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।' इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों की व्याख्या कीजिए।

(4) भक्ति आंदोलन की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 2 भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भक्ति काव्य का वर्गीकरण
2.4 भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ
2.4.1 निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ
2.4.2 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ
2.5 भक्ति काव्य: प्रक्रिया एवं विकास
2.5.1 संत काव्य
2.5.2 प्रेममार्गी सूफी काव्य
2.5.3 राम भक्ति काव्य
2.5.4 कृष्ण भक्ति काव्य
2.6 भक्ति काव्य का महत्व
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.11 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में भक्ति कालीन कविता के वर्गीकरण, सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताओं, भक्तिकाव्य की विभिन्न धाराओं की परम्परा और विकास, भक्ति काव्य की उपलब्धि इत्यादि की चर्चा की जाएगी। ब्रह्म के स्वरूप के आधार पर सगुण-निर्गुण शाखा में विभक्त भक्तिकाव्य का चार शाखाओं-संत काव्य, प्रेममार्गी, सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य के रूप में विकास होता है। भक्ति के आधार और प्रक्रिया में भिन्नता के बावजूद इन शाखाओं में एक गहरी समानता भी है। उपास्य के प्रति उत्कट राग अर्थात् भक्ति, नैतिक जीवन पद्धति, उच्चकोटि की मनुष्यता, साधना और काव्य का लोकोन्मुख रूप पूरे भक्ति काव्य की सामान्य विशेषता है। सौन्दर्य बोधात्मक एवं मूल्यबोधात्मक दोनों दृष्टि से भक्तिकाव्य की उपलब्धियाँ सराहनीय है। इस इकाई में इन्हीं बातों पर प्रकाश डाला जाएगा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- भक्तिकाव्य के विभाजन, उसकी विविध शाखाओं से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकाव्य की क्या विशेषताएँ रही हैं? सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य में समानता-असमानता क्या हैं? इन प्रश्नों का उत्तर पा सकेंगे?
- भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं की प्रक्रिया और विकास की व्याख्या कर सकेंगे।
- भक्ति काव्य के महत्व को समझ सकेंगे।

2.3 भक्ति काव्य का वर्गीकरण

भक्तिकाव्य की दो धाराएँ हैं निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति काव्य। निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति में मुख्य अंतर भक्ति के आधार को लेकर है। निर्गुण शाखा में भक्ति का अवलंब अगोचर, अजन्मा, अशरीरी, इंदियातीत, अगम्य, निराकार, परमेश्वर है, जबकि सगुण शाखा में उपास्य गोचर, साकार, शरीरी है, वह अवतरित होता है। डा. नगेंद्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी निर्गुण भक्ति, सगुण भक्ति का साम्य-वैषम्य उद्घाटित करते हुए लिखते हैं- 'सगुण भक्ति में जहाँ लीलावतार को आराध्य स्वीकार किया गया हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में ब्रह्ममानुभूति को स्थान दिया गया है। सगुण भक्ति में जहाँ भगवद्ग्रह का भरोसा होता हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में आत्मविश्वास का बल रहता है। सगुण भक्ति जहाँ बाह्य लालित्य की महिमा से मंडित है, वही निर्गुण भक्ति अंतः सौन्दर्य की गरिमा से दीप्त। सगुण भक्ति जहाँ साकार तथा सविशेष के प्रति होती है, वहीं निर्गुण भक्ति निराकार और निर्विशेष के प्रति। सगुण भक्ति में जहाँ स्वकीया तथा परकीया दोनों भावों का समावेश है, वहीं निर्गुण भक्ति में शक्तिरूपा नारी के प्रति निष्ठावान रहते हुए भी उसके रमणी रूप अथवा परकीया भाव के प्रति

आकर्षण का अभाव है। सगुण भक्ति में जहाँ किसी देव लोक की कल्पना की गयी हैं, वहीं निर्गुण भक्ति में विश्वात्मा प्रभु के विश्वव्यापी अस्तित्व में आस्था प्रकट की गयी है। सगुण भक्त के लिए जहाँ भगवान का उपयुक्त धाम भक्त का हृदय है, वहीं निर्गुण भक्त के लिए अभेदमूलक दृष्टि द्वारा आत्मसाक्षात्कार का महत्व है। निर्गुण भक्त सत्य के शोधक हैं, भक्ति अथवा ऐश्वर्य के आराधक नहीं। मोक्षकामी निर्गुण भक्त संसार को सत्कर्मों द्वारा स्वर्ग बनाना चाहते हैं, वे किसी काल्पनिक 'परलोक' के अभिलाषी नहीं। सगुण और निर्गुण भक्त दोनों ही उपासना-भेद से वैष्णव हैं। निर्गुण भक्त जहाँ नारायण की उपासना करता है, वहीं सगुण भक्त विष्णु के लीलावतारों की भक्ति। सगुण भक्ति में लीला का महात्म्य है और निर्गुण भक्ति में लय का महत्व। सगुण भक्त जहाँ वर्णव्यवस्था के आलोचक नहीं, वहीं निर्गुण भक्त उसके तीव्र विरोध तक जान पड़ते हैं। परंतु प्रेमा भक्ति दोनों को स्वीकार्य है।..... वास्तव में सगुण-निर्गुण का भेद जितना स्तर जन्य है उतना वर्गगत नहीं।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 101-102) इस प्रकार हम देखते है कि सगुण भक्ति एवं निर्गुण भक्ति में मूल अंतर ईश्वर की परिकल्पना की भिन्नता के कारण है। इससे दोनों काव्य की विषय वस्तु, जीवन-जगत संबंधी उनके दृष्टिकोण में अंतर दिखलाई पड़ता है। निर्गुण भक्ति काव्य दो वर्गों में विभक्त है- ज्ञानाश्रयी शाखा (संतकाव्य) और प्रेमाश्रयी शाखा (सूफी प्रेमाख्यानक काव्य)। संत मत में ब्रह्म ज्ञान को प्रमुखता दी गई है, जबकि प्रेममार्गी सूफी काव्य में तीव्र प्रेमानुभूति का महत्व है। सगुण भक्ति काव्य विष्णु के अवतारों के आधार पर दो धाराओं में विकसित होता है। राम, कृष्ण विष्णु के प्रमुख आधार है, भक्ति आंदोलन के दौरान इन दो अवतारों की भक्ति का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इस तरह सगुण भक्ति काव्य के भी दो रूप हैं-राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य। भक्ति काव्य की विभिन्न शाखाओं को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं-

2.4 भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। गुण एवं परिमाण, उदात्त भाव-भूमि एवं प्रभावी अभिव्यक्ति प्रेरक आदर्शों-मूल्यों की उपस्थिति, मानवीयता का उच्च धरातल, युगबोध, लोकोन्मुखता इत्यादि सभी दृष्टियों से यह काव्य एक प्रतिमान की तरह दिखलाई पड़ता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण ही भक्तिकाव्य भारतीय समाज का पथप्रदर्शक रहा है, उसे आध्यात्मिक तृप्ति और रसानुभूति कराता रहा है। इस भक्ति काव्य की चार शाखाएँ है-संत काव्य, प्रेम मार्गी सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य। इन चारों शाखाओं का अपना-अपना निजी वैशिष्ट्य है, अपनी विशेष प्रवृत्ति है। किन्तु कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ, विशेषताएँ भी है जो समूचे भक्तिकाव्य में दिखलाई पड़ती है। निर्गुण भक्ति काव्य, सगुण भक्ति काव्य और इनकी विभिन्न शाखाओं का एक समान धरातल है, और वह धरातल है भक्ति। सबमें ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य, निष्ठा, सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन पर जोर, संसार में रहते हुए सांसारिक प्रपंचों, माया-मोह के बंधनों से असंपृक्त-उदासीन रहने का उपदेश, मानुष सत्य को प्रमुखता, शास्त्रों-कर्मकाण्डों से मुक्त भाव भगति पर बल, गुरु महिमा का बखान, अहं का पूर्ण-विगलन, लोक सम्पृक्ति मिलती है। आइए भक्ति काव्य के विशेषताओं की हम चर्चा करें।

(1) ईश्वर के उत्कट प्रेम एवं अनन्य निष्ठा- ईश्वर के प्रति उत्कट राग, अनन्य निष्ठा, सर्वस्व समर्पण की भावना भक्ति काव्य की सभी धाराओं में विद्यमान है। सभी भक्त कवि भगवत्प्रेम में पूर्णतया अनुरक्त, विह्वल दिखलाई पड़ते है। कबीर प्रियतम परमात्मा के विरह में व्याकुल होकर कहते हैं-

आँखड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़याँ, राम पुकारि पुकारि।

सूफी काव्य में तो 'प्रेम तत्व' को ही सर्वाधिक महत्ता दी गई हैं। मीरा गिरधर गोपाल को अपना सर्वस्व मान, उनके प्रेम में बावरी हो उठती है- हे री मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोई।' सूर की गोपियाँ कृष्ण के प्रति इतना समर्पित हैं कि वे उद्धव के मुक्ति रूपी मणि के प्रलोभन को ठुकराकर कृष्ण की विहाग्नि में तपना स्वीकार करती हैं। उद्धव के लाख समझाने-बुझाने के बावजूद गोपियाँ के प्रेम पर कोई असर नहीं होता, हरि तो उनके लिए 'हारिल की लकड़ी' के समान हैं। तुलसी के तो एकमात्र बल, एकमात्र भरोसा उनके प्रभु राम हैं-

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास।।

(2) अहं का विगलन-भक्त कवि परमात्मा के पास अपने अहं को पूर्णतया विसर्जित करके जाते हैं। प्रभु के समक्ष उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं, प्रभु की सेवा, उनका सेवक बनने में ही वे अपनी सार्थकता देखते हैं। कबीर अपने को 'राम का गुलाम', 'राम का कुत्ता' कहते है।

सूर का कहना है-

'सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिये।'

तुलसी कहते हैं-

राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो?
राम सो खरो है कौन, मोसों कौन खोटो?''

(3) सांसारिक विषय-वासनाओं के प्रति उदासीनता- भक्त कवि प्रभु भक्ति में सबसे बड़ी बाधा माया-मोह को मानते हैं। माया-मोह के बंधन में फँसकर मनुष्य जीवन, जगत को सत्य, शाश्वत मानकर सांसारिकता में लिप्त और परमात्मा से विमुख रहता है। भक्त कवियों के यहाँ सांसारिक विषय-वासनाओं को निस्सार माना गया है, उनसे अलिप्त रहने का उपदेश दिया गया है। यह निर्वेद का भाव कबीर, सूर, तुलसी, जायसी सभी के यहाँ मिलता है। जीवन की क्षण भंगुरता की ओर ईशारा करते हुए कबीर कहते है-

माली आवत देखिकै कालियाँ करीं पुकार।
फूली-फूली चुनि लई, काल्हि हमारी बारि।।

जिस शरीर और जीवन को मनुष्य ने सत्य समझ लिया है उसकी वास्तविकता क्या है, इसे बतलाते हुए सूर ने लिखा है-

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।।

(4) गुरु महिमा- गुरु की महत्ता निर्गुण, सगुण दोनों भक्त कवियों ने स्वीकार की है। दरअसल गुरु ही सत्य का बोध कराता है, मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाता है। वह पथ प्रदर्शक हैं, सच्चा हितैषी है। इसीलिए कबीर ने गुरु को भगवान से भी ऊँचा दर्जा दिया है।

गुरु गोविंद दोउ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय।।

मानस में तुलसी गुरु की वंदना करते हुए लिखते है-

'बंदौ गुरु पद कंज, कृपा सिंधु नर रूप हरि।'

(5) नामस्मरण का महत्व- भक्त कवियों ने पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ प्रभु का नाम जपने को भक्ति का सबसे सरलतम रूप माना है। मात्र नाम-स्मरण से मनुष्य प्रभु की कृपा का पात्र बन जाता, भव-बंधन से मुक्त हो जाता है। इसीलिए राम-नाम को तत्व मानते हुए कबीर ने कहा है- 'कबीर सुमिरण सार है और सकल जंजाल।' नाम की महिमा का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है-

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह।।

नाम स्मरण को प्रमुखता देकर भक्त कवियों ने भक्ति को शास्त्रों और कर्मकाण्डों को जकड़बंदी से मुक्त कर दिया उसे सरल और लोकग्राह्य बना दिया।

(6) संतों के प्रति श्रद्धा एवं सत्संग पर बल- भक्ति काव्य में पवित्रतायुक्त सीधा-सरल जीवन जीने वाले परमात्मा की भक्ति में लीन, सांसारिकता से उदासीन साधु पुरुषों के प्रति असीम श्रद्धा-सम्मान प्रकट किया गया है। रैदास लिखते हैं वह गाँव, स्थान, कुल, घर-परिवार धन्य है जहाँ साधु पुरुष का जन्म होता है-

जिहि कुल साधु बैस्नौ हो ।
बरन अबरन रंक नहिं ईसुर, बिमल बासु जानीअै जीग सो ।।

× × ×

होई पुनीत भगवंत भजन ते आपु तारि तारै कुल दो ।
धनिसो गाउँ, धनि सो ठाउँ, धनि पुनीत कुटुम सब लो ।।

जिस प्रकार पुष्प के सम्पर्क से सब अंग समान रूप से सुवासित होते हैं, उसी तरह संतों की संग भी होता है, तुलसी के अनुसार-

बंदहु संत समान चित हित अनहित नहिं दोय।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोय।।

(7) सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन जीने का उपदेश- भक्त कवियों ने जीवन को धर्मानुसार अर्थात् सत्य-शील सदाचार का सम्यक पालन करते हुए प्रभु के प्रति समर्पित जीवन जीने का उपदेश दिया है। समस्त सृष्टि को प्रभु की अभिव्यक्ति मानकर सभी के प्रति कल्याण की भावन एवं कर्म होना चाहिए। ये कवि स्वार्थ की जगह परमार्थ, संग्रह की जगह त्याग, भोग की जगह भक्ति को महत्व देने वाली जीवन-पद्धति के प्रचारक-प्रसारक हैं।

(8) मानवतावादी दृष्टि- भक्त कवियों ने भक्तिमार्ग में सभी मनुष्यों को समान मानते हुए, वर्गगत, वर्णगत भेद भाव का विरोध किया है। सभी मनुष्य परमात्मा के अंश हैं, चाहे ब्राह्मण हो या शूद्र, राजा हो या रंक-सबमें उसी परमात्मा का वास है। 'जाति-पाति पूछै न कोई। हरि को भजै सो हरि का होई।' भक्ति काव्य का मूलमंत्र है। मनुष्य सत्य को भक्ति आंदोलन के दौरान सर्वप्रमुखता दी गई, बंग्ला के भक्त कवि चण्डीदास ने कहा है-

शुनह मानुष भाई
शबार ऊपरे मानुष शतो
ताहार ऊपरे नाई।

कबीर अत्यंत तीखे ढंग से जाति-पाँतिगत भेद-भाव का विरोध करते हैं। यद्यपि तुलसी के यहाँ वर्णाश्रमधर्म के प्रति एक आस्था है, किंतु उन्होंने भी सभी मनुष्यों को समान माना है- तभी तो वह कहते हैं-'सिया राम मय सब जग जानी करहु प्रनाम जोरि जुग पानि।' दरअसल भक्त कवि परस्पर राग-विश्वास पर आधारित एक उदार और मानवीय समाज के अभिलाषी है।

(9) लोकोन्मुखता- गहरी लोक सम्पृक्ति भक्त कवियों की विशेषता है। वे जन सामान्य के बीच से आए थे और उन्हीं के बीच रहकर काव्य रचना की। उन्होंने धर्म और भक्ति को सहज-सरज रूप देकर लोक ग्राह्य बनाया। 'नाम स्मरण' को प्राथमिकता देने वाली उनकी भक्ति साधन विहीन और निरक्षर जनता जो शास्त्रोक्त कर्मकाण्डों को सम्पन्न करने तथा शास्त्रों का अध्ययन-मनन करने में असमर्थ थी, के लिए अत्यंत सुगम थी। यही नहीं सदियों से उपेक्षित-वंचित वर्ग को भक्ति का अधिकारी घोषित कर उन्होंने भक्तिमार्ग को अत्यंत उदार और मानवीय बना दिया। रागमूलक जिस भक्ति का कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा ने प्रचार किया उससे जनसामान्य केा आध्यात्मिक तृप्ति ही नहीं मिलती है, उसके जीवन में एक सरसता का संचार भी होता है, उसे शक्ति एवं स्फूर्ति मिलती है। भक्ति काव्य लोक मंगलकारी है। यही नहीं लोक संस्कृति एवं लोक परिवेश का भी इन रचनाओं जीवंत चित्रण हुआ। जायसी के 'पद्मावत' में अवध की लोक संस्कृति और सूर के यहाँ ब्रज की लोक संस्कृति सजीव हो उठी है। भक्त कवि अपनी बात को प्रकट करने के लिए उस समय की प्रचलित लोक भाषाओं का आश्रय लेते हैं, लोक से ही

उपमानों, बिम्बों, प्रतीकों का चुनाव करते हुए सहज-सरस शैली में अपनी बात रखते हैं। वास्तव में भक्ति काव्य लोक भाषा में रचित और लोक को संबोधित कविता है। सामंती अभिजात्य और रूढ़ियों को नकार यहाँ लोक की प्रतिष्ठा हुई है। अपनी लोक धर्मी चेतना के कारण ही भक्ति काव्य इतना सरस और प्रभावी बन पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न धाराओं में विकसित होने वाले भक्ति काव्य की कुछ आधारभूत विशेषताएं हैं जो सभी धाराओं में समान रूप से दिखलाई पड़ती है। अब आगे हम निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्तिकाव्य की विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

2.4.1 निर्गुण भक्तिकाव्य की विशेषताएँ

निर्गुण अर्थात् गुणातीत, निराकार, अशरीरी, अजन्मा, अव्यक्त, इन्द्रियातीत ब्रह्म की उपासना को लेकर चलने वाले भक्ति मार्ग को निर्गुण भक्ति मार्ग और उसके साहित्य को निर्गुण भक्ति काव्य कहा गया है। कबीर, रैदास, दादू, कुतुबन, मंझन, जायसी आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। निर्गुण भक्ति मार्ग भी दो भागों में विभक्त है- ज्ञानश्रयी शाखा अथवा संत काव्य और प्रेमाश्रयी शाखा अथवा प्रेममार्गी सूफी काव्य। एक में ब्रह्मज्ञान, तत्वचिंतन को प्रमुखता दी गयी तो दूसरे में तीव्र प्रेमानुभूति को। आईये हम निर्गुण भक्ति काव्य की विशेषताओं को देखते हैं-

(1) निर्गुण ब्रह्म की उपासना- निर्गुण भक्ति मार्ग में ईश्वर को साकार और अवतारी न मानकर निराकार, अजन्मा माना गया है। परम तत्व एक हैं, वहीं जगत का नियंता, जगत का स्वामी है। ब्रह्म को निर्गुण कहने का अभिप्राय उसकी गुणहीनता से नहीं है। निर्गुण का अर्थ है 'गुणातीत'। वह परमात्मा गुणों से परे है। उसका कोई स्वरूप कोई आकार-प्रकार नहीं। वह इंद्रियातीत परमेश्वर अनिर्वचनीय है, अज्ञेय है। निर्गुण भक्ति मार्ग में अवतारवाद और बहुदेववाद का खण्डन, निर्गुण ब्रह्म की संकल्पना के कारण ही है। उस निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति, ब्रह्ममानंद की अनुभूति भक्ति द्वारा ही संभव है। कबीर ने अपनी भक्ति भावना को प्रकट करने के लिए दांपत्य रूपकों को सहारा लिया है। वह राम को अपना 'भरतार' और अपने को उनकी 'बहुरिया' मानते है। जायसी ने इश्कमिजाजी में इश्क हकीकी को दिखलाया है। कहने का तात्पर्य यह है कि निर्गुण कवि लौकिक प्रेम सम्बन्धों का सहारा लेकर ईश्वरीय प्रेम को प्रकट करते है। यद्यपि संतमत में तत्वबोध का महत्व है जो सद्गुरु की कृपा से लब्ध होता है, किंतु संत कवियों ने भी परमात्मा को प्राप्त करने के लिए उत्कट राग, अनन्य निष्ठा को ही सर्वाधिक महत्व दिया है।

(2) **धार्मिक सामाजिक रूढ़ियों का विरोध-** निर्गुण भक्ति मार्ग में शास्त्रीय विधि-विधान कर्मकाण्ड, बाह्याचार, अंधविश्वास, ऊँच-नीच के भेद का विरोध मिलता है। धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों-कट्टरताओं से मुक्त जिस भक्ति का निर्गुण कवियों ने प्रतिपादन किया है वह बाध्याचारमूलक न होकर भावमूलक है, आंतरिक है। इस भक्ति के लिए शास्त्र

ज्ञान भी अपेक्षित नहीं है। निष्कलुष मन-हृदय से परमात्मा के प्रति सच्ची निष्ठा सच्चा और निष्काम प्रेम ही इस भक्ति का आधार है।

(3) **मानव-मात्र की एकता-** समता का प्रतिपादन-निर्गुण कवि ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुस्लिम के भेद को नहीं मानते। उनकी दृष्टि में सभी मनुष्य समान है, क्योंकि एक ही परमात्मा के अंश हैं। कबीर कहते हैं- 'एक जोति थैं सब उपजा कौन ब्राहमन कौन सूदा।' दरअसल निर्गुण भक्ति मार्ग जाति-संप्रदाय के भेदों से परे है। यहाँ राम-रहीम को एक माना गया है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा गया है, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलमान के रूप में नहीं। सूफी कवि जायसी, मंझन, कुतुबन ने लोकप्रचलित, हिंदू-कथाओं को आधार बनाकर अपना काव्य सृजन किया है जो उनकी उदार दृष्टि का परिचायक हैं। इससे हिन्दू-मुस्लिम की भावात्मक एकता का पथ प्रशस्त हुआ।

(4) **रहस्यवाद-** रहस्यवाद निर्गुण भक्ति काव्य की एक मुख्य विशेषता है। दरअसल रहस्यवाद कोई विचारधारा नहीं, यह एक अनुभूति है, जिसकी विशेषता है- अगम्य, अगोचर, अज्ञेय, अनिर्वचनीय ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा, उसके अस्तित्व में विश्वास, समूची सृष्टि में उसी परमतत्व की व्याप्ति देखना, उससे रागात्मक सम्बन्ध जोड़ना और अन्ततः एकात्म की अनुभूति। इस प्रकार रहस्यवाद के अंतर्गत अगोचर ब्रह्म अनुभूति के दायरे में आता है। आचार्य शुक्ल ने जायसी के रहस्यवाद का विवेचन करते हुए रहस्यवाद के दो भेद किए हैं-साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद। तंत्र-मंत्र, योगादि द्वारा ब्रह्म की सत्ता का साक्षात्कार और ब्रह्मानंद की अनुभूति साधनात्मक रहस्यवाद के अंतर्गत आता है। तीव्र-गहन प्रेमानुभूति की स्थिति, परमात्मा से रागात्मक सम्बन्ध की स्थापना-भावात्मक रहस्यवाद की विशेषता है। जायसी के पद्मावत में भावात्मक रहस्यवाद की प्रधानता है। कबीर के यहाँ यौगिक क्रिया द्वारा ब्रह्मानुभूति का वर्णन होने से साधनात्मक रहस्यवाद है। दूसरी तरफ जब वे अपने को राम का बहुरिया कहते हुए ब्रह्म को राग के धरातल पर उतारते हैं, तो वहाँ भावात्मक रहस्यवाद की उत्पत्ति होती है।

2.6 सगुण भक्ति काव्य की विशेषताएँ

सगुण भक्ति मार्ग में ईश्वर को साकार-इंद्रियगम्य, सविशेष माना गया है। तुलसी, सूर, आदि इसी के अंतर्गत आते है। सगुण भक्ति काव्य की निम्नलिखित विशेषताएं हैं-

(1) अवतारवाद में विश्वास-

सगुण भक्त कवियों का दृढ़ विश्वास है कि परमात्मा, अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के लिए जीव रूप धारण कर अवतरित होता है। वह लीला के लिए अवतरित होता है, उसकी लीलाएँ लोकरंजन और लोक रक्षण के निमित्त होती है। सगुण भक्ति काव्य में नारायण के दो

अवतारों-राम, कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। सगुण भक्ति काव्य ईश्वर की लीलाओं का गान है।

(2) ब्रह्म के सगुण - निर्गुण दोनों रूपों की मान्यता-सगुण भक्ति काव्य में ब्रह्म के सगुण निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया गया है। धर्म और धरा के कल्यार्थ ही निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करता है। तुलसीदास कहते हैं- 'सगुनहि सगुनहि नहि कछु भेदा।' सूर भी निर्गुण-सगुण दोनों रूपों को मानते हैं-' 'आदि सनातन हरि अविनाशी, निर्गुण-सगुण धरे तन दोइ।' किन्तु निर्गुण ब्रह्म 'रूप-रेख-गुन-जाति-जुगुति विहीन' है, वह मन और वाणी से परे है, वह 'गुंगे के गुड़' की तरह है। इसलिए सूर सगुन लीला के पद गाते हैं। दरअसल सुगम्यता के कारण ही तुलसी, सूर ने सगुण भक्ति को स्वीकारा है, महत्व दिया है।

(3) भक्ति का एक विशिष्ट स्वरुप- सगुण भक्ति के दो रुप दिखलाई पड़ते हैं, वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति। वैधी भक्ति में जहाँ शास्त्रानुमोदित विधि-निषेधों के सम्यक अनुशीलन पर बल है, वहीं रागानुगा के अंतर्गत शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और कांत या माधुर्य भाव की भक्ति है। सगुण भक्ति में रागानुगा भक्ति को महत्व दिया गया हैं। अलग-अलग भक्तों ने भिन्न-भिन्न भाव से प्रभु को भजा है। किसी के यहाँ दास्य भाव है तो कहीं वात्सल्य भाव। भागवत पुराण की नवधा भक्ति-श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चना, वंदना, दास्य, संख्य तथा आत्मनिवेदन या शरणागति- की भी सूर, तुलसी, मीरा की भक्ति-पद्धति में स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

आगे सगुण भक्ति काव्य की शाखाओं-राम भक्ति काव्य एवं कृष्ण भक्ति काव्य की विस्तृत चर्चा की जाएगी।

2.5 भक्तिकाव्य: प्रक्रिया एवं विकास

2.5.1 संत काव्य

संतकाव्य जिसे ज्ञानाश्रयी शाखा कहा जाता है, इसकी शुरुआत महाराष्ट्र के संत कवि नामदेव से होती है। भक्ति आंदोलन के क्रमिक विकास का अवलोकन करने पर विदित होता है कि आलवारों की भक्ति का प्रसार दक्षिण के बाद महाराष्ट्र में होता है। महाराष्ट्र के संत कवि नामदेव (1270-1350) ने मराठी और हिन्दी दोनों में रचना की है, उनके यहाँ सगुण-निर्गुण दोनों भक्ति की प्रवृत्तियाँ मिलती है। ज्ञानदेव के कारण उन पर नाथपंथ का भी प्रभाव था। उन्होंने एक ऐसे भक्ति मार्ग के लिए रास्ता निर्मित किया, जो हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए हो। उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार-प्रसार करते हैं, रामानंद। जो रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में आते हैं। रामानंद का समय 14वीं शता0 माना जाता है। रामानंद का भक्ति मार्ग उदार था, उसमें न जातिगत,

संकीर्णता है और न ही निर्गुण-सगुण का विवाद। स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी बिना किसी भेद-भाव के उन्होंने निम्न जाति के लोगों को भी दीक्षा दिया। उनके शिष्यों में कबीर, रैदास, धन्ना, सेना, पीपा प्रसिद्ध है। रामानंद के शिष्यों में निर्गुण संत भी हैं और सगुण भक्त भी। एक निश्चित मत के रूप में संत काव्य के प्रवर्तक निस्संदेह कबीर हैं (15वीं सदी) हैं। कबीर ने जिस निर्गुण पंथ का प्रवर्तन किया है, उसकी परंपरा नामदेव से शुरू होती है। सिद्धों, नाथों, वैष्णवों, सूफियों से वह बहुत कुछ ग्रहण करते हैं। आचार्य शुक्ल लिखते हैं- 'निर्गुण पंथ के लिए राह निकालने वाले नाथपंथ के योगी और भक्त नामदेव थे। जहाँ तक पता चलता है 'निर्गुण मार्ग के निर्दिष्ट प्रवर्तक कबीरदास ही थे जिन्होंने एक ओर तो स्वामी रामानंद जी के शिष्य होकर भारतीय अद्वैतवाद की कुछ स्थूल बातें ग्रहण की और दूसरी ओर योगियों और सूफी फकीरों के संस्कार प्राप्त किये। वैष्णवों से उन्होंने अहिंसावाद और प्रपत्तिवाद लिये। इसी से उनके तथा 'निर्गुणवाद' वाले दूसरे संतों के वचनों में कहीं भारतीय अद्वैतवाद की झलक मिलती है तो कहीं योगियों के नाड़ी चक्र की, कहीं सूफियों के प्रेमतत्व की, कहीं पैगम्बरी कट्टर खुदाबाद की और कहीं अहिंसावाद की। अतः तात्त्विक दृष्टि से न तो हम इन्हें पूरे अद्वैतवादी कह सकते हैं और न एकेश्वरवादी। दोनों का मिलाजुला भाव इनकी बानी में मिलता है। इनका लक्ष्य एक ऐसी सामान्य भक्ति पद्धति का प्रचार था जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों योग दे सकें और भेदभाव का कुछ परिहार हो। बहुदेवोपासना, अवतार और मूर्तिपूजा का खण्डन ये मुसलमानी जोश के साथ करते थे और मुसलमानों की कुरबानी (हिंसा) नमाज, रोजा, आदि की असारता दिखाते हुए, ब्रह्म माया, जीव, अनहदनाद, सृष्टि, प्रलय आदि की चर्चा पूरे हिन्दू ब्रह्म ज्ञानी बनकर करते थे। सारांश यह है कि ईश्वरपूजा की उन भिन्न-भिन्न बाह्य विधियों पर ये ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेदभाव फैला हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर प्रेम और सात्विक जीवन का प्रसार करना चाहते थे।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 45-46) दरअसल संत काव्य धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों-विषमताओं के खिलाफ एक प्रतिक्रिया हैं, इसकी पृष्ठभूमि हमें सिद्धों-नाथों के यहाँ दिखलाई पड़ती है। परम्परागत वर्णाश्रम व्यवस्था जिसमें एक बड़े वर्ग को हाशिये पर ढकेल दिया गया था, उस निचले वर्ग की व्यापक हिस्सेदारी हमें संत मार्ग में दिखलाई पड़ती हैं। मुक्तिबोध लिखते हैं- 'पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए। अपना साहित्य और अपने गीत सृजित किए। कबीर रैदास, नाभा, सेना नाई आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरूद्ध आवाज बुलंद की।' (नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध पृ0 88)

कबीर के अतिरिक्त रैदास, दादू, रज्जब, सुंदरदास, मलूकदास, हरिदास निरंजनी, धर्मदास, गुरुनानक, चरणदास, बाबरी साहिब, जगजीवन दास, तुलसी साहब, भीखा साहब, पलटू साहब, अक्षर अनन्य इत्यादि अन्य संत हैं जिन्होंने संत काव्य परम्परा को आगे बढ़ाया। भक्ति आंदोलन के दौरान निर्गुण पंथी कई सम्प्रदाय भी अस्तित्व में आये जैसे नानक पंथ, कबीर पंथ, निरंजनी संप्रदाय, दादू पंथ इत्यादि। संतमत एक लोक परम्परा है। संतों ने लोक भाषा, जिसे सधुक्कड़ी कहा गया है, का प्रयोग किया है, वे दोहा और गेय पदों में अपनी बात कहते है, बिल्कुल सीधे-सादे ढंग से। उनकी वाणियों में सरलता जन्य सरसता है। उलटवासियों का प्रयोग

भी हुआ है जो सिद्धों नाथों के प्रभाव-स्वरुप है। संत काव्य के प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ निम्नलिखित हैं-

रचनाकार	रचना
कबीर	बीजक (धर्मदास द्वारा संकलित)
नानक	जपुजी, असा दी वार, रहिरास, साहिला, नसीहत नामा
हरिदास निरंजनी	अष्टपदी जोग पग्रंथ, ब्रह्मस्तुति, हंसप्रबोध ग्रंथ, निरपखमूल ग्रंथ, पूजायोग ग्रंथ, समाधिजोग, ग्रंथ, संग्रामजोग ग्रंथ
संतदास एवं जगन्नाथ दास (संग्रहकर्त्ता)	'हरडे वाणी- (दादू की वाणियों का संग्रह)
रज्जब	'अंगवधू' (दादू की वाणियों का संग्रह)
मलूकदास	ज्ञानबोध, रतनखान, भक्तिविवेक, ज्ञानपरोछि, बारहखड़ी, रामअवतार लीला, ब्रजलीला, ध्रुवचरित, विभवविभूति, सुखसागर, शब्द
सुंदरदास	ज्ञानसमुद्र, सुंदरविलास
रज्जब	सुब्बंगी
गुरु अर्जुनदेव	सुखमनी, बावनअखरी, बारहमासा
निपट निरंजन स्वामी	शांत सरसी, निरंजन-संग्रह

2.5.2 प्रेममार्गी सूफी काव्य-

सूफी मत से प्रभावित 'प्रेम' को वर्ण्य विषय बनाकर चलने वाली निर्गुणपंथी काव्य धारा ही प्रेममार्गी सूफी काव्य है, जिसे प्रेमाश्रयी शाखा भी कहा जाता है। सूफी मत इस्लाम का एक उदारवादी रूप है। भारत में सूफियों का आगमन 12वीं सदी में माना जाता है। सूफी कवियों ने प्रेम के दो रूप माने है- इश्क मिजाजी और इश्क हकीकी। इश्क मिजाजी अर्थात् लौकिक प्रेम, स्त्री-पुरुष का सामान्य प्रेम। इश्क हकीकी अर्थात् ईश्वरीय प्रेम। उन्होंने, लौकिक प्रेमकथाओं का चित्रण करते हुए ईश्वरीय सत्ता की ओर संकेत किया है, ईश्वरीय प्रेम की व्यंजना की है। उनके यहाँ नायक आत्मा के प्रतीक रूप में और नायिका, परमात्मा के प्रतीक के रूप में आती है। नायक का नायिका से मिलन कई सारी मुसीबतों का सामना करने के उपरांत होता है। प्रायः इन कवियों ने प्रचलित लोक कथाओं को चुना है, उनके प्रबंधों में ऐतिहासिक यथार्थ और कल्पना का योग है। कथा का विकास वे लोक कथा पद्धति के सूत्रों का इस्तेमाल करते हुए कहते हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी करते हैं- 'कथानक को गति देने के लिए सूफी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक रूढ़ियों का व्यवहार किया है जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही है, जैसे-चित्र दर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उस पर आसक्त

होना, पशु-पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मंदिर या चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नई कथानक रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गयी हैं, जैसे प्रेम व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमार का प्रेमी को गिरफ्तार करा लेना, इत्यादि। परन्तु इन नई कथानक शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है। अधिकांश सूफी, काव्यों का मूल आधार भारतीय लोक-कथाएँ हैं।'' (हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ0 163) इन कवियों ने फारसी की मसनवी शैली की पद्धति पर अपने काव्य का प्रणयन किया है। ग्रंथारंभ में ईश्वर और मुहम्मद साहब की स्तुति, गुरु-स्मरण ग्रंथ के रचनाकाल का उल्लेख, तत्कालीन बादशाह का उल्लेख इत्यादि मसनवी शैली की विशेषता है। इन कवियों की शैली भले ही फारसी हो लेकिन कथावस्तु से लेकर भाषा तक उस पर भारतीय परिवेश की छाप है। इन काव्यों की आत्मा भारतीय है। सिर्फ लोक प्रचलित भारतीय लोक कथाओं का आधार ही ग्रहण नहीं किया गया है, भारतीय दर्शन और योग-साधना का भी गहरा प्रभाव, दिखलाई पड़ता है।

सूफी कवियों ने प्रबंधात्मक काव्य की रचना की है। प्रायः दोहा-चौपाई की शैली और अवधी भाषा इन काव्यों की विशेषता है। रहस्यवाद की प्रवृत्ति भी दिखलाई पड़ती है। आत्मा-परमात्मा के प्रेम का निरुपण होने के कारण भावात्मक रहस्यवाद तो है ही, इसके अतिरिक्त यौगिक साधना सम्बन्धी बातें होने के कारण साधनात्मक रहस्यवाद भी आया है। सूफियों के रहस्यवाद के संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- 'सूफियों का रहस्यवाद अद्वैतवाद भावना पर आश्रित है। रहस्यवादी भक्त परमात्मा को अपने प्रिय के रुप में देखता है और उससे मिलने के लिए व्याकुल रहता है। जिस प्रकार मेघ और समद्र के पानी में कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, उसी प्रकार भक्त भगवान में कोई भेद नहीं है दोनों एक ही हैं। फिर भी मेघ का पानी, नदी का रुप धारण करके समुद्र के पानी में मिल जाने को आतुर रहता है। उसी श्रेणी की आतुरता भक्त में भी होती है। सूफी, कवियों ने अपने प्रेम कथानकों की प्रेमिका को भगवान का प्रतीक माना है। जायसी भी सूफियों की इस भक्ति भावना के अनुसार अपने काव्य में परमात्मा को प्रिया के रुप में देखते हैं, और जगत् के समस्त रूपों को उसकी छाया से उद्भाषित बताते हैं। उनके काव्य में प्रकृति उस परम प्रिय के समागम के लिए उत्कंठित और व्याकुल पाई जाती है।'' (हिन्दी साहित्य: उद्भव और विकास, पृ0 167)

सूफी काव्य का जहाँ एक धार्मिक-आध्यात्मिक आशय है, वहीं उसका एक लौकिक पक्ष भी है। जिस प्रेम का इन कवियों ने निरुपण किया वह अत्यंत मार्मिक है। शुक्ल जी लिखते हैं- 'सूफियों के प्रेम प्रबंधों में खंडन-मंडन की बुद्धि को किनारे रखकर, मनुष्य के हृदय को स्पर्श करने का ही प्रयत्न किया गया है जिससे इनका प्रभाव हिन्दुओं और मुसलमानों पर समान रूप से पड़ता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 21) इन कवियों ने लोक तत्वों का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया हैं। लोकपक्ष की दृष्टि से यह काव्य अत्यंत समृद्ध है। मुसलमान होते हुए सूफी कवियों ने जिस खुले मन से हिन्दू लोक कथाओं, धार्मिक मतों-विश्वासों का सर्जनात्मक उपयोग किया है, वह उनकी उदारता, उनके सेकुलर चरित्र का प्रमाण है। हिन्दू-मुसलमान के बीच

नजदीकी लाने, सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया को तीव्र करने में इन सूफी कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है।

सूफी काव्य परंपरा में जायसी का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। जायसी कृत 'पद्मावत' में सूफी काव्य की सभी विशेषताओं को बखूबी देखा जा सकता है। सपनावति, मुगुधावति, मिरगावति, मधुमालती, प्रेमावती जायसी द्वारा उल्लेखित इन प्रेमाख्यानकों में केवल मिरगावति और मधुमालती ही प्राप्त हुए हैं, बाकी अप्राप्य हैं। बहरहाल, यह तो स्पष्ट हे कि जायसी के पूर्व में प्रेमाख्यानक काव्य रचे गए है। जायसी के अतिरिक्त इस परम्परा में कुतुबन, मुल्ला दाऊद, मंझन, उसमान, शेखनवी, कासिम शाह, नूरमुहम्मद आदि कवि भी हैं। प्रेममार्गी सूफी काव्य परम्परा की प्रथम कृति कौन सी, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार कुतुबन कृत 'मृगावती' इस धारा की प्रथम कृति है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' को, राम कुमार वर्मा मुल्ला दाऊद कृत 'चंदायन' को पहली कृति मानते हैं हिन्दी के प्रमुख प्रेमाख्यानक काव्य निम्नलिखित है।

ग्रंथ	रचनाकार
हंसावली (1370 ई.)	असाइत
चंदायन (1379 ई.)	मुल्ल दाऊद
लखमसेन पद्मावती कथा (1459)	दामोदर कवि
सत्यवती कथा (1501)	ईश्वरदास
मृगावती (1503)	कुतुबन
माधवानल कामकंदला (1527)	गणपति
पद्मावत (1540)	जायसी
मधुमालती (1545)	मंझन
रूपमंजरी (1568)	नंददास
प्रेमविलास प्रेमलता की कथा (1556)	जटमल
छिताईवार्ता (1590)	नारायण दास
माधवानल-कामकंदला (1584)	आलम
चित्रावली (1613)	उसमान
रसरतन (1618)	पुहकर
ज्ञानदीप (1619)	शेखनवी

नल-दमयंती (1625)	नरपति व्यास
नल चरित्र (1641)	कुंद सिंह
हंस जवाहिर (1731)	कासिम शाह
इंद्रावती (1744)	नुरमुहम्मद
अनुराग बाँसुरी (1764)	नुरमुहम्मद
कथा रतनावली, कथा कनकावती, कथा कंवलावति, कथा मोहिनी, कथा कलंदर इत्यादि (रचनाकाल 1612-1664 ई. तक)	जान कवि

2.5.3 रामभक्ति काव्य-

आदिकाल से ही राम काव्य की एक दीर्घ परम्परा रही है। दरअसल उच्चतर मानवीय मूल्यों पर आधारित राम का व्यक्तित्व एवं जीवन हमेशा रचनाकारों को आकृष्ट करता रहा है। भारतीय संस्कृति के वह केन्द्रीय चरित्र हैं। राम एक ऐतिहासिक चरित्र हैं या मिथकीय यह विवाद का मुद्दा भले हो, किन्तु भारतीय समाज-संस्कृति में राम की अत्यंत गहरी और व्यापक उपस्थिति एक यथार्थ है। बहरहाल आदिकवि बाल्मीकि कृत आदिग्रंथ 'रामायण' में सर्वप्रथम रामकथा का निरूपण किया गया है। बाल्मीकि के पूर्व रामकथा की वाचिक और लिखित परम्परा निश्चित तौर पर रही होगी। लेकिन अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध हुआ है। 'रामायण' का रचनाकाल चौथी सदी ई. पू0 माना जाता है। रामायण का भिन्न क्षेत्रों-समाजों, भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप में रूपांतर-विकास हुआ है। भारत में ही नहीं विदेशों में भी रामकथा का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। संस्कृत, पालि, प्राकृत, तमिल, तेलगु, कन्नड़, गुजराती, बंग्ला, हिन्दी, काश्मीरी, असमी, नेपाली आदि कई भाषाओं में रामकथा का प्रणयन हुआ। इनमें कालिदास कृत 'रघुवंश' भवभूति कृत 'उत्तर रामचरित', कम्बन कृत 'तमिल रामायण', कृत्तिवास कृत बंग्ला में 'कृतिवासीय रामायण' तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस', माधव कन्दलि कृत 'असमिया रामायण' इत्यादि को विशेष ख्याति मिली।

हिन्दी में राम काव्य परम्परा में सर्वोच्च स्थान गोस्वामी तुलसीदास का है। उन्होंने रामकथा को व्यापक फलक पर प्रतिष्ठित कर जनता का कंठहार बना दिया। समन्वय का विराट चेष्टा और लोकमंगल के विधान के कारण तुलसी को अपार लोकप्रियता मिली। आचार्य शुक्ल के अनुसार 'जगत् प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरुपण किया था वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी (सं. 1073) ने खड़ा किया। उनके विशिष्टाद्वैत वाद के अनुसार

चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत् के सारे प्राणी हैं जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते हैं। अतः इन जीवों के लिए उद्धार का मार्ग यही है कि वे भक्ति द्वारा उस अंशी का सामीप्य लाभ करने का प्रयत्न करें। रामानुज जी की शिष्य परंपरा देश में बराबर फैलती गयी और जनता भक्ति मार्ग की ओर अधिक आकर्षित होती रही। रामानुज जी के श्री संप्रदाय में विष्णु या नारायण की उपासना है। इस संप्रदाय में अनेक साधु महात्मा बराबर होते गये।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 75)। रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में रामानंद हुए। वे काशी के राघवानंद जी के शिष्य थे। वास्तव में रामभक्ति को प्रतिष्ठित करते का श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने भक्ति को शास्त्रीय घेरे बंदी से मुक्त कर लोक ग्राह्य बनाया, भक्ति मार्ग को सभी के लिए खुला रखा। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-''तत्वतः रामानुजाचार्य जी के मतावलंबी होने पर भी अपनी उपासना पद्धति को उन्होंने विशेष रूप रखा। उन्होंने उपासना के लिए बैकुंठ निवासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करने वाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव राम हुए और मूल मंत्र हुआ राम नाम। सगुण ब्रह्म के आग्रही होते हुए भी रामानंद ने निर्गुण भक्ति को भी प्रोत्साहन दिया। रामानंद कृत दो ग्रंथ मिलते हैं- 'वैष्णवमताब्जभास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। दोनों संस्कृत में हैं। प्रसिद्ध प्रार्थना 'आरती कीजै हनुमान लला की' उन्हीं द्वारा रचित है। रामानंद जी की ही शिष्य परम्परा में तुलसीदास आते हैं। तुलसी के अतिरिक्त रामभक्ति काव्य पंरपरा में अग्रदास, ईश्वरदास, नाभादास केशवदास भी हुए, किन्तु किसी को तुलसी जैसी ख्याति नहीं मिली। रामभक्ति धारा में दास्य-भाव की भक्ति प्रधान है, किन्तु कालांतर में अग्रदास के सखी सम्प्रदाय रामचरणदास द्वारा प्रवर्तित स्वसुखी शाखा और जीवाराम प्रवर्तित तत्सुखी शाखा द्वारा रामभक्ति में रसिक भावना का समावेश होता हैं। इन शाखाओं की कोई उल्लेखनीय काव्यात्मक उपलब्धि नहीं है।

रामभक्ति शाखा के प्रमुख रचनाकार और उनकी रचनाएँ हैं-

रचनाकार	**रचना**
1. विष्णुदास	महाभारत कथा, रूक्मिणी मंगल, स्वर्गारोहण, स्नेहलीला
2. रामानंद	वैष्णव मताब्ज भाष्कर, श्री रामार्चन पद्धति, रामरक्षास्रोत।
3. अग्रदास	ध्यान मंजरी, अष्टयाम, रामभजनमंजरी, उपासना-बावनी, पदावली।
4. ईश्वरदास	भरत मिलाप, अंगदपैज
5. तुलसीदास	दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरितामानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली
6. नाभादास	भक्तमाल, अष्टयाम
7. केशवदास	रामचंद्रिका
8. प्राणचंद चौहान	रामायण महानाटक
9. माधवदास चारण	राम रासो, अध्यात्म रामायण
10. हृदयराम	हनुमन्नाटक

11. नरहरि बारहट	पौरुषेय रामायण
12. लालदास	अवध विलास

2.5.4 कृष्ण भक्ति काव्य-

ईश्वरीय रूप में श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव कब हुआ, इस संदर्भ में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। पुराण काल में श्रीकृष्ण एक प्रमुख ईश्वर अवतार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। भागवत पुराण में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीलाओं का विस्तृत वर्णन हुआ है। गोपियों के साथ उनके प्रणय-प्रसंग का वर्णन मनोहारी है। ध्यान देने योग्य है कि भागवत में कहीं भी राधा का उल्लेख नहीं मिलता। कृष्ण की प्रेयसी के रूप राधा 12वीं सदी के संस्कृत कवि जयदेव के 'गीत गोविंद' में आती है। जयदेव के पश्चात् बंग्लाकवि चंडीदास और मैथिल कवि विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का विशद वर्णन मिलता है। विद्यापति के यहाँ राधा-कृष्ण का प्रेम तो अत्यंत मांसल हो उठा है। बहरहाल भागवत में वर्णित लीलाएँ ही कृष्ण भक्ति काव्य का आधार रही हैं। दक्षिण के आलवार भक्तों ने भी कृष्णोपासना का प्रसार किया, उनकी भक्ति में माधुर्य भाव की प्रधानता है। कृष्ण भक्ति को शास्त्रीय आधार देकर प्रचारित-प्रसारित करने वालों में दो वैष्णव आचार्यों निम्बाकाचार्य (12-13 वीं सदी) और वल्लभाचार्य (15-16 वीं सदी) का महत्वपूर्ण योगदान हैं।

वल्लभ ने देश भर घूम-घूमकर और विद्वानों से शास्त्रार्थ कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। अंत में ब्रज में उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की। उन्होंने श्री कृष्ण के लीलागान का उपदेश दिया। वल्लभ के पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य - कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्ण दास- सम्मिलित हैं। अष्टछाप के कवि पुष्टिमार्गी भक्त है, जिन्होंने कृष्ण की लीलाओं को विषय वस्तु बनाकर काव्य प्रणयन किया। इनमें सूरदास, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, उन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। 'सूरसागर' में कृष्ण की बाल और कैशोर वय की लीला के अंतर्गत उन्होंने वात्सल्य और श्रृंगार का जितना सूक्ष्म, स्वाभाविक और मार्मिक अंकन किया है वह समूचे हिन्दी साहित्य में अद्वितीय है। राग और रस के जिस आनंदोत्सव को सूर ने सूरसागर में दिखलाया है वह सहृदय को हमेशा आहलादित करता रहा है। उनकी कविता में समूचा व्रज अपने पूरे व्यक्तित्व के साथ सजीव हो उठा है।

राधा वल्लभ संप्रदाय, हरिदासी संप्रदाय (सखी संप्रदाय), गौड़ीय संप्रदाय का भी कृष्ण भक्ति काव्य में महम्वपूर्ण योगदान रहा है। राधा वल्लभ संप्रदाय में श्री कृष्ण से भी ज्यादा राधा को महत्व दिया गया है। राधावल्लभ संप्रदाय की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए विजेन्द्र स्नातक लिखते हैं- 'राधावल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण का प्रमुख स्थान नहीं है, राधा ही प्रमुख है। श्रीकृष्ण आनुवांशिक रूप से वर्णित हैं, किन्तु इस वर्णन में कृष्ण के भीतर सभी शक्तियों का समाहार अवश्य लक्षित होता है। वृदावन विहारी कृष्ण ही रसिक किशोर रूप में एकमात्र नित्यबिहारी पुरुष हैं। उनकी पराप्रकृति श्री राधा हैं, जो चित्-अचित् विशिष्ट अह्लादिनी निजशक्ति रूपा हैं।

सारा चराचर जगत् इन्हीं रसिक युगलकिशोर का प्रतिबिम्ब हैं। भगवान कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम परात्पर ब्रह्म के भी आदि कारण और ईश्वरों के भी ईश्वर है। श्रीकृष्ण का वृंदावनविहारी, मधुरावासी और द्वारकावासी के रूप में वर्णन मिलता है। ऐश्वर्य, ज्ञान, शक्ति और पराक्रम को अंतर्लीन कर, प्रेम और माधुर्य की साक्षात् मूर्ति बनकर वे गोप-गोपियों के साथ लीलारत रहते हैं। वे राधापति होकर रस राज श्रृंगार के सौन्दर्यमंडित रूप का विस्तार करने वाले हैं। इस संपदाय में श्रीकृष्ण का उपास्य नाम 'राधवल्लभ' है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डा. नगेन्द्र, पृ0 186) हितहरिवंश, दामोदरदास (सेवकजी), हरिराम व्यास चतुर्भुजदास, ध्रुवदास, नेही नागरीदास आदि इस संप्रदाय के प्रमुख काव्य भक्त कवि हैं। स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित सखी संप्रदाय में निकुंज बिहारी श्री कृष्ण को सर्वोपरि महत्ता दी गई है। चित्त को श्रृंगार रस से सराबोर कर श्रीकृष्ण की लीलाओं का दर्शन ही सखी (भक्त) को अभीष्ट है। इस संप्रदाय के प्रमुख कवि हरिदास, जगन्नाथ गोस्वामी, बीठल विपुल, बिहारिनदास आदि हैं। गौड़ीय संप्रदायय का प्रवर्तन चैतन्य महाप्रभु ने किया। उन्होंने गोलोक की लीलाओं, सहित ब्रज में बिहार करने वाले ब्रजेन्द्र कुमार श्री कृष्ण को उपास्य माना है। उनकी भक्ति माधुर्य भाव या कांता भाव की है। रामराय, गदाधर भट्ट, चंद्रगोपाल, भगवत मुदित, माधवदास 'माधुरी' आदि इस संप्रदाय के प्रमुख कवि है। इनके अतिरिक्त कई संप्रदाय निरपेक्ष कवि भी हुए जिनमें रसखान और मीरा का विशेष स्थान है।

कृष्ण भक्ति काव्य में मुख्यतया श्री कृष्ण कृष्ण की लीलाओं का ही चित्रण है। यथा- श्रीकृष्ण जन्म, पूतनावध, दधि-माखनचोरी, बाल कृष्ण की विविध चेष्टाएँ, गोदोहन, गोचारण, कालिया दमन, गोवर्धन-धारण, दान लीला, मान लीला, चीर हरण लीला, रास लीला, श्री कृष्ण मथुरा गमन, कंस वध, कुब्जा प्रसंग, भ्रमर गीत प्रसंग इत्यादि। श्री कृष्ण के लोक रक्षक रूप की अपेक्षा उनके लोक रंजक रूप को प्रमुखता दी गयी हैं। वात्सल्य और श्रृंगार इन कवियों के प्रधान क्षेत्र हैं। कृष्ण भक्ति काव्य में भ्रमरगीत प्रसंग काअपना एक अलग महत्व है। भ्रमरगीत गोपियों की निष्ठा और व्यथा के मार्मिक दस्तावेज के रूप में आता है, जहाँ उनकी वचनविदग्धता, वाक चातुरी भी प्रकट होती है। कृष्ण भक्ति काव्य के संदर्भ में, आचार्य शुक्ल कहते हैं- सब संप्रदायों के कृष्ण भक्त भागवत में वर्णित कृष्ण की ब्रजलीला को ही लेकर चले क्योंकि उन्होंने अपनी प्रेमलक्षणा भक्ति के लिए कृष्ण का मधुर रूप ही अपनाया। पर्याप्त महत्त्व की भावना से उत्पन्न श्रद्धा या पूज्य बुद्धि का अवयव छोड़ देने के कारण कृष्ण के लोकरक्षक और धर्मसंस्थापक स्वरूप को सामने रखने की आवश्यकता उन्होंने न समझी। भगवान के मर्मस्वरूप को इस प्रकार किनारे रख देने से उसकी ओर आकर्षित होने और आकर्षित करने की प्रवृत्ति का विकास कृष्ण भक्तों में न हो पाया। फल यह हुआ कि कृष्ण भक्त कवि अधिकतर फुटकर श्रृंगारी पदों की रचना में ही लगे रहे। उनकी रचनाओं में न तो जीवन के अनेक गंभीर पक्षों के मार्मिक रूप स्फुरित हुए, न अनेकरूपता आयी। ..... राधाकृष्ण की प्रेम लीला ही सब ने गायी।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 104) कृष्ण भक्ति काव्य का माधुर्य भाव कालांतर में अतिशय श्रृगारिकता में तब्दील हो जाता है, और रीतिकाल का जन्म होता है।

कृष्ण भक्तिकाव्य प्रायः मुक्तकों के रूप में मिलता है, प्रबंध काव्य कम लिखे गये। भाषा प्रायः ब्रज रही है।

कृष्ण भक्ति काव्य के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं-

रचना	रचनाकार
सूरदास	सूर सागर, साहित्य लहरी, सूर सूरावली
नंददास	अनेकार्थ मंजरी, मान मंजरी, रस मंजरी, रूप मंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बाहरखड़ी, श्याम सगाई, सुदामा चरित, रूक्मिणी मंगल, भंवरगीत, रामपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, गोवर्धनलीला, दशमस्कंधभाषा, नंददास पदावली
हितहरिवंश	हित चौरासी, स्फुटवाणी, संस्कृत में-राधा सुधनिधि, यमुनाष्टक
चतुर्भुज दास	भक्ति प्रताप, द्वादशयज्ञ, हित जू को मंगल
हरिदास	सिद्धांत के पद, केलिमाल
मीरा	गीत गोविंद की टीका नरसी जी का मायरा, राग सोरठ कापद, मलार राग, राग गोविंद, सत्यभामानु रूसणं, मीरा की गरबी, रूक्मणी मंगल, नरसी मेहता की हुण्डी, चरीत, स्फुट पद
रसखान	सुजान रसखान, प्रेमवाटिका, दानलीला, अष्टयाम

2.6 भक्तिकाव्य का महत्व

भक्ति काव्य हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है। यह सिर्फ आध्यात्मिक परितोष ही नहीं प्रदान करता, सन्मार्ग पर चलने की, एक उदार-मानवीय समाज निर्मित करने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। भक्त कवियों ने भक्ति को सहज-सरल बनाकर उसे शास्त्र-पुरोहित-कर्मकाण्ड-बाह्याचार की जकड़बंदी से मुक्त किया, इससे सामान्य मनुष्य भी भक्ति का अधिकारी बन सका। भक्ति काव्य वर्गगत-वर्णगत-संप्रदायगत भेदभाव के ऊपर मानुष सत्य को महत्व देता है। जिस सत्य-शील-सदाचार युक्त जीवन पद्धति की इन कवियों ने वकालत की है वह मनुष्य के जीवन को नैतिक बनाता है। इस काव्य, विशेषकर संत कवियों ने जिस तरह जातिगत भेद भाव को अर्थहीन साबित करते हुए मानव मात्र की एकता-समता का प्रतिपादन किया हैं उससे सदियों से वंचित-उपेक्षित वर्ग को एक नया बल मिलता है। सूफी कवियों ने हिन्दू-मुस्लिम की भावात्मक एकता को प्रोत्साहित किया। रामकाव्य से समाज को जीवन-मानवीय सम्बन्धों का आदर्श मिलता है। तुलसी ने विविध प्रवृत्तियों में समन्वय की जो चेष्टा की है, वह अंततः लोक मंगलकारी सिद्ध होता है। कृष्णभक्ति काव्य से समाज में राग-रस का संचार होता हैं। भक्तिकाव्य ने कला, संगीत

को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। कृष्ण भक्ति काव्य ने संगीत, विविध राग-रागनियों के विकास में बड़ा भारी योग दिया। भक्त कवियों ने संस्कृत, फारसी को न अपनाकर लोकभाषा को अपनाया, इससे लोक भाषाओं का साहित्यिक विकास होता है। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी और व्रज भक्तिकाव्य की ही देन है। उच्चादर्शों से परिचालित होने के कारण ही भक्ति काव्य इतना प्रेरक और प्रभावी सिद्ध हुआ। भक्तिकाव्य के महत्व को रेखांकित करते हुए प्रेमशंकर लिखते हैं- 'भक्तिकाव्य की लंबी यात्रा का कारण देवत्व नहीं है, इसके विपरीत उसकी मानवीय चिंता है, जो उसे आज भी किसी बिंदु पर प्रासंगिकता देती है, उसे और उसे खारिज कर पाना उनके लिए भी कठिन , जो स्वयं को भक्तिमार्गी कहने से बचना चाहते हैं। भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र है, समय-समाज से उसकी टकराहट जो कभी कबीर की तरह जुझारू दिखाई देती है, और अन्यत्र संयत, पर असंतोष सबमें है। समाजदर्शन है- नए विकल्प की खोज, नए मूल्य-संसार की तलाश। रामकृष्ण तो माध्यम हैं, वास्तविक लक्ष्य है, रचना स्तर पर उच्चतर भावलोक की प्राप्ति। समाजशास्त्र और समाज दर्शन के लिए भक्तिकाव्य ने जिस अभिव्यक्ति कौशल का आश्रय लिया, वह स्वतंत्र चर्चा का विषय है। पर रचना की प्रमाणिकता के लए इन सजग कवियों ने पूरा मुहावरा लोकजीवन से ही प्राप्त किया- भाषा, छंद आदि। भक्तिकवियों में मध्यकालीन लोकजीवन की उपस्थिति और एक वैकल्पिक मूल्य-संसार की तलाश उसकी सामर्थ्य का प्रमाण है। भक्तिकाव्य में समाजदर्शन मिलकर अपने रचना-संसार को ऐसी दीप्ति देते हैं कि उसे कालजयी काव्य कहा जाता है। उसका वैशिष्ट्य यह है कि वह अपने समय से संघर्ष करता हुआ?, उसे पार करने की क्षमता का प्रमाण देता है और लोक को सीधे ही संबोधित करता है, पूरे आत्मविश्वास के साथ। उसका वैकल्पिक भाव-विचार-लोक उसका 'काव्य-सत्य' है, जिसे व्यापक स्वीकृति मिली।' (भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, पृ0 88)

अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अष्टछाप की स्थापना किसने की?
2. रासपंचाध्यायी के रचयिता हैं?
3. कबीर की वाणियों का संग्रह हैं?
4. तुलसी द्वारा रचित कितने ग्रंथ माने जाते हैं?
5. तुलसी की भक्ति किस प्रकार की है?
6. 'मृगावती' के रचनाकार है?
7. रत्नसेन किस प्रेमाख्यानक काव्य का नाटक है?
8. 'भक्त माल' के रचयिता है?

2.7 सारांश

भक्तिकाव्य दो धाराओं में विभक्त है- निर्गुण भक्त काव्य और सगुण भक्ति काव्य। इनका भी क्रमशः संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य और रामभक्ति काव्य, कृष्णभक्ति काव्य में विभाजन हुआ है। भक्ति काव्य की विविध धाराओं की विभिन्नता के बावजूद, ऐसी कुछ समान विशेषताएँ हैं जो समूचे भक्ति काव्य में दिखलाई पड़ती हैं यथा-भक्ति, गुरुमहिमा, नाम स्मरण का महत्व, सत्य-शील-सदाचार पर बल, लोकधर्मिता इत्यादि। निर्गुण सगुण भक्ति में मुख्य भेद उपास्य के स्वरुप भक्ति, के आधार को लेकर है। निर्गुण भक्ति में ब्रह्म को निराकार, अजन्मा, अशरीरी, इंद्रियातीत माना गया है जबकि सगुण भक्ति में ब्रह्म सविशेष, साकार इंद्रिय गम्य है। अवतारवाद में निर्गुण संतों की कोई आस्था नहीं है, जबकि सगुण भक्त ईश्वर के अवतारों में विश्वास करते हैं। भक्तिकाव्य का उदय एवं विकास भक्ति आंदोलन के दौरान होता है। सिद्ध, नाथ, दक्षिण के आलवार, महाराष्ट्र के नामदेव, वैष्णव आचार्यों, सूफियों इन सभी की प्रेरणा प्रभाव स्वरुप संतकाव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति, कृष्ण भक्तिकाव्य का विकास होता है। भक्ति काव्य की इन चारों शाखाओं के क्रमशः प्रतिनिधि रचनाकार कबीर जायसी, तुलसीदास और सूरदास है। भक्तिकाव्य की मूल संवेदना भक्ति है, वह समाज की आध्यात्मिकक तृषा को तृप्ति प्रदान करता है, उसकी प्रवृत्तियों का परिष्कार कर उसे ईश्वरोन्मुख होने की प्रेरणा देता है। भक्ति काव्य का सबसे बड़ा महत्व उसकी मानवीयता और लोकधर्मिता के कारण है।

2.8 शब्दावली

उलटबाँसी-लोक व्यवहार से उल्टी बात। उलटबाँसी के अंतर्गत ऐसी बातों का कथन होता है, जो व्यावहारिक जीवन में दिखाई पड़ने वाली बातों के विपरीत होती है। इसमें घुमा-फिराकर, प्रतीकों का सहारा लेकर अभीष्ट अर्थ को प्रकट किया जाता है। इससे कथन में चमत्कार आ जाता है। उलटवॉसी शैली सिद्धों नाथों की विशेषता थी। संत कवियों विशेषकर कबीरदास ने इस शैली को अपनाया है।

अंतस्साधना-अंतस्साधना का अर्थ है, वह साधना जो भीतर ही भीतर की जाती है, जिसमें बाह्य पूजा-विधान, कर्मकाण्ड इत्यादि की कोई आवश्यकता नहीं होती है। अंतस्साधना के दो रूप हैं-एक के अंतर्गत यौगिक क्रियाएँ-कुण्डलिनी-जागरण, चक्र-भेदन, शून्य समाधि इत्यादि आती हैं। दूसरे के अंतर्गत पूरी तन्मयता के साथ प्रभु का चिंतन-मनन, नामस्मरण आता है। संत कवियों ने बाह्यसाधना का विरोध किया है और अंतस्साधना को महत्व दिया है।

रहस्यवाद-अव्यक्त, निराकार, ब्रह्म की जिज्ञासा, आत्मा-परमात्मा के एकात्म की अनुभूति रहस्यवाद है। इसके अंतर्गत अनुभवातीत ब्रह्म को अनुभव के दायरे में लाया जाता है, साधना की विविध स्थितियों का निरूपण आता है। शुक्ल जी रहस्यवाद के दो भेद मानते हैं- साधनात्मक रहस्यवाद और भावात्मक रहस्यवाद।

सधुक्कड़ी भाषा- संतों की भाषा को सधुक्कड़ी कहा गया है। दरअसल सधुक्कड़ी भाषा विभिन्न भाषाओं-बोलियों-भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी, खड़ी बोली, पंजाबी, अरबी-फारसी का एक मिश्रित रूप है। संतों की धूमंतू प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा में विविध क्षेत्रों, बोलियों के शब्द मिलते हैं।

पुष्टि-पुष्टि का अर्थ है पोषण, अनुग्रह। बल्लभाचार्य ने भगवत्नुग्रह अर्थात् पुष्टि की प्राप्ति को भक्त का लक्ष्य माना है। इसे प्रेमालक्षण भक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है। 'पुष्टि' पर बल देने के कारण ही बल्लभ के भक्ति मार्ग को पुष्टिमार्ग कहा गया है।

अष्टछाप-पुष्टिमार्ग भक्त कवियों को अष्टछाप के कवि कहा जाता है। अष्टछाप की स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने की। इसमें चार वल्लभाचार्य के शिष्य और चार विट्ठलनाथ जी के शिष्य हैं। ये आठ कवि हैं- कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास, गोविंदस्वामी, नंददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। कृष्ण की लीलाओं का गान श्रीनाथ जी के अष्टयाम की सेवा इनका कार्य था। ये आठ कवि 'अष्टसखा' भी कहलाते हैं।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. विट्ठलनाथ
2. नंददास
3. बीजक
4. 12
5. दास्य भाव की
6. कुतुबन
7. पद्मावत
8. नाभादास

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - सूर साहित्य, राजकमल प्रकाशन।
7. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन।
8. द्विवेदी, हजारी प्रसाद - हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन।
9. शुक्ल, रामचंद्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
10. मिश्र, शिव कुमार- भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य, अभिव्यक्ति प्रकाशन।
11. मुक्तिबोध, गजानन माधव- नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, राजकमल प्रकाशन।

2.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य औरसंवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. नगेन्द्र
3. हिन्दी साहित्य कोश- भाग-1 - सं. धीरेन्द्र वर्मा
4. भक्ति काव्य का समाज दर्शन - प्रेमशंकर
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निर्गुण सगुण भक्ति के साम्य-वैषम्य पर प्रकाश डालिए?
2. भक्ति काव्य के महत्व का उद्घाटन कीजिए?
3. भक्ति काव्य की विविध शाखाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।
4. भक्तिकाव्य की सामान्य विशेषताएँ क्या हैं?

इकाई 3 भक्तिकालीन कविता: विविध शाखाएँ

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संतकाव्य
  3.3.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.3.2 प्रमुख कवि
  3.3.3 उपलब्धियाँ
3.4 प्रेममार्गी सूफी काव्य
  3.4.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.4.2 प्रमुख कवि
  3.4.3 उपलब्धियाँ
3.5 रामभक्ति काव्य
  3.5.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.5.2 प्रमुख कवि
  3.5.3 उपलब्धियाँ
3.6 कृष्ण भक्ति काव्य
  3.6.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ
  3.6.2 प्रमुख कवि
  3.6.3 उपलब्धियाँ
3.7 सारांश
3.8 पारिभाषिक शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

यह इकाई भक्तिकालीन कविता की विविध शाखाओं-संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, राम भक्ति काव्य, कृष्ण भक्ति काव्य पर आधारित है। उपास्य के स्वरुप, ईश्वर की संकल्पना के आधार पर भक्ति काव्य को दो वर्गों -निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य में बाँटा जाता है। फिर इनका भी वर्गीकरण उपरोक्त चार शाखाओं में किया गया है। इसके पूर्व की इकाईयों में हम लोगों ने 'भक्तिकालीन कविता का उदय' और 'भक्तिकालीन कविता: प्रक्रिया और विकास' की चर्चा की। इन दोनों इकाईयों को पढ़ने के पश्चात् आप भक्तिकालीन कविता के बारे में काफी कुछ जान गये होंगे। अब तक हम लोगों ने भक्तिकालीन कविता के आधार, भक्ति कालीन कविता के विकास की चर्चा की है, अब हम भक्तिकालीन कविता की विविध शाखाओं की चर्चा करेंगे। इन शाखाओं की प्रवृत्तियों, विशद प्रमुख कवि, महत्व का क्रमवार विवेचन किया जाएगा।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

- संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति काव्य, कृष्ण भक्तिकाव्य से अवगत हो सकेंगे।
- भक्तिकालीन कविता की विभिन्न शाखाओं की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या रही है, इस प्रश्न का उत्तर पा सकेंगे।
- विभिन्न शाखाओं के प्रमुख कवियों जैसे कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीरा, रसखान से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न भक्तिकालीन शाखाओं के महत्व को समझ सकेंगे।

3.3 संत काव्य

निर्गुण पंथ की ज्ञानाश्रयी शाखा को संत काव्य कहा गया। संताकाव्य उन संतों द्वारा रचा गया जिन्होंने निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति भाव रखते हुए बहुदेववाद, अवतारवाद, शास्त्र एवं पुरोहित, मिथ्याडम्बरों का विरोध किया और जातिगत, संप्रदायगत भेदभाव को नकारते हुए सभी मनुष्यों को समान, एक ही ईश्वर का अंश बतलाया। ये संत सीधा-सादा जीवन जीते थे, संसार, घर-गृहस्थी में रहकर भी सांसारिकता से अलिप्त थे। प्रायः ये संत समाज के निचले तबके से थे, उस तबके से जो वर्णाश्रमव्यवस्था में नीच, अछूत घोषित था। वास्तव में संत मत ब्राह्मण धर्म, व्यवस्था के सामानांतर चलने वाली बौद्धों, सिद्धों-नाथों की लोक परम्परा की अगली कड़ी है। इस धारा का प्रादुर्भाव अपने पूर्व की परम्परा से बहुत कुछ ग्रहण कर होता है। एक तरफ संतों पर यदि उपनिषदों के तत्व-चिंतन, वैष्णव धर्म के अहिंसावाद व प्रपत्तिवाद, शंकर के मायावाद,

रामानंद का प्रभाव है तो दूसरी तरफ इन संतों ने बौद्धों के दुखवाद, सिद्धों-नाथों की रहस्यवादिता, शून्य समाधि, योग गुरु महिमा, शास्त्र-पुरोहित-बाह्यायाडम्बर, जाति-पाँति का विरोध, इस्लाम के एकेश्वरवाद, सूफियों के प्रेम-दर्शन को भी ग्रहण किया है। इन सबके योग से ही संतमत का निर्माण होता है। संतमत के प्रवर्तक कबीर है, वैसे मराठी कवि नामदेव की रचनाओं में भी निर्गुण भक्ति के तत्व है। किंतु संतकाव्य की प्रवृत्तियों की अत्यंत सशक्त उपस्थिति पहली बार हमें कबीर के यहाँ ही दिखलाई पड़ती है। संत काव्य के वह प्रवर्तक ही नहीं, केन्द्रीय रचनाकार भी हैं। समूचा संत काव्य उन्हीं की मान्यताओं, वाणियों से आच्छादित है। कबीर की परम्परा को आगे रैदास, दादू दयाल, नानक, रज्जब, मलूकदास, जंभनाथ, सुंदरदास इत्यादि संत विकसित करते है। और देखते ही देखते इस संत धारा में कई संप्रदाय उठ खड़े होते है जैसे-कबीर पंथ, लाल पंथ, दादू पंथ, विश्नोई संप्रदाय, उदासी संप्रदाय, नानक पंथ, बाबालाली संप्रदाय, बावरी पंथ, निरंजनी संप्रदाय सत्यनामी संप्रदाय इत्यादि। आइए अब संतकाव्य की प्रवृत्तियों को देखें।

3.3.1 प्रवृत्तियाँ –

(क) निर्गुण ब्रह्म में विश्वासः- संत कवियों ने ब्रह्म के निर्गुण अर्थात् निराकार, अजन्मा, अशरीरी, निर्विशेष, अव्यक्त, अगोचर रूप को स्वीकार किया है। इस निर्गुण ईश्वर को उन्होंने राम, केशव, गोविंद, भगवान, निरंजन, माधव, हरि आदि कहकर भजा है। वह परमतत्व, परमेश्वर अकथनीय, अनिर्वचनीय है। रैदास कहते है-

जैसो मैं आगे कहि आयो, फिर समझो वैसो नहिं पायो।
जो कछु कहियो नाहीं नाहीं, सो सब देखा बांके माहीं।
अकथ कथा कछु, कही न जाई, जो भाखौं, सो ही मुरखाई।'

वह निर्विकार, अविनाशी है, अतर्क्य है, रैदास कहते हैं-

निश्चल निराकार अतिअनुपम निरभै गति गोविंदा।
अगम अगोचर अक्षर, अतरक, निर्गुण अति आनंदा।
सदा अतीत ज्ञान विवर्जित, निर्विकार अविनाशी।।

उस अविगत ब्रह्म को लखा नहीं जा सकता, जो अनादि है, अनंत है उसे बतलाने में वाणी असमर्थ हैं इसीलिए कबीर ने कहा हैं- 'निर्गुण राम जपहु रे भाई, अविगत की गति लखी न जाई।' उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, सिर्फ उसे अनुभव किया जा सकता है, कबीर कहते हैं-

पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान।।'

वही परम पुरुष है, जो समस्त सृष्टि में व्याप्त है, सर्वत्र उपस्थित है- 'पूरण ब्रह्म बसै सब ठाहीं।' उस ईश्वर का इस घट अर्थात् शरीर में भी निवास है, किन्तु मनुष्य अज्ञानतावश उसका

अनुभव, उसका साक्षात्कार नहीं कर पाता। जिस तरह कस्तूरी मृग के नाभि में रहती हैं, किन्तु उसकी तलाश में मृग जंगल-जंगल भटकता है, उसी तरह मनुष्य भी ईश्वर की खोज में भटकता है, -कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढँढ़ै मन माहिं।'

(ख) अवतारवाद एवं बहुदेववाद का खण न- संत कवि ब्रह्म को अशरीरी, अजन्मा मानते है, उनकी दृष्टि में परम तत्व एक है। ईश्वर समस्त चराचर जगत में व्याप्त है, उसकी अनेक सत्ता नहीं है, वह एक ही हैं। इन मान्यता के कारण के संत कवि न तो अवतारवाद में विश्वास करते है और न ही बहुदेववाद में। कबीर के अनुसार निर्गण राम ही राम नाम का मर्म है-'दशरथ सूत तीहि लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।' रैदास भी कहते हैं जिस दशरथ सुत राम के फेर में संसार पड़ा हुआ है, वह तो राम है ही नहीं-'राम कहत सब जगत भुलाना सो यह राम न होई।' संतों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि कई देवताओं के अस्तित्व को नहीं माना। उनकी दृष्टि में परमपुरुष एक ही है। कबीर कहते हैं-

'अक्षय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन बाकी ार।
त्रिदेवा शाखा भये पात भया संसार।।

दरअसल संतों ने अनुभव किया कि बहुदेववाद एवं अवतारवाद के कारण धर्म क्षेत्र में कई तरह के अंधविश्वास, मिथ्याडम्बर प्रचलित हो गए है नए-नए संप्रदाय बन गये हैं, और उनमें परस्पर कटुता-प्रतिद्वन्द्विता व्याप्त रहती है। इस तरह वे अवतारवाद एवं बहुदेववाद को कई प्रकार की विकृतियों की जड़ मानते है इसीलिए वह एक ईश्वर की बात करते हैं। जब ईश्वर एक होगा तब न संप्रदाय गत परस्पर श्रेष्ठता का भाव होगा और न ही आपसी वैमनस्यता। अवतारवाद एवं बहुदेववाद का खण्डन एवं एक ईश्वर की संकल्पना निस्संदेह संतों पर इस्लाम के प्रभाव के कारण है। इसे उपनिषेदों के दर्शन से भी जोड़कर देखा जा सकता है।

(ग) मानसिक भक्ति- संतों की उपासना पद्धति पूर्णतया मानसिक, अभ्यांतरिक है। जिसे अंतस्साधना भी कहते है। इस साधना पद्धति में स्थूल एवं बाह्य साधनों का कोई महत्व नहीं है। इस साधना पद्धति में न तो शास्त्रज्ञान की बोझिलता है, न योग की दुरुहता, न कर्मकाण्डों-बाह्याचारों का तामझाम। इसमें तो केवल भाव अपेक्षित है। प्रभु के प्रति सच्ची श्रद्धा, उत्कट राग और मन-वचन कर्म की निष्कलुषता होनी चाहिए। यह 'भाव भगति' है जिसे निरक्षर एवं साधनहीन भी साध सकता हैं, यदि उसके अंदर प्रभु के प्रति भाव है। सरल होते हुए भी यह अत्यंत कठिन साधना है, क्योंकि संसार में लिप्त चित्त को ईश्वरोन्मुख करना सहज नहीं है।

(घ) नाम स्मरण का महत्व- संत कवियों ने 'नाम स्मरण' को सवाधिक महत्व दिया है। 'सच्चा सुमिरन' ही भवबंधन को काटने वाला है, ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाला है। विषय-वासनाओं से चित्त को विमुख कर पूरी एकाग्रता एवं तन्मयता के साथ प्रभु के नाम का जप उसका स्मरण ही 'सुमिरण' है। सच्चा सुमिरण कैसा है, इसे बतलाते हुए कबीर कहते हैं-

सहजो सुमिरन कीजियै, हिरदै माहिं छिपाई।
होठ होठ सूं ना हिले सकै नहिं कोई पाई।।

नाम स्मरण से ही भला होगा, किसी और माध्यम से नहीं-'**कबीर कहता जात है सुनता है सब कोय/राम कहे भला होयगा, नहिं तर भला न होय।'** दादू भी हृदय में 'नाम' को संजोकर रखने को कहते है, क्योंकि वह समस्त सांसारिक सुखों से भी अनमोल है, वह कहते हैं-

दादू नीका नांव है सो तू हिरदै राखि।
पाखण परपंच दूर करि सुनि साधु जन की साखि।'

कालिकाल में मुक्ति मात्र नाम स्मरण से मिल जायेगी, रैदास कहते हैं-

सुत जुग, सत, भेता जगी, द्वापर पूजा चार।
तीनों जुग तीनों हढ़े, कलि केवल नाम-आधार।।'

'नाम स्मरण' भाव-भगति का ही रूप हैं। 'नाम स्मरण' पर सर्वाधिक जोर देकर संतों ने भक्ति क्षेत्र में जहाँ एक ओर शास्त्र और पुरोहित की भूमिका को अनावश्यक बना दिया, वहीं दूसरी ओर भक्ति का एक ऐसा सरल और लोकग्राह्य रूप प्रस्तुत कर दिया जो मिथ्याडम्बरो-बाह्याचारों से मुक्त थी। दरअसल 'नाम स्मरण' भक्ति का सरलतम रूप हैं।

(ङ) गुरु महिमा- संतों ने गुरु के प्रति अत्यंत श्रद्धा व्यक्त की है। सद्गुरु ही विषय-वासनाओं की निरर्थकता का बोध कराता है, वह ज्ञानदीप जलाता है जिससे भीतर-बाहर उजियारा हो जाता है, हृदय में प्रभु प्रेम रुपी बीज रोपता है। सद्गुरु बड़े सौभाग्य से मिलता है। उस व्यक्ति का जीवन सार्थक हो जाता है, जिसे सद्गुरू मिलता है। इसीलिए कबीरदास कहते-

गुरु गोविंद दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु अपने गोविंद दियो बताय।।

सदगुरू अपनी दीक्षा, अपने उपदेश से शिष्य को प्रभु प्रेम से सराबोर कर देता है, जिससे शिष्य रसमग्न हो जाता है, उसे ब्रह्मानंद की अनुभूति होने लगती है, वह आत्माराम हो जाता है। तभी तो कबीर कहते हैं-

सद्गुरु हमसे रीझकर कह्या एक प्रसंग।
बादल बरसा प्रेम का भीज गया सब अंग।।

संतों के यहाँ दिखलाई पड़ने वाली गुरु महिमा सिद्धों-नाथों का प्रभाव है। सिद्धों-नाथों के यहाँ भी गुरु के के प्रति अत्यंत श्रद्धा भाव प्रकट किया गया है।

(च) मिथ्या म्बरों एवं रूढ़ियों का विरोध- संत कवियों ने व्रत, तप, तीर्थ, यज्ञ, रोजा, नमाज, मूर्तिपूजा, अंधविश्वास, आदि का विरोध किया है। वे जहाँ कहीं भी, छल, छद्म, झूठ-फरेव देखते हैं उसका विरोध करते है। उनकी दृष्टि में भक्ति के लिए बाह्याडम्बर नहीं भाव अनिवार्य है। उनके

विरोध के केन्द्र में शास्त्र एवं पुरोहित हैं, क्योंकि बार-बार शास्त्रों का हवाला देकर पुरोहित लोग समाज में मिथ्याडम्बर एवं अंधविश्वास फैलाते हैं, समाज में ऊँच-नीच का भेदभाव पैदा करते हैं। वे 'कागद लेखी' पर नहीं 'आँखिन देखी' पर विश्वास करते है। प्रेम को पोथी ज्ञान से श्रेयस्कर मानते हैं- कबीर कहते हैं-**'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंि त भया न कोय/ ाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंि त होय।'**

भक्ति शास्त्र के ज्ञान और बाध्य विधि-विधान से नहीं प्रेम से ही संभव होती है। प्रेम से ही परमेश्वर को साधा जा सकता है। अतः साधना पथ में किसी भी प्रकार का आडम्बर व्यर्थ है, बकवास है। कबीर ने हिंदू-मुस्लिम, ज्ञानी-योगी, पंडित-मौलवी किसी को नहीं बख्शा है, बाह्याडम्बरों की भर्त्सना करते हुए वह कहते है-

'दुनिया कैसी बावरी, पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजे, जेहि का पीसा जाय।
कनवा फराय जोगी जटवा बढ़िलै
ढ़ाढ़ी बढ़ाय जोगी होय गैलें बकरा
जंगल जाय जोगी धुनिया रमालै
काम जराय जोगी बन गैले हिजरा।'

इसी तरह इस्लाम की रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए कहते हैं'-

'कांकर पाथ जोरि के मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ि मुल्ला बाग दे, बहिरा हुआ खुदाय।'

इसी तरह रैदास भी बांह्याचारों को भक्ति न मानते हुए कहते हैं-

'ऐसी भक्ति न होई रे भाई, राम नाम बिन जो कछू करिये, सो सब भरम कहाई।।
भक्ति न निद्रा साधै, भक्ति न बैराग बाँधे, भक्ति नहीं सब बेद बड़ाई।।
भक्ति न मुण मुँड़ाई, भक्ति न माल दिखाई, भक्ति न चरन धुवांये, भक्ति न गुनी कहाये।।

(छ) जातिगत एवं साम्प्रदायिक भेदभाव-वैमनस्य का विरोध- संतकवि मनुष्य मात्र की एकता-समता के प्रचारक-प्रसारक हैं। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखा है ब्राह्मण-शूद्र या हिंदू-मुसलमान के रूप में नहीं। उनकी दृष्टि में मनुष्य जन्म से नहीं कर्म से अपने आचरण से श्रेष्ठ बनता है। कबीर कहते हैं 'जांति-पांति पूछै नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' परमतत्व परमेश्वर समस्त चराचर जगत में व्याप्त है, सभी मनुष्यों में उसी का अंश विद्यमान है। इसीलिए भेदभाव निरर्थक हैं। अपने-अपने ईश्वर को बड़ा बतलाने वाले हिंदू-मुसलमान दोनों को कबीर फटकारते हैं और राम-रहीम की एकता की बात करते हैं। ईश्वर एक ही है, भले उसके नाम भिन्न-भिन्न हो। अतः सांप्रदायिक भेदभाव को छोड़कर भाईचारे के साथ रहना चाहिए। जांति-पांति के विरोध की प्रेरणा संत कवि सिद्धों-नाथों से पाते हैं। सिद्धों-नाथों की तरह संतों में भी अधिकांश

समाज के निचले वर्ग से आये थे, जातीय भेदभाव के को उन्होंने झेला था। इसी कारण उनकी वाणियों में जाति व्यवस्था के नकार का इतना गहरा स्वर मिलता है।

(ज) सांसारिकता के प्रति उदासीनता- संत कवि सांसारिक विषय वासनाओं, सांसारिक सम्बन्धों को खोखला,, निस्सार मानते है। माया के बंधन में ही फँसकर मनुष्य उचित-अनुचित का भेद भूल जाता है, नश्वर जीवन और संसार को वास्तविक मान लेता है, फलतः उसे अपने वास्तविक स्वरुप का बोध नहीं हो पाता और वह भवबंधन में जकड़ता चला जाता है। इसीलिए संतों ने सांसारिक सुख-सुविधाओं, नेह-नातों से उदासीन रहने का उपदेश दिया है, इस काया और माया की नश्वरता और नि-स्सारता का बोध उनमें बराबर बना रहता है। रैदास कहते हैं-

जल की भीति पवन का थम्भा, रकत बूँद का गारा।
हाड़ मांस की नाड़ी को पिंजर, पंखी बसै बिचारा।।
प्रानी किआ' मेरा किआ तेरा, जैसे तरुवर पंखि बसेरा।
राखउ कंधउ सारउ नीवां, साढ़े तीन हाथ तेरी सीवां।
बंके बाल पाग सिर `री, हु तन हो ओ भसम की `री
ऊँचे मंदर सुंदर नारी, राम नाम बिनु बाजी हारी।।

ध्यान देने वाली बात है कि संत कवि, सांसारिक से अनासक्त होने की बात करते है, किंतु घर-परिवार को त्यागकर जंगल जाकर धूनी रमाने की बात नहीं करते हैं। संसार में रहते हुए सांसारिक प्रपंचों से बचकर परमात्मा की भक्ति ही उन्हें काम्य है। चाहे कबीर हों या रैदास, सभी अपना-अपना व्यवसाय, काम-धाम करते हुए भक्ति करते हैं। उनकी भक्ति एवं जीवन में कर्मण्य जीवन का संदेश निहित है।

(झ) रहस्यवादी प्रवृत्ति- संतकाव्य में रहस्यात्मक प्रवृत्ति भी मिलती है। योग साधना के प्रभाव के कारण इड़ा-पिंगला, कुण्डलिनी जागरण, चक्रभेदन, सहस्रार चक्र, अनहद नाद, शून्य चक्र, गगन गुफा, उल्टी गंगा जैसी यौगिक शब्दावली संतों के यहाँ मिलती है। कहीं ब्रह्म के स्वरूप, उसकी महिमा का वर्णन है तो कहीं साधना की प्रक्रिया का। आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध का उद्घाटन करते हुए कबीर कहते हैं-

'जल में कुंभ कुंभ में जल भीतर बाहर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत् कहो गयानी।।'

साधनात्मक रहस्यवाद को रैदास के यहाँ भी देखा जा सकता है, वह कहते हैं कि मैं अपनी साधना द्वारा गंगा को उलट कर जमुना में मिला दूँगा, और बिना जल के ही स्नान करूँगा-

उल्टी गंग जमुन में ल्याऊँ, बिन ही जल मज्जन कहा पाऊँ।
लोचन भरि भरि बिम्ब निहारुँ, ज्योति विचारि न और निहारुँ।'

सूफियों के प्रभाव स्वरुप संतों के यहाँ भावनात्मक रहस्यवाद भी दिखलाई पड़ता है, जब संत कवि दांपत्य रूपकों द्वारा आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों को प्रकट करते हैं, कबीर राम को पति और स्वयं को दुल्हिन मानते हुए कहते हैं-

दुलहिन गावउ मंगलचार, हम घर आये हो राजाराम भतार।
रामदेव मोहे व्याहन आये मैं जोबन मतमाती
रामदेव संग भांवर लेहूं, धनि धनि भाग हमार।
सुर तैंतीस कोटि आये, मुनिवर सहस उठासी।
कहैं कबीर हम ब्याह चलै हैं, पुरुष एक अविनाशी।।

प्रियतम परमात्मा के विछोह से व्याकुल होकर रैदास कहते हैं-

'कह रैदास स्वामी ते बिछुरै एक पलक जुग जाई।
भोर भयो मोहि क टक जोवत तलफत रजनी जाई।।'

(ञ) नारी के प्रति दृष्टिकोण- संतों ने नारी को माया, 'महा ठगिनी' के रूप में देखा। नारी संसर्ग के कारण व्यक्ति का विवेक भ्रष्ट हो जाता है, वह परमात्मा से विमुख हो जाता है और नारी संसर्ग जन्य सुख को ही वास्तविक सुख मान लेता है। नारी माया है, मोह फाँस में बाँधकर वह साधक को साधनाच्युत कर देती है, उसे दिग्भ्रमित कर विषय-वासनाओं में उलझा देती है। इसीलिए संतों ने नारी से दूर रहने की बात कही है कबीर कहते हैं- **नारी की झाई परत अंधा होत भुजंग/कबिरा तिनकी कौन गति जे नित नारी के संग।** लेकिन नारी के पवित्रता रूप की वह सराहना करते हैं, उसके प्रति सम्मान का भाव रखते हैं-

'पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरुप।
पतिव्रता के रुप पे वारों कोटि सरुप।।'

नारी के प्रति संतों के दृष्टिकोण को हम प्रगतिशील एवं उदार नहीं कह सकते हैं। संतों की तमाम प्रगतिशील भूमिकाओं के बावजूद यह उनकी एक खामी है। इस मामले में वह युगीन सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाते। दरअसल संत कवि जिस मध्यकालीन समय और समाज की उपज हैं वह समाज नारी को या तो भोग्या मानता है या पथभ्रष्टा। नारी को साधना पथ में बाधक, चरित्र को भ्रष्ट बनाने वाली नारी सम्बन्धी तत्कालीन समाज की जो सोच है, संत कवि उससे उबर नहीं पाते।

(ट) अभिव्यंजना पक्ष- संतों ने लोक भाषा का प्रयोग किया है, उनकी भाषा अनगढ़ और सरल हे। उसका कोई एक निश्चित रूप नहीं, उसमें अवधी, भोजपुरी, ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी, अरबी, फारसी का मिश्रण है। विभिन्न बोलियों-भाषाओं के शब्दों का मिश्रण होने के कारण ही उनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी भाषा' कहा गया है। सामान्यतः संत कवि निरक्षर थे, 'मसि कागद छुयो नहीं' वाली कबीर की बात सभी संतों पर लागू होती है। कविताई उनका उद्देश्य भी नहीं हैं, इसलिए उनके यहाँ कलात्मक सजगता, कलात्मक परिपूर्णता नहीं है। किंतु

भक्ति की तन्मयता, सीधी-सच्ची बात के कारण उनकी कविता असरदार बन पड़ी है। शैली की दृष्टि से कहीं उपदेशात्मक शैली है तो कहीं वर्णनात्मक शैली। तत्व चिंतन के समय गुरु-गंभीर शैली है तो सामाजिक कुरीतियों, बाह्याडम्बरों पर प्रहार करते, समय हास्य-व्यंग्यात्मक शैली है। भक्ति की विह्वलता के क्षणों में संतों की वाणी अत्यंत भावात्मक हो उठती है। अपने अभिप्राय को प्रकट करने के लिए जब-तब वे प्रतीकों का भी सहारा लेते है, बहुधा वे लोक जीवन से प्रतीकों को चुनते है। उलटवासियों में हमें अत्यंत प्रतीकात्मक एवं गूढ़ अर्थ व्यंजक भाषा दिखलाई पड़ती है। उनकी उलटवासियाँ कौतूहलजनक हैं। अलंकार भी संत काव्य में खूब मिलते हैं किन्तु ये पूर्वनियेाजित नहीं होते, अलंकार अत्यंक स्वाभाविक रूप में आये हैं। रूपक, उपमा, दृष्टांत, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक और अनुप्रास अलंकार संत काव्य में ज्यादा प्रयुक्त हुए हैं। रस की दृष्टि से शांत रस की प्रधानता है, वैसे दाम्पत्य रूपकों द्वारा भक्ति की व्यंजना में श्रृंगार रस, ब्रह्म की विराटता के वर्णन में अद्भुत रस, कर्मकाण्डों पर प्रहार करते समय हास्य रस, देह की क्षणभंगुरता, और प्रेतादि के वर्णन में वीभत्स रस, माया से जूझते हुए साधनापथ पर अग्रसर साधक के वर्णन में वीर रस को देखा जा सकता है। संत काव्य मुख्यतः साखी और 'सबद' के रूप में है। साखी की रचना दोहों में है, सबद गेय पदों में है। संत सुंदरदास ने सवैयों का भी प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है। छंद की दृष्टि सुंदरदास की रचनाएँ परिपक्व हैं। छंदशास्त्र का ज्ञान न होने के कारण संतों की रचनाओं में काफी अशुद्धियाँ भी मिलती हैं।

1.3.2 प्रमुख कवि

(1) कबीरदास- कबीर निर्गुण पंथ के प्रवर्तक है, अपने सरोकार एवं तेवर के कारण वह मध्यकाल के सबसे विद्रोही, प्रगतिशील और आधुनिक कवि है। उनके जन्म और जीवन के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। उन्हें एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न माना जाता जिसे नीरु नामक जुलाहे ने पाला-पोसा। उन्हें रामानंद का शिष्य बतलाया जाता है, मुस्लिमों के अनुसार सूफी फकीर शेख तकी उनके गुरु थे। विद्वानों ने कबीर के जीवन को 1398-1518 ई. तक माना है। कबीर मुख्यतः संत है, तत्वज्ञानी हैं, उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की भक्ति की। उनकी भक्ति पर वैष्णवों की अहिंसा व प्रपत्ति-भावना, शंकर के अद्वैतवाद, सूफियों के प्रेमतत्व एवं सिद्धों नाथों का प्रभाव है। कबीर की भक्ति बाह्याचार मूलक न होकर आभ्यंतरिक है। उत्कट राग, अनन्यता, निष्कामता इस भक्ति के अनिवार्य अंग है। कबीर शास्त्रज्ञान की जगह स्वानुभूत ज्ञान को महत्व देते है, वह प्रेम को पोथी ज्ञान से श्रेयस्कर कहते है-पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय/ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।'

कबीर ने बाह्याचारों, कर्मकाण्डों-मंदिर, मस्जिद, व्रत-तप, रोजा-नमाज, मूर्तिपूजा, तीर्थ, यज्ञ का विरोध किया है। यही नहीं वह जातिगत भेदभाव और सांप्रदायिक वैमनस्यता का भी विरोध करते हुए मानव मात्र की एकता-समता का प्रतिपादन करते है। यही कबीर की कविता का विद्रोही और प्रगतिशील पक्ष है। वह चाहते है समाज में धर्म के नाम पर जो कुरीतियाँ, बाह्याडम्बर व्याप्त है वह समाप्त हो। सांसारिक प्रलोभनों में फंसा हुआ व्यक्ति सन्मार्ग पर अग्रसर हो, वह नैतिक व उदार बने। इसीलिए वह घर फूँकने की बात करते है। सत्य-शील-सदाचार युक्त

जीवन पर बल देते है। कबीर एक साहसी कवि है, बहुत कुछ को नकार देने का साहस है उनके पास। निर्भय होकर उन्होंने अपने समय और समाज के अन्तर्विरोधों केा सामने रखा। उनके रचनाकार व्यक्तित्व के कई आयाम है, जो उनकी रचनाओं में प्रकट होता है। डा. रामचंद्र तिवारी लिखते हैं- 'गुरु के चरणों में प्रणत कबीर, आराध्य के प्रति दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की व्यंजना करने वाले भक्त और रहस्यसाधक कबीर, सारे भेद-प्रभेदों से ऊपर उठकर समरस भाव में लीन सिद्ध कबीर, अखण्ड आत्म-विश्वास के साथ पंडित और 'शेख' पर चोट करने वाले व्यंग्यकार कबीर, अवधूत योगी की शक्ति और दुर्बलता दोनों से परिचित उसके समर्थ और सर्तक आलोचक कबीर, साधारण हिन्दू गृहस्थ के अंधविश्वासों पर निर्मम प्रहार करने वाले मस्त मौला कबीर और कथनी-करनी की एकता, निर्वैरता, निष्कामता, अनासक्तता, संतोष, निग्रह, दया, प्रेम, अहिंसा का उपदेश देने वाले सुधारक कबीर तथा अनुभव के सत्य को पाथेय बनाकर जीवन-पथ पर आगे बढ़ते हुए किसी से समझौता न करने वाले अक्खड़ कबीर के दर्शन हमें उनकी वाणियों में एक साथ होते हैं।' (कबीर-मीमांसा, पृष्ठ 151)

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है। भाषा पर उनका जबरदस्त अधिकार है, इसीलिए हजारी प्रसाद द्विवेदी उन्हें भाषा का डिक्टेटर कहते है। 'बीजक' उनकी वाणियों का संग्रह है, जिसे उनके शिष्य धर्मदास ने संग्रहीत किया है। बीजक में 'साखी', 'सबद' और रमैनी है। कबीर मूलतः कवि नहीं है, 'मसि कागद छुयो नहीं, कलम गहयों नहीं हाथ' कहने वाले कबीर कहते हैं, 'तुम जिनि जानो गीत है, वे निज ब्रह्म-विचार' अपनी इस स्वीकारोक्ति के बावजूद कबीर हमारे सामने एक समर्थ कवि के रूप में आते हैं। उनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिए जा रहे है-

1. स तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव
लोही सींचौ तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं, पीव।।

2. बिरह भुवंगम तव बसै, मंत्र न लागै को ।
नाम वियोगी ना जिवै, जिवै न बौरा हो ।।

3. संतों भाई आई ग्यान की आंधी रे
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी माया रहै न बाँधी रे।।
दुचिते की दोई थूँनि गिरानी बलें ा टूटा।
त्रिसना छांनि परी धर ऊपरि दुरमति भाँ ा फूटा।।

4. कह हिन्दु मोहि राम पियारा, तुरुक कहैं रहिमाना।
आपस में दोउ लरि मुये, मरम न काहु जाना।।

(2) रैदास- मध्यकालीन संतों में रैदास का स्थान महत्वपूर्ण है। वह कबीर की परम्परा में आते हैं। किंतु वह कबीर की तरह विद्रोही, आक्रामक, नहीं है। वह शांत, संयत और विनम्र है, कबीर की तरह उनकी वाणियों में डाँट-फटकार, हास-उपहास, व्यंग्य-प्रहार नहीं मिलता। उनके जीवन-काल के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। संभवतः उनका समय 14वीं-15वीं सदी रहा है। उनका

जन्म काशी में माना जाता है। वह चमार जाति के थे और जूता बनाने का काम करते थे। जिसका साक्ष्य उनकी रचनाओं से मिलता है। वह रामानंद के शिष्य और मीरा के गुरु कहे जाते हैं। अनुभूति की तरलता और अभिव्यक्ति की सरलता रैदास की वाणियों की विशेषता है। सिक्खों के धर्म ग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहिब' में उनकी रचनाएँ मिलती हैं। उनकी कवताि का एक नमूना द्रष्टव्य है-

अब कैसे छूटै राम, नाम रट लागी।
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग अंग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, जैसी भक्ति करै रैदासा।

(3) नानक- नानक (1469-1538) नानक पंथ के प्रवर्तक हैं। उनका जन्म लाहौर के निकट तलवंडी नामक स्थान पर हुआ था, जो ननकाना साहब के नाम से प्रख्यात है। उनके दो पुत्र हुए- श्रीचंद ओर लक्ष्मीचंद। आगे चलकर श्रीचंद ने 'उदासी संप्रदाय' का प्रवर्तन किया। नानक घुमूंत प्रवृत्ति के थे, चारों ओर खूब भ्रमण किया। उनकी रचनाएं **गुरु ग्रंथ साहिब** में संकलित है। उनकी कविता का एक नमूना नीचे दिया जा रहा हैं-

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह अरू मय नहिं जाके, कंचन माटी जानै।।
नहिं निंदा नहिं अस्तुति जाके, लोभ, मोह अभिमाना।
हरष सोक ते रहै नियारो, नाहि मान अपमाना।।
आसा मनसा सकल त्यागि कै जग तें रहै निरासा।
काम, क्रोध जेहि परसे नाहि न तेहिं घट ब्रह्म निवासा।।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्हीं, तिम्ह यह जुगुति पिछानी।
नानक लीन भयो गोविंद सों, ज्यों पानी संग पानी।।'

(4) दादू दयाल- दादू पर कबीर का गहरा प्रभाव है, उन्होंने 'दादू पंथ' नाम से अपना एक अलग पंथ चलाया। उनके जन्म और जाति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। उनका जन्म गुजरात के अहमदाबाद में हुआ, कुछ लोग उन्हें धुनिया जाति का मानते हैं, तो कुछ लोग ब्राह्मण। उनका समय 16वीं सदी है। उनके अनुयायियों में रज्जब, सुंदरदास, प्रागदास, जनगोपाल, जगजीवन जैसे प्रसिद्ध संत हैं। 'हरडे वाणी' नाम से उनकी रचनाओं का संकलन संतदास एवं जगन्नाथदास ने किया। 'अंगवधू' भी उनकी रचना है। वह प्रतिभाशाली कवि थे, निर्गुण उपासक होते हुए भी उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप को भी स्वीकारा है। उनकी भाषा ब्रज हैं जिसमें राजस्थानी एवं खड़ी बोली का मिश्रण है। शैली सरल एवं सरस है। उनकी कविता का एक नमूना द्रष्टव्य हैं-

भाई रे! ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक आधारा।
बाद विवाद काहु सो नाहीं मैं हूँ जग थें न्यारा।
समदृष्टि सूँ भाई सहज में आपहिं आप विचारा।
मैं, तै, मेरी यह मति नाहीं निरबैरी निरबिकारा।।
काम कल्पना कदे न कीजै पूरन ब्रह्म पियारा।
एहि पथि पहुँचि पार गहि दादू सो तब सहज संभारा।।

(5) मलूकदास- मलूकदास (1574-1682) का जन्म इलाहाबाद (उ0प्र0) में हुआ था। रतन खान और ज्ञानबोध इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आत्मबोध, निर्गुण ब्रह्म की भक्ति, वैराग्य आदि इनकी रचनाओं के मूल विषय है। इनकी भाषा अवधी एवं ब्रज है, जिसमें अन्य बोलियों-भाषाओं का भी मिश्रण है।

(6) सुंदरदास- सुंदरदास (1596-1689) दादू के शिष्य थे, इनका जन्म जयपुर में धौंसा में हुआ। संत कवियों में सुंदरदास सर्वाधिक शिक्षित थे। इसी कारण उनकी रचनाओं में एक कलात्मक परिपक्वता दिखलाई पड़ती है। ज्ञान समुद्र और सुंदरविलास उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। तत्वज्ञान, निगुर्णोपासना, विरक्ति आदि इनकी रचनाओं के प्रधान विषय हैं।

(7) रज्जब- संत रज्जब (1567-1689) दादू के शिष्य हैं, इनका पूरा नाम रज्जब अली खाँ था। 'अंगवधू' नाम से उन्होंने दादू की रचनाओं को संकलित किया।

1.3.3 उपलब्धियाँ -

संत कवियों का सबसे बड़ा महत्व भक्ति को सरज-सरल बनाने में है। वे निचली जातियों से आए थें, उनकी जाति-पांति विरोधी और मानवतावादी विचारों से सदियों से अस्पृश्य, उपेक्षित वर्ग में एक स्फूर्ति और आत्मविश्वास का संचार हुआ। जातिभेद का विरोध करने वाले, राम-रहीम की एकता की बात करने वाले संतों की वाणियों सं समाज में मानववाद का प्रसार हुआ। संत कवियों ने सत्य-शील-सदाचार से युक्त, सांसांरिक प्रपंचों से उदासीन एंव कर्मण्य जीवन का संदेश दिया, इससे समाज को एक नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा मिली। यही नहीं उन्होंने साहित्य को लोक से जोड़ा, उनके साहित्य से जहाँ लोक को एक प्रेरणा व शक्ति मिली, वहीं लोक से जुड़कर साहित्य भी समृद्ध हुआ। संत काव्य की एक बहुत की क्रांतिकारी और प्रगतिशील भूमिका रही है।

3.4 प्रेममार्गी सूफी काव्य

निर्गुण भक्ति काव्य की दूसरी धारा जिसे प्रेमाश्रयी शाखा कहा जाता है: मुस्लिम सूफी कवियों द्वारा निर्मित है। इसमें प्रेम मुख्य तत्व है। इसमें लौकिक प्रेम कथाओं को आधार बनाकर

अलौकिक प्रेम की व्यंजना की गयी है। संत काव्य जहाँ-मुक्तक के रूप में है, वहीं प्रेममार्गी सूफी काव्य प्रबंधात्मक है। आइए इस काव्य की प्रवृत्तियों की चर्चा करें।

1.4.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(क) कथा वस्तु- इन काव्यों में प्रेमकथा का चित्रण मिलता है। इन प्रेम कथाओं का आधार, पौराणिक, कथा, लोक कथा या ऐतिहासिक कुछ भी हो सकता है। प्रायः कवियों ने लोक-प्रचलित कथाओं को लिया है। लोकप्रचलित कथानक रूढ़ियों द्वारा कथा को बुना गया है जैसे- नायिका का 'वती' नाम का होना जैसे- पद्मावती, नायिका का सम्बन्ध किसी द्वीप जैसे मलयद्वीप, सिंहलद्वीप का होना, चित्रदर्शन, गुणश्रवण, स्वप्नदर्शन द्वारा नायक के हृदय में प्रेमोत्पत्ति, नायिका की खोज में नायक का साधु-संयासी के रूप में घर से निकलना एवं विभिन्न विघ्न बाधाओं का सामना करना, किसी मंदिर या फुलवारी में नायक-नायिका का मिलन, नायिका के पिता, भाई या प्रेमी से नायक का द्वन्द, देवताओं या किसी सिद्ध की सहायता से नायक को सफलता मिलना इत्यादि। इन काव्यों में इतिहास और कल्पना का मेल दिखलाई पड़ता है। रहस्य, रोमांच, संघर्ष, घटना बहुलता आदि इन कथाओं की विशेषता है।

(ख) भाव व्यंजना- इन कथाओं का आधार प्रेम होने के कारण श्रृंगार रस की प्रधानता है। संयोग, वियोग दोनों पक्ष यहाँ देखे जा सकते हैं। वियोग वर्णन अधिक है। बारहमासा में हम वियोग की अत्यंत मार्मिक व्यंजना पाते हैं। नायक को कई तरह के कष्टों-चुनौतियों से जूझना पड़ता है, जहाँ उसके शौर्य-साहस का पता चलता है।

(ग) चरित्र प्रधानता- प्रेमाख्यानक काव्य चरित्र प्रधान हैं। नायक और नायिका दोनों प्रायः उच्चकुल के और विशेष गुणों से युक्त होते है। नायक-नायिका के मार्ग में विघ्न-बाधा उत्पन्न करने वाले चरित्र भी हैं। इसके अतिरिक्त कई मानवेतर चरित्र भी यहाँ दिखलाई पड़ते हैं, जिनकी पूरी कथा में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं, जैसे-पक्षी, अप्सरा, राक्षस, देवता इत्यादि।

(घ) अलौकिक प्रेम का संकेत- इन कथाओं का आधार लौकिक है, नायक-नायिका का प्रेम लौकिक धरातल पर विकसित होता हैं, किन्तु इन कथाओं में जब-तब ईश्वरीय सत्ता की ओर संकेत, अलौकिक प्रेम की व्यंजना भी दिखलाई पड़ती है। नायक आत्मा का और नायिका परमात्मा का प्रतीक रहती है। इसी कारण इन कथाओं में प्रतीकात्मक आ गई है और भावात्मक रहस्यवाद की सृष्टि हुई है।

(ङ) वस्तु वर्णन शैली- इन काव्यों में नायिका के सौन्दर्य, बारह मासा, प्रकृति के विभिन्न दृश्यों, सरोवर, पनघट, युद्ध, बारात, ज्योनार इत्यादि का ब्यौरेवार वर्णन मिलता है। वर्णन प्रायः अतिश्योक्ति पूर्ण रहता है, इन वर्णनों में कवि की कल्पनाशीलता भी प्रकट हुई है।

(च) अभिव्यंजना पक्ष- इन प्रबंध काव्यों पर फारसी की मसनवी शैली का प्रभाव है। प्रायः दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया गया है। रचनाकारों ने प्रायः अवधी भाषा को अपनाया है,

किंतु कुछ प्रेमाख्यानक ब्रज-राजस्थानी भाषा में भी रचे गए है। समासोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक इत्यादि इस काव्य में बहुप्रयुक्त अलंकार है।

1.4.2 प्रमुख कवि -

(1) मुल्ला दाऊद- मुल्ला दाऊद ने 'चंदायन' नानम प्रेमाख्यानक काव्य की रचना की है इसमें लोरिक तथा चंदा की प्रेमकथा है। चंदायन से एक दोहा उद्धृत है-

पियर पात जस बन जर, रहेउँ काँप कुंभलाई।
विरह पवन जो ोलेउ, टूट परेउँ घहराई।।'

(2) कुतुबन- कुतुबन ने 'मृगावती' की रचना की है, जिसमें चंद्रनगर के राजा गणपति देव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारि की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है। ग्रंथ का समापन मृगावती और रूक्मिनी के सती होने से होता है-

रुकमिनि पुनि वैसहि मरि गई। कुलवंती सत सों सति भई।।
बाहर वह भीतर वह होई। घर बाहर की रहै न जोई।।
विधि कर चरित न जानै आनू। जो सिरजा सो जाहि निआनू।।

(3) मंझन- मंझन कृत प्रेमाख्यानक है 'मधुमालती'। इसमें कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुलालती के प्रेम का वर्णन है। कल्पना का सुंदर प्रयोग, विस्तृत एवं हृदयग्राही वर्णन, अलौकिक प्रेम की व्यंजना इस कृति की विशेषता है। पद्मावत के पहले मधुलालती की बहुत अधिक प्रसिद्धि थी। जैन कवि बनारसीदास ने अपनी आत्मकथा में इसका उल्लेख किया है।

(4) मलिक मुहम्मद जायसी- जायसी सूफी कवियें में सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। वह शेरशाह सूरी के समकालीन थे। उनकी तीन पुस्तकें हैं-पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर तत्वज्ञान सम्बन्धी चौपाईयां हैं। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। 'पद्मावत' जायसी की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। शुक्लजी के शब्दों में- 'जायसी की अक्षय कीर्ति का आधार है 'पद्मावत', जिसके पढ़ने से यह प्रकट हो जाता है कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में, क्या अध्यात्म पक्ष में, दोनों ओर उसकी गूढ़ता, गंभीरता और सरसता विलक्षण दिखाई देती है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 65)। पद्मावत में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहल द्वीप के राजा गंधर्व सेन की कन्या पद्मावती के प्रेम का निरूपण है। कथा के उत्तरार्द्ध का एक ऐतिहासिक आधार भी है। पद्मावत की कथा प्रतीकात्मक है एक साथ यह लौकिक एवं अलौकिक दोनों धरातलों पर चलती है। पात्रों की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करते हुए जायसी लिखते हैं-

तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा।।

गुरु सुआ जे पंथ देखावा। बिनु गुर जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सो न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।

कथा का अंत दुखांत है। रत्नसेन के शव के साथ उसकी दोनों रानियां नागमती और पद्मावती सती हो जाती है। पद्मावती के सौन्दर्य, नागमती के विरह, रत्नसेन के साहस, शौर्य और अवध की लोक संस्कृति की सर्जनात्मक प्रस्तुति में जायसी को अद्भुत सफलता मिली है। उत्कृष्ट कवितत्व एवं भावव्यंजना के कारण ही जायसी हिंदी के श्रेष्ठ महाकाव्यकार माने जाते हैं।

(5) उसमान- उसमान ने 'चित्रावली' की रचना की है। वह जहाँगीर के समकालीन और गाजीपुर (उ0प्र0) के रहने वाले थे। 'चित्रावली' में नेपाल के राजकुमार सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली के प्रेम का वर्णन है। चित्रावली के रचनाविधान पर जायसी का गहरा असर है।

1.4.3 उपलब्धियाँ-

सूफी कवियों ने हिंदू घरों में प्रचलित लोक कथाओं को आधार बनाकर काव्य प्रणयन किया जिसमें हिंदू-देवी-देवताओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों का भी उदारतापूर्वक निरूपण हैं। इससे हिंदू-मुस्लिम के बीच सांस्कृतिक सामंजस्य को बल मिला। इन कवियों की दृष्टि सेक्युलर रही है। त्याग, साहस-शौर्य, संघर्ष से भरे जिस प्रेम को इन कवियों ने सिरजा है उससे आम जनता का सिर्फ मनोरंजन ही नहीं होता, अलौकिक आशयों से युक्त होने के कारण उसे रुहानी सुकून भी मिलता है। ये कवि ईश्वर प्रेम के साथ मानववाद का भी प्रचार करते है। लोकतत्त्व की दृष्टि से यह काव्य महत्वपूर्ण है, तत्कालीन परिवेश के सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से ये रचनाएँ उपादेय हैं। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के निरंतर विकास में इन कवियों का योगदान अविस्मरणीय है। साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी का जो चरमोत्कर्ष तुलसीदास के यहाँ दिखलाई पड़ता है उसकी भूमिका इन्हीं सूफी कवियों ने निर्मित की थी।

3.5 रामभक्ति काव्य

राम कथा आदिकाल से ही रचनाकारों को आकर्षित करती रही है। हिंदी में राम भक्ति काव्य की शुरुआत रामानंद से होती है, जिसे आगे चलकर तुलसीदास अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाते हैं।

1.5.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(1) भक्ति का स्वरूप- राम भक्त कवियों ने विष्णु के अवतार दशरथनंदन राम को अपना उपास्य माना है। उनके अनुसार दुष्टों के दलन और साधुओं की रक्षा के लिए ही प्रभु का अवतार होता है। लोमंगल ही अवतार का कारण है। रामभक्तों की भक्ति दास्य भाव की है। प्रभु के चरणों में भक्त अपना सर्वस्व अर्पित कर भक्ति करता है। कालांतर में रामभक्ति में रसिक भावना का

समावेश होता है। रामभक्ति में वैधी भक्ति अर्थात् शास्त्र सम्मत विधि निषेधके पालन को भी स्वीकार किया गया है। भक्ति के क्षेत्र में उदार होते हुए भी तुलसी के यहाँ शास्त्र और वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति एक आदर का भाव है।

(2) समन्वय भावना- रामभक्ति काव्य में समन्वय की चेष्टा निहित है। सगुण-निर्गुण, शैव-शाक्त, वैष्णव, लोक-परलोक, शास्त्र-लोक, गार्हस्थ्य और वैराग्य इत्यादि का तुलसी समन्वय करते हैं। यह समन्वय लोक मंगल के निमित्त है।

(3) लोकपक्ष- रामभक्ति काव्य में लोकमंगल, लोक धर्म, लोकरक्षा, लोकचिंता, लोक मानस की प्रधानता है। नारायण को यहाँ एक ऐसे नर के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो शक्ति-शील-सौन्दर्य का प्रतिमान है, जो कालिकाल के दुखों को हरने वाला है। राम कथा के माध्यम से तुलसी राजा, पति, पत्नी, भाई, सेवक, शिष्य का आदर्श प्रस्तुत करते है, जनता के अंदर दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से मुक्त, सर्वसुखद रामराज्य का स्वप्न पैदा करते हैं। यही नहीं तुलसी ने अपने समय के दुख-दारिद्रय और अकाल का भी मार्मिक अंकन किया है। **'कलि बारहि बार अकाल परै', 'खेती न किसान को भिखारी को भीख बलि', 'नहिं दारिद्रय सम दुख जग माहीं'** जैसी पंक्तियाँ इसकी प्रमाण हैं। दुख-दारिद्रय का जितना वर्णन अकेले तुलसी ने किया है, उतनी अन्य किसी मध्यकालीन कवि ने नहीं किया है।

(4) नारी एवं शूद्र के प्रति दृष्टिकोण- रामभक्ति काव्य में शूद्र एवं नारी विषय दृष्टि अन्तर्विरोध युक्त है। एक तरफ तुलसी राम का निषाद राज और शवरी के प्रति प्रेम दिखलाते है, रामचरित मानस में शम्बूक-प्रसंग को स्थान नहीं देते हैं तो दूसरी तरफ उनके यहाँ **'पूजहिं विप्र सकल गुण हीना', ' ोल गंवार शूद्र पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी'** जैसी उक्तियाँ भी हैं। तुलसी राम के समकक्ष सीता को स्थान देते है- **'सिया राम भय सब जग जानी',** वही दुसरी ओर गुलामी को नारी की दुर्दशा का कारण मानते है, इतना ही नहीं तुलसी नारी को सकल अवगुणों की खान कहते है, स्वतंत्रता से भ्रष्ट हो जाने के कारण उसकी स्वतंत्रता का निषेध भी करते हैं।

(5) अभिव्यंजना पक्ष- राम भक्ति काव्य प्रबंध और मुक्तक दोनों रूपों में मिलता है। प्रायः अवधी और ब्रज दोनों में रामकथा का प्रणयन किया गया। अवधी में 'रामचरित मानस' और ब्रज में 'रामचंद्रिका' प्रसिद्ध है। काव्यत्व की दृष्टि से रामभक्ति काव्य समृद्ध है। गेय शैली में भी रामकाव्य को रचा गया। दोहा, चौपाई, छप्पय, कुण्डलियाँ, सोरठा-सवैया, घनाक्षरी, तोमर आदि रामभक्ति काव्य में बहु प्रयुक्त छंद हैं।

1.5.2 प्रमुख कवि-

(1) स्वामी रामानंद- रामानंद का जन्म काशी में हुआ था। इनका समय 15वीं सदी है। रामानंद के शिष्यों में सगुण मार्गी एवं निर्गुणमार्गी दोनों शामिल है। उन्होंने राम की उपासना को सर्वाधिक

महत्व दिया। **'आरती कीजै हनुमान लला की, दुष्ट दलन रघुनाथ कला की'** प्रसिद्ध प्रार्थना उन्हीं की रचना है। गोस्वामी तुलसीदास रामानंद की ही शिष्य परम्परा में आते हैं।

(2) अग्रदास- अग्रदास कृष्णदास पयहारी के शिष्य हैं। इन्होंने सखी भावना से राम की भक्ति की है। रामभक्ति परम्परा में रसिक-भावना का समावेश इन्हीं की देन है। ध्यानमंजरी, अष्टयाम, रामभजन मंजरी, इत्यादि इनकी रचनाएं हैं।

(3) नाभादास- नाभादास अग्रदास के शिष्य हैं। 'भक्तिमाल' और अष्टयाम इनकी रचनाएं है। इनकी भी भाषा अग्रदास की तरह ब्रज है।

(4) ईश्वरदास- रामकथा विषयक ईश्वरदास की दो रचनाएँ हैं- 'भरतमिलाप' और 'अंगद पैज'

(5) गोस्वामी तुलसीदास- गोस्वामी तुलसीदास राम भक्ति धारा के सबसे लोकप्रिय रचनाकार हैं। इनके जन्म और जीवन के सम्बन्ध में कई जनश्रुतियाँ है। आचार्य शुक्ल ने तुलसी विरचित बारह ग्रंथों का उल्लेख किया है-दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, रामचरित मानस, रामाज्ञा प्रश्नावली, विनय पत्रिका, रामललानहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण गीतावली। रामचरित मानस उनकी कीर्ति का आधार है। 'लोकमंगल' तुलसी के काव्य का केन्द्र बिंदु है। उनकी रचनाओं से भक्त हृदयों की तृप्ति ही नहीं मिलती, समाज को अपना आदर्श भी मिलता है। तुलसी के राम चरित मानस के महत्व का उद्घाटन करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- 'भारत वर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य ले कर आया हो। भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियां, साधनाएँ, जातियाँ, आचार, विचार और पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुसलीदास स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है अपितु गार्हस्थ्य और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंता का समन्वय हुआ है। 'रामचरित मानस' के आदि से अंत तक दो छोरों पर जाने वाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयत्न है। तुलसी ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं में साधिकार लिखा है। प्रबंध कला, चरित्र-चित्रण, अलंकार विधान, समर्थ भाषा, लोक की गहरी समझ, भक्ति की तन्मयता, उच्च मूल्यों की प्रतिष्ठा, शैलीगत वैविध्य, सभी दृष्टियों तुलसी में अद्वितीय हैं। शुक्ल जी कवि तुलसी का महत्व बतलाते हुए कहते है कि "हम निःसंकोच कह सकते हैं कि यह एक कवि ही हिंदी को प्रौढ़ साहित्यिक भाषा सिद्ध करने के लिए काफी है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 95)

(6) केशवदास- केशवदास (1555-1617) की रामभक्ति विषयक रचना 'रामचंद्रिका' है। 39 प्रकाशों में विभक्त इस महाकाव्य पर प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, अनर्घराघव, कादंबरी और नैषध का प्रभाव है। कहा जाता है कि उन्होंने रामचंद्रिका की रचना तुलसी की प्रतिस्पर्धा में की। केशव दरबारी कवि हैं, चमत्कारप्रियता, पांडित्य प्रदर्शन उनकी विशेषता है। रामचंद्रिका में वह छंदों, अलंकारों के नियोजन में ही उलझकर रह जाते हैं, रामकथा के मर्म का उद्घाटन नहीं कर पाते हैं।

1.5.3 उपलब्धियाँ -

राम भक्ति काव्य ने निराशा, अवसाद, कुंठा से भरी जनता के सामने राम जैसे सर्वसमर्थ, त्राणकर्त्ता को प्रस्तुत कर उसे शक्ति और सांत्वना प्रदान किया। जीवन को धर्म भाव से जीने की प्रेरणा प्रदान की। तुलसी ने रामचरित मानस द्वारा जो आदर्श प्रस्तुत किया, उसी के आधार पर उत्तर भारत की रीति-नीति निर्मित होती है। उनके द्वारा समन्वय के प्रयत्न से बिखराव एवं वैमनस्य की क्षीण स्थितियों को एक संतुलित मार्ग का पथ प्रशस्त हुआ। साहित्य की दृष्टि से राम भक्ति काव्य ने भाव और भाषा का मानक प्रस्तुत किया, साहित्य को लोकमंगल से जोड़ा। अवधी और ब्रज दोनों को साहित्यिक परिपूर्णता प्रदान करने में रामभक्त कवियों ने अविस्मरणीय योगदान दिया।

3.6 कृष्ण भक्ति काव्य

विष्णु के अवतारी रूप कृष्ण को लेकर पूर्वमध्यकाल में प्रचुर मात्रा में काव्य रचा गया। कृष्ण के ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा भागवत में होती है। जिसका रचनाकाल 6वीं और 9वीं सदी के बीच माना जाता है। दक्षिण के आलवार भक्तों के यहाँ भी कृष्णभक्ति प्रचलित थी। वल्लभाचार्य और मध्वाचार्य ने कृष्ण भक्ति को शास्त्रीय आधार दिया और उसे जनता में प्रचारित किया। कृष्ण भक्ति काव्य का आधार भागवत पुराण है। भागवत में वर्णित कृष्ण की लीलाओं की अत्यंत सरस प्रस्तुति कृष्ण भक्ति काव्य में की गई है। आइए कृष्ण भक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का हम अध्ययन करें।

3.6.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ-

(क) लीला गायन- कृष्णभक्तिकाव्य में अवतारी कृष्ण की विविध लीलाओं का गान किया गया है। ये लीलाएं मुख्यतः कृष्ण के शिशु रूप एवं किशोर वय की है। जैसे-बालकृष्ण की विविध चेष्टाएँ, माखनचोरी, गोदोहन, गोचारण, पूतना वध, कालिया दमन, दान लीला, मान लीला, चीरहरण, लीला, रास लीला, मथुरा गमन, कंस वध, कुब्जा प्रसंग, उद्धव संदेश इत्यादि। लीलागान के क्रम में वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति प्रकट हुई है। वस्तुतः लीलागान ही कृष्ण भक्त कवियों का उद्देश्य है। कृष्ण की लीलाओं के चित्रण में इन कवियों की कल्पनाशीलता और सहृदयता अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रकट हुई है। इस मामले में कृष्ण भक्त कवियों में सूर अद्वितीय है। वात्सल्य और श्रृंगार की विविध मनोदशाओं, सूक्ष्म स्थितियों का उन्होंने बहुत बारीक और विशद् अंकन किया है, कोई भी पक्ष उनसे छूटा नहीं है। ईश्वर रूप श्रीकृष्ण की लीलाओं को उन्होंने लौकिक धरातल पर चित्रित किया है, जो बहुत ही आत्मीय लगता है। समूचे कृष्ण भक्ति काव्य में राग और रस की अजस्र धारा प्रवाहित होती है।

(ख) लोकरंजन- कृष्ण की लीलाओं का उद्देश्य लोकरंजन है। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के लोकरंजनकारी, लीला पुरुषोत्तम रूप को ही सर्वाधिक महत्व दिया है। उनके योगी और योद्धा

रूप के चित्रण में उनका मन कम रमता है। इसी कारण कृष्ण भक्ति काव्य में वात्सल्य एवं श्रृंगार का चित्रण अधिक है।

(ग) शास्त्रज्ञान की अनावश्यकता- कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति के लिए शास्त्रज्ञान को अनावश्यक माना है। उनकी भक्ति रागानुगा भक्ति है। इस भक्ति के लिए हरि के प्रति उत्कट राग, सच्ची समर्पणशीलता अपेक्षित है न कि ज्ञान। भ्रमरगीत प्रसंग में तो गोपियों द्वारा ज्ञान का खण्डन, शास्त्र की उपेक्षा की गई, और प्रेम को वरेण्य, सर्वथा मंगलकारी माना गया है।

(घ) निर्गुण-सगुण दोनों की स्वीकृति- कृष्ण भक्ति काव्य में ब्रह्म के निर्गुण रूप को स्वीकार करते हुए अवतारी कृष्ण को परमब्रह्म परमेश्वर के रूप में देखा गया है। निर्गुण ब्रह्म की साधना दुस्साध्य है, निर्गुण ब्रह्म अनुभवातीत है, 'गूंगे के गुड़' के समान है, इसीलिए इन भक्तों ने ब्रह्म के सगुण रूप को स्वीकार कर लीला गान किया है। ब्रह्म लीला के लिए ही धरती पर अवतरित होता है।

(ङ) अभिव्यंजना पक्ष- कृष्ण भक्ति का मुख्य केन्द्र ब्रज क्षेत्र रहा है, इसीलिए अधिकांशतः कृष्ण भक्ति परक काव्य ब्रजभाषा में रचा गया। कृष्ण के समग्र जीवन की अपेक्षा उनके जीवन के कुछ पक्षों पर केन्द्रित होने के कारण मुक्तक काव्य की रचना ज्यादा हुई। कृष्ण भक्ति काव्य गीति शैली में रचा गया। इसमें गीतिकाव्य की सभी प्रवृत्तियों भावात्मकता, संक्षिप्तता, संगीतात्मकता, सुकोमल पदावली इत्यादि विद्यमान है। छंद की दृष्टि से यहाँ कवित्त, सवैया, छप्पय, कुण्डलिया, गीतिका, हरिगीतिका का प्रयोग अधिक हुआ है।

3.6.2 प्रमुख कवि-

(1) सूरदास - कृष्ण भक्त कवियों में सर्वाधिक ऊँचा स्थान सूरदास का है। उनका जन्म 1478 में 'सीही' नामक गाँव में हुआ और देहावसान 1583 ई. में हुआ। उनके अंधत्व को लेकर अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित है। उन्होंने बल्लभाचार्य से दीक्षा ली। बल्लभाचार्य से दीक्षित होने के पूर्व उनकी भक्ति दास्य भाव की थी। बल्लभ ने उनसे लीलागान करने कहा। उन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है। उनकी मृत्यु पर दुखी होकर विट्ठलनाथ ने कहा था- **'पुष्टिमारग को जहाज जात है सो जोको कछु लेना होय सो लेउ।'** सूरदास की तीन रचनाएं हैं-सूरसागर, साहित्यलहरी और सूरसारावली। सूरसागर की रचना भागवत की तरह द्वाद्वश स्कंधों में हुई है। 'साहित्य लहरी' में उनके दृष्टिकूट पदों का संग्रह है जिसमें प्रतीकात्मक शैली में राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। 'सूरसारावली' की प्रामाणिकता संदिग्ध है। सूरसागर ही सूर की सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है। कृष्ण भक्ति ही इसका मुख्य विषय है। सूर का ध्यान कृष्ण के लोकरंजनकारी रूप पर अधिक है। इसमें कृष्ण के बालकाल से लेकर कैशोरवय तक की विविध लीलाओं का अत्यंत हृदयहारी चित्रण हुआ है। आचार्य शुक्ल का कहना है-'इनके सूरसागर में वास्तव में भागवत के दशम स्कंध की कथा संक्षेपतः इतिवृत के रूप में थोड़े से पदों में कह दी गई हैं। सूरसागर में कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकल पदों में गायी गयी हैं। भिन्न-भिन्न

लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यंत, मधुर और मनोहर पदों की झड़ी-सी बाँध दी है। इन पदों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्य रचना होने पर भी वे इतने सुडौल और परमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी-सी जान पड़ती है। अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीतिकाव्य परंपरा का-चाहे वह मौखिक ही रही हो-पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।' (हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ0-108) नवीन प्रसंगों की उद्भवना, भावात्मकता, अन्तर्मन का उद्घाटन, विभिन्न काव्यांगों का सुंदर प्रयोग, गीतात्मकता, प्राजंल एवं प्रवाहपूर्ण भाषा, ब्रज के लोक जीवन की जीवंत प्रस्तुति, अपूर्व रसात्मकता के कारण सूरसागर हिन्दी साहित्य की एक श्रेष्ठकृति है जो सूरदास को महाकवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है। सूरसागर 'जीवनोत्सव' का काव्य है और सूरदास भावाधिपति हैं। बालकृष्ण की विविध लीलाएँ नंद-यशोदा का वात्सल्य, गोपियों का निर्मल और उमंग से भरा प्रेम, भ्रमरगीत-सूरसागर के उत्कृष्ट प्रसंग हैं। सूरसागर में शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की भक्ति देखी जा सकता है वैसे प्रमुखता वात्सल्य और माधुर्य भक्ति की है।

(2) नंददास- साहित्यिकता की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद नंददास का स्थान आता है। उनकी रचनाएं है-अनेकार्थ मंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरह मंजरी, प्रेम बारह खड़ी, श्याम सगाई, सुदामाचरित, रूक्मिणी मंगल, भंवर गीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, दशमस्कंधभाषा, गोवर्धनलीला, नंददासपदावली। 'भंवरगीत' और 'रासमपंचाध्यायी' उनकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। उनकी भाषा अत्यंत परमार्जित है। प्रसंगानुकूल सटीक शब्दों के चयन के कारण नंददास को 'जड़िया' कहा जाता है।

(3) हितहरिवंश- हितहरिवंश (1505-1552) का जन्म उ0प्र0 के सहारनपुर जिले के देवबंद में हुआ। 'हितचौरासी' उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है। उनकी भक्ति माधुर्य भाव की है। उन्होंने राधावल्लभ संप्रदाय का प्रवर्तन किया। सरसता और भाषा का प्रांजल रूप उनकी रचनाओं की विशेषता है।

(4) स्वामी हरिदास- स्वामी हरिदास (1535-1578) ने सखी सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया, जिसे टट्टी संप्रदाय भी कहा जाता है। हरिदास एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। अकबर के दरबारी तानसेन को इन्हीं का शिष्य बतलाया जाता है। 'सिद्धांत के पद' और 'केलिमाल' उनकी रचनाएं है।

(5) मीराबाई- मीराबाई (1504-1558) चित्तौड़ के राजघराने की थी। उनका विवाह चित्तौड़ के राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ, था किंतु कुछ ही वर्षों बाद वह विधवा हो गयी। मीरा रचित ग्यारह ग्रंथ बतलाये जाते है, जिनमें केवल 'स्फुट पद' ही प्रामाणिक है। गिरधर गोपाल के प्रति अगाध प्रेम ही मीरा की रचनाओं का मुख्य विषय है। उनकी रचनायें मध्यकालीन सामंती परिवेश में नारी की पीड़ा और उसकी मुक्ति की आकांक्षा को भी प्रकट करती हैं। उनकी भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रज है।

(6) रसखान- रसखान (1533-1618) ने अत्यंत सरस और मार्मिक रचनाएँ की हैं। उन्हें वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित बतलाया जाता है। सुजान रसखान, प्रेम वाटिका, दान लीला, अष्टयाम-उनकी रचनाएं है। मुस्लिम होकर भी उन्होंने कृष्ण भक्तिपरक रचनाएं लिखी, यह उनकी उदारता का प्रमाण है।

3.6.3 उपलब्धियाँ-

कृष्ण भक्ति कवियों ने अपनी रचनाओं में कृष्ण की लीलाओं का गान किया है, उससे समाज में रागात्मकता का संचार होता है, उससे जीवन के प्रति चाह बढ़ती है। विविध संप्रदायों द्वारा कृष्ण भक्ति का विभिन्न रूपों में पल्लवन होता है जिससे साहित्य समृद्ध होता है। साहित्य और संगीत को जोड़ने में इन कवियों का योगदान महत्वपूर्ण है। विभिन्न राग-रागनियों में रचित कृष्ण काव्य में संगीत का विकास होता है। कृष्ण भक्ति काव्य की भाव सम्पदा और परमार्जित अभिव्यक्त से साहित्यिक दृष्टि से ब्रज भाषा समृद्ध होती है और वह मध्यकाल की सर्वप्रधान काव्य भाषा बन जाती है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'जड़िया' नाम से विख्यात कृष्ण भक्त कवि हैं?
2. पुष्टिमार्ग के जहाज कहे जाते हैं?
3. जायसी के किस ग्रंथ में कयामत का वर्णन है?
4. 'आरती कीजै हनुमान लला की' के रचनाकार हैं?
5. 'अष्टयाम' के रचयिता हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. रामभक्ति काव्य की प्रवृत्तियों का परिचय दीजिये?
2. संतकाव्य के प्रगतिशील आयाम को स्पष्ट कीजिए।
3. प्रेममार्गी सूफी काव्य के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3.7 सारांश

भक्ति काव्य की चार धाराएँ है- संत काव्य, प्रेममार्गी सूफी काव्य, रामभक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य। निर्गुण ब्रह्म की उपासना, अवतारवाद-बहुदेववाद का खंडन, नाम-महिमा, गुरु-महिमा, बाह्याडम्बरों एवं जाति-पांति का विरोध, सत्य-शील-सदाचार पर बल, लोकभाषा का प्रयोग इत्यादि संतकाव्य की प्रवृत्तियाँ है। कबीर, रैदास, दादू, रज्जब, नानक इत्यादि प्रमुख संत कवि है। प्रेममार्गी सूफी काव्य की प्रवृत्तियाँ हैं-लौकिक प्रेम कथाओं का आश्रय, लोकप्रचलित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग, मसनवी शैली, प्रेम को सर्वोपरि महत्ता, लौकिक प्रेम में ईश्वरीय प्रेम की झलक, प्रबंधात्मकता, दोहा-चौपाई शैली, अवधी भाषा का प्रयोग। जायसी,

मंझन, कुतुबन, उसमान प्रमुख सूफी कवि हैं। विष्णु के अवतार राम की उपासना, ब्रह्म के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की स्वीकृति, दास्य भक्ति, शास्त्र एवं वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति आदर का भाव, लोकमंगल, समन्वय भावना, अवधी एवं ब्रज भाषा का प्रयोग-रामभक्ति काव्य की प्रवृत्तियाँ है। रामानंद ईश्वरदास, अग्रदास, तुलसीदास, नाभादास, केशवदास आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं। विष्णु अवतार श्रीकृष्ण की उपासना, लीलागान, लोकरंजन, ब्रह्म के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों की स्वीकृति, शास्त्रज्ञान की अनावश्यकता, रामानुगा भक्ति, गीतिशैली, मुक्तक काव्य रूप एवं ब्रज भाषा का प्रयोग-कृष्ण काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ है। सूरदास, नंददास, हितहरिवंश, स्वामी हरिदास, मीरा, रसखान इस धारा के प्रमुख कवि है।

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप भक्ति कालीन कविता की विभिन्न शाखाओं से परिचित हो गए होंगे।

3.8 शब्दावली

1. अनहदनाद- विभिन्न चक्रो का भेदन करते हुए कुण्डलिनी जब अनाहत चक्र में पहुँचती है तब साधक को अनहदनाद सुनाई पड़ता है। और ब्रह्मानंद की अनुभूति होती है। अनहद नाद 'शब्द ब्रह्म' है जो समग्र विश्व में अखण्ड रूप में व्याप्त है।

2. अजपाजाप- बिना जीभ हिलाये, बाह्य साधनों का सहारा लिए बिना मन ही मन किये जाने वाला जाप अजपाजाप है। यह नाम स्मरण की उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति है।

3. लोकमंगल एवं लोकरंजन- यह आचार्य शुक्ल की शब्दावली है, जिसका प्रयोग वह क्रमशः तुसली एवं सूर के संदर्भ में करते है। लोकमंगल का मूल भाव करुणा है, इसमें लोक रक्षा का भाव छिपा, रहता है। लोकरंजन का मूल भाव प्रेम है। कृष्ण भक्ति काव्य में लोकरंजन की प्रधानता है और रामभक्ति काव्य में लोक मंगल की।

(4) दृष्टकूट पद- सूर के 'साहित्य लहरी' में 'दृष्टिकूट पद' मिलते हैं। दृष्टकूट पद अर्थ गोपन शैली में रचे गए हैं जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया गया है।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नंददास
2. सूरदास
3. आखिरी कलाम
4. रामानंद
5. नाभादास

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ल, रामचंद, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा।
2. तिवारी, रामचंद्र, कबीर मीमांसा, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मिश्र, शिव कुमार, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य
2. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहितय का इतिहास
3. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका
4. पाण्डेय, मैनेजर, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर
7. सिंह, सं. उदयभानु, तुलसीदास
8. साही, विजयदेव नारायण, जायसी

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. निगुर्ण भक्ति काव्य के प्रगतिशील पक्षों का उदघाटन कीजिए।
2. सगुण भक्ति काव्य अपने काव्यात्मक औदात्य की दृष्टि से हिंदी की श्रेष्ठ कविता है। इसे तर्क द्वारा सिद्ध कीजिए।

इकाई 04 कबीर : जीवन एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 कबीर : जीवन एवं रचनाएँ
4.3.1 कबीर : जीवन परिचय
4.3.2 कबीर : रचनाएँ
4.4 कबीर : विचार एवं दर्शन
4.5 निर्गुण राम की परिकल्पना
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

यह स्नातकोत्तर स्तर के प्रथम वर्ष के द्वितीय प्रश्न पत्र के अन्तर्गत दूसरे खण्ड की पहली इकाई है। इससे पहले की इकाईयों में आपने भक्तिकाल और भक्ति कविता के उद्भव एवं विकास को विस्तापूर्वक समझा, साथ ही आपने यह भी जाना कि भक्तिकालनी कविता के भीतर विभिन्न काव्य-रूपों का विकास किस प्रकार हुआ।

प्रस्तुत इकाई में आप विस्तारपूर्वक हिंदी भक्तिकाल के सबसे महत्वपूर्ण हस्ताक्षर कबीर के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व से परिचित होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निर्गुण भक्तिधारा के अन्तर्गत ज्ञानमार्गीशाखा के कवि कबीर की कविता में व्याप्त साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना के विभिन्न रूपों का आलोचनात्मक परिचय करेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- आप कबीर के जीवन एवं उनकी रचनाओं के बारे में बता सकेंगे।
- आप कबीर की काव्य चेतना में व्याप्त ज्ञान एवं दर्शन को जान सकेंगे।

- कबीर के काव्य में समाहित विभिन्न महत्वपूर्ण घटकों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- कबीर की भक्ति-भावना का परिचय प्राप्त करेंगे।
- हिंदी साहित्य के अन्तर्गत कवि कबीर का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

4.3 कबीर : जीवन एवं रचनाएँ

4.3.1 कबीर : जीवन परिचय

जन्म – कबीर के जन्म को लेकर स्पष्टत: कुछ भी कहा नहीं जा सकना लगभग असंभव माना जाता है। विभिन्न विद्वानों ने कबीर के जन्म के संबंध में अलग-अलग मत प्रस्तुत किए हैं। डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल एवं आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर का जन्म लगभग 1270 ई. के आस-पास माना है। डा. परशुराम चतुर्वेदी, डा. फार्कुहर एवं डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार कबीर का जन्म 1425 ई. के पूर्व हो गया होगा। डॉ.श्यामसुन्दर दास कबीर का जन्म संवत् 1456 तथा डॉ.माताप्रसाद गुप्त के अनुसार इनका जन्म संवत् 1455 माना है। आधुनिक खोजों के बाद कबीर का जन्म काल संवत् 1518 (1398 ई.) को माना गया है।

स्थान – जन्मतिथि की ही तरह कबीर के जन्म स्थान को लेकर भी विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। प्राय: विद्वान कबीर का जन्म काशी में मानते हैं परन्तु कुछ विद्वानों ने उनका जन्म 'मगहर' में तथा कुछ विद्वान आजमगढ़ जिले के 'बेलहरा' गाँव में मानते हैं। उदाहरणत: श्यामसुंदर दास ने कबीर का जन्म काशी में माना है तथा डा. रामकुमार ने इनका जन्म मगहर माना है। 'बनारस डिस्ट्रिक्ट गजेटियर' के अनुसार कबीर का जन्म आजमगढ़ जिले के बेलहरा गॉव में हुआ था। विद्वानों द्वारा प्रतिपादित इन विभिन्न मतों का विश्लेषण करने पर विश्लेषकों ने काशी को ही कबीर का जन्म स्थान माना है।

जाति – जन्मतिथि एवं जन्म स्थान के साथ ही कवि कबीर की जाति के संबंध में भी विद्वानों में अब तक मतभेद बना हुआ है।

(क) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''कबीरदास का संबंध जुगी नामक जाति से था। यह जाति पहले न हिंदू थी और न मुसलमान। इनका संबंध अधिकतर वर्णाश्रम धर्मविहीन नाथपंथियों से था। अत: पूर्व संस्कार अभी तक बना हुआ था। आचार्य द्विवेदी के अनुसार कबीरदास ने अपने को जुलाहा तो बार-बार कहा है किन्तु मुसलमान एक बार भी नहीं कहा है।

(ख) उनकी न हिंदू न मुसलमान वाली उक्ति उन्हीं वर्णाश्रम भ्रष्ट जुगी जाति के व्यक्तियों की ओर संकेत करती है।

(ग) कबीरदास जी ने अपनी उक्ति में यह स्वीकार किया है कि हिन्दू, मुसलमान और योगी अलग-अलग होते है।

(घ) कबीर दास के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के बाद कुछ फूल बचे रहे थे जिनमें से आधे को हिन्दुओं ने जलाया और आधे को मुसलमानों ने दफनाया।

विश्लेषण के पश्चात् यह बात कही जा सकती है कि वस्तुत: कबीर जुलाहे थे जो काशी के निवासी थे। संम्भवत: उनके माता-पिता पहले हिंदू रहे हों, बाद में इस्लाम स्वीकार कर लिया होगा। कबीर के संबंध में विश्लेषण करने के पश्चात् विद्वानों ने कुछ सर्वमान्य निष्कर्ष प्रतिपादित किए जिन्हें विद्यार्थियों के ज्ञान-लाभ के लिए साभार उद्धृत किया जा रहा है।

"कबीर के संबंध में अन्त: साक्ष्य एवं बहि: साक्ष्य से उपलब्ध उपर्युक्त सामग्री के विवेचन से स्पष्ट है कि उनके विषय में इतनी पृथक्-पृथक् और परस्पर विरोधी बातें कही गयी हैं कि सर्वथा निभ्रांत एवं विवादरहित निष्कर्ष पर पहुँचना बहुत कठिन है। मोटे तौर पर उनके संबंध में यह कहा जा सकता है –

1. उनका जन्म काशी में हुआ था और जीवन का अधिकांश काशी में ही बीता था। उन्होंने अनेक स्थानों की यात्रा की थी। मगहर से भी उनका किसी न किसी प्रकार का संबंध अवश्य था।
2. उनकी जन्म तिथि तथा मृत्यु तिथि के संबंध में बहुत विवाद है। मोटे तौर पर उनका समय विक्रम की 15वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध से 16वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध प्रमाणित होता है। लगभग यही समय रामानंद (संवत् 1356-1427), नानक (सं. 1526-1515), और सिकंदर लोदी (सं. 1555-1574) का भी था। वे दीर्घजीवी थे और सौ वर्षों से अधिक जीवित रहे।
3. कबीर का जन्म चाहे जिस परिवार में हुआ हों, किन्तु वह जुलाहा-वंश में पाले गए थे। उनका पोषक-परिवार वयनजीवी था। यह परिवार ऐसा था जो मूलत: हिन्दू था, किन्तु दो पीढ़ी पूर्व मुसलमान हो गया था। कबीर यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम संकीर्णताओं से परे थे, उनके बाह्याचार के विरोधी थे तथापि उन पर हिन्दू-संस्कारों की गहरी छाप थी। उनमें अहिंसा का स्वर निश्चित रूप से हिंदू संस्कारों का प्रभाव माना जाएगा। इसी प्रकार उन्होंने हिन्दू पौराणिक कथाओं, देवी-देवताओं और सन्दर्भों का जिस प्रकार उल्लेख किया है, वह उनके हिन्दू धर्म की गहरी जानकारी का परिचायक है।
4. कबीर के गुरू के संबंध में प्राय: रामानंद और शेख तकी का उल्लेख किया गया है। अधिकांश लेखक, रामानंद को उनका गुरू मानने के पक्ष में हैं। शेख तकी कबीर के गुरू नहीं हो सकते। कबीर ने जिस ढंग से शेख तकी को सम्बोधित किया है, गुरू के प्रति ऐसा संबोधन कोई नहीं कर सकता। अधिकांश लेखकों की यह मान्यता भी है कि शेख तकी से द्वेष के कारण सिकन्दर लोदी ने कबीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी थीं। जहाँ तक रामानंद का प्रश्न है, उन्होंने कबीर को विधिवत् भले ही दीक्षित न किया हो, किन्तु उनका प्रभाव कबीर पर अवश्य था। कबीर ने गुरू का श्रद्धापूर्वक अनेक बार स्मरण किया है। उसे मार्गदर्शक सर्वश्रेष्ठ दानी और ईश्वर-तुल्य बताया है। पदों में सदगुरू की तुलना भृंग से की गई है, जो शिष्य के मनो-दोहात्मक विकारों को

दूर कर देता है। वस्तुत: साधना मार्ग में गुरू की सहायता एवं कृपा के बिना सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती। गुरू तीन प्रकार के माने गए है – मान गुरू, सिद्ध गुरू और दिव्य गुरू। ऐसा प्रतीत होता है कबीर के मानव गुरू रामानंद थे। उनसे कबीर को 'राम-नाम' का मंत्र प्राप्त हुआ था। लेकिन उनके अतिरिक्त कबीर को दिव्य गुरू का भी साक्षात्मकार हुआ था, जो स्वयं परमप्रभु ईश्वर ही थे।

मृत्यु – "अनंतदास की परचई में कबीर की आयु 120 वर्ष की बतायी गई है। सन् 1398 कबीर का जन्म-काल सिद्ध करने पर निधन-काल सन् 1518 (सं.1575) ही ठहरता है1 इसके अतिरिक्त कबीर का संकेत साखियों में जिस राणा की ओर रहा है वह भी इस समय तक अपने प्रताप की प्रखर किरणें विकीर्ण करने लगा था।" अतएव कबीर की मृत्यु तिथि सन् 1518 (सं. 1575) उचित जान पड़ता है। कबीर का यह जीवन-काल उन्हें रामानंद, सिकन्दर लोदी, पीपा, नानक तथा राणा संग्राम सिंह का समकालीन बना देता है।

4.3.2 कबीर : रचनाएँ

कबीर की रचनाओं के विषय में समय-समय पर विभिन्न अध्येताओं ने शोध किया है। इस संबंध में डा. जयदेव सिंह एवं डा.वासुदेव सिंह द्वारा किया गया विश्लेषण महत्वपूर्ण है।

''कबीर पर 18वीं शताब्दी से कार्य प्रारम्भ हो गया था, किन्तु कबीर-साहित्य की वैज्ञानिक खोज का कार्य सन् 1903 में एच.एच. विल्सन ने किया। उन्हें कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रंथ मिले। उसके बाद बिशप जी.एच. वेस्टकॉट ने कबीर लिखित 84 पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की। रामदास गौड़ लिखित 'हिन्दुत्व' नामक ग्रंथ में कबीर की 71 पुस्तकें गिनायी हैं। मिश्रबंधुओं ने 'हिंदी-नवरत्न' में 75 ग्रंथों की तालिका दी है। इसी प्रकार हरिऔध जी द्वारा संपादित 'कबीर वचनावली' में 21 ग्रंथों, युगलानंद द्वारा सम्पादित 'बोधसागर' मकें 40 ग्रंथों, डा. रामकुमार वर्मा के हिंदी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास में 61 ग्रंथों और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टो में 140 ग्रंथों की सूची मिलती है। कबीर द्वारा लिखित साहित्यिक रचनाओं को अध्येताओं ने तीन रूपों में विभाजित किया है (1) साखी (2) सबद अथवा पद और (3) रमैनी। कबीर के साहित्यिक संकलनों का विश्लेषण करते हुए विद्वानों ने लक्ष्य किया है कि इस दिशा में दो प्रकार के कार्य किए गए हैं एक, साहित्यिक विद्वानों द्वारा और दूसरे, कबीर पन्थी साधनों द्वारा साहित्यिक क्षेत्र में इस दिशा में सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य बाबू श्याम सुन्दरदास ने किया। उन्होंने संवत् 1985 में दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'कबीर ग्रंथावली' का सम्पादन करके, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित कराया। उनके अनुसार ''कबीरदास के ग्रंथों की इन दो प्रतियों में से एक तो संवत् 1561 की लिखी है और दूसरी संवत् 1881 की। पहली प्रति की अपेक्षा इसमें 131 दोहे और 5 पद अधिक है। इन दो प्रतियों के अतिरिक्त संवत् 1661 में संकलित 'गुरू-ग्रंथ साहिब' में सग्रंहीत कबीर के जो दोहे और पद उक्त प्रतियों में भी थे, उन्हें मूल अंश में सम्मिलित कर लिया गया है और शेष को परिशिष्ट में दे दिया गया है और शेष को परिशिष्ट में दे दिया गया है। इस प्रकार 'कबीर-ग्रंथावली' में कुल

809 साखियाँ, 403 पद और 7 रमैनियाँ संगृहीत है। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट में 192 साखियाँ और 222 पद और दे दिए गए हैं।''

"बाबू श्यामसुंदर दास की 'कबीर ग्रंथावली' के प्रकाशन के लगभग 15 वर्षों बाद संवत् संवत् 2000 (सन् 1933) में डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने 'संत कबीर' नाम से कबीर की रचनाओं का अन्य संस्करण निकाला। उनके मत से ''नागरी प्रचारिणी, सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रंथावली' का पाठ संन्दिग्ध और अप्रामाणिक है1 पाठ का पंजाबीपन तो 'पूरब' निवासी कबीर की वाणी का विषय शीशे में पड़ा हुआ विकृत प्रतिबिम्ब-सा है।'' डा. वर्मा की दृष्टि में 'कबीर-ग्रंथावली' की भाषा अप्रामाणिक है ही, उसके पाठ निर्धारण में भी अनेक त्रुटियाँ है।''

कबीर साहित्य के वैज्ञानिक स्वरूप-निर्धारण का दूसरा कार्य डा. पारसनाथ तिवारी के 'कबीर-ग्रंथावली' नाम से किया है। इसके पश्चात् समय-समय विभिन्न विद्वानों ने कबीर की रचनाओं का शोधपूर्ण संकलन प्रस्तुत किया। जिनमें से कुछ प्रमुख संकलन निम्नांकित हैं।

1. कबीर ग्रंथावली – डा. माताप्रसाद गुप्त
2. कबीर वचनावली – कबीर साहब की शब्दावली
3. गोविन्द राम दुर्लभराम – ग्रंथ शब्दावली
4. मुंशी शिवव्रत लाल – सन्त कबीर की शब्दावली
5. मुंशी शिवव्रत लाल - सन्त कबीर की साखी
6. विचार दास शास्त्री – कबीर की साखी
7. हुज़ुर साहब – कबीर की साखी
8. विचारदास शास्त्री – सदुरू कबीर साहब का साखी ग्रंथ
9. महाराज राघवदास – सटीक साखी ग्रंथ
10. रामचंद्र श्रीवास्तव – कबीर साखी सुधा

इन संकलनों के अलावा कबीर द्वारा लिखित एक अन्य महत्वपूर्ण पुस्तक 'बीजक' भी प्राप्त होती है कबीर साहित्य के अध्येता इस पुस्तक की महत्ता को रेखांकित करते हैं स्वयं कबीर पंथी साधु एवं संकलनकार्त्ता कबीरपंथ के भीतर भी इस पुस्तक की महत्ता एवं उपयोगिता का बखान करते रहते हैं। अनेकों विद्वानों और साधुओं ने समय-समय पर 'बीजक' का संपादन एवं प्रकाशन किया है। अनेक बीजकों के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह बात सामने आई है कि अलग-अलग समय पर संकलित-संपादित होने के पश्चात् भी बीजक का मूल रूप अधिकांशत: समान ही है।

''कबीर का प्रमुख साहित्य तीन रूपों में विभक्त है – रमनी, साखी और सबद या पद। प्राय: यह माना जाता है कि रमैनी में जगत्, साखी में जीव और सबद में ब्रह्म-सम्बंधी विचार हैं। 'रमैनी' शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है –

1. जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ है।
2. परमतत्व में रमण कराने वाली और
3. एक छन्द-विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती है।''

"साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' का तद्भव है। साक्षी का अर्थ होता है – गवाह। 'गवाह' के लिए संस्कृत में 'साक्ष्य' शब्द है। साक्षी वह है जिसने स्वयं अपनी ऑखों से तथ्य देखा हो। 'साक्ष्य' का अर्थ है – ऑख से देखे हुए तथ्य का वर्णन। हिंदी में साखी शब्द 'साक्षी' और 'साक्ष्य' अर्थात् 'गवाह' और 'गवाही' दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। कबीर ने 'सबद' का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है – एक तो परमतत्व के अर्थ में और दूसरे पद के अर्थ में। ''रमैनी, साखी और सबद के अतिरिक्त कबीर के नाम से कहरा, वसत, बेलि, बिरहुली, चॉचरि हिंडोला, चौतीसी, विप्रममीसी आदि अन्य काव्य रूपों में लिखा साहित्य भी पाया जाता है। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि स्वयं कबीर द्वारा लिपिबद्ध न किए जाने के कारण तथा कबीरपन्थी भक्तों की उदारता और कबीर के नाम से प्रचुर साहित्य एकत्र हो गया हैं। उसकी प्रमाणिकता पर विभिनन विद्वानों द्वारा अद्यावधि जो अनेक श्रमसाध्य कार्य हुए है, वे भी अंतिम सत्य तक पहुँचाने वाले नहीं है। प्राय: सभी शोधकों एवं पाठालोचकों ने स्वीकार किया है कि कबीर का साहित्य यही है अथवा इतना ही है, इसे अंतिम सत्य के रूप में नहीं कहा जा सकता। वस्तुत: कबीर जैसे रमते साधुओं के संबंध में इस प्रकार का अंतिम निर्णय लिखा भी नहीं जा सकता।"

अभ्यास प्रश्न 1 –

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार कबीर का जन्म कब हुआ।
2. कबीर की मृत्यु किस स्थान पर हुई।
3. किवंदतियों के अनुसार कबीर के गुरू कौन थे।
4. 'कबीर वचनावली' का सम्पादक कौन है।

(ख) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. कबीर का जीवन परिचय दीजिए (शब्द संख्या 200 अधिकतम)
2. कबीर साहित्य पर अपनी संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए (शब्द संख्या 200 अधिकतम)

4.4 कबीर : विचार एवं दर्शन

भारतीय धर्म साधना के इतिहास में कबीर का महत्व अन्यतम है। कबीर अपनी महान प्रतिभा को साथ लेकर अवतरित हुए थेलेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए की कि कवि कबीर की सम्पूर्ण काव्य-प्रतिभा, समाज चेतना एवं सकल संसार की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक व्याख्या के पीछे वस्तुत: उनका समाज दर्शन ही कार्य कर रहा था। जैसा कि माना जाता है कि

कबीर निर्गुण भक्ति धारा के ज्ञानमार्गी भक्त थे। जीवन मूल्यों के विकासवादी क्रम में मध्यकालीन साहित्य के अन्तर्गत जिस मूल्य को सम्पूर्ण भारतीय चेतना ने सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से आत्मसात् किया, वह भक्ति का ही मूल्य था। इसी भक्ति-मूल्य की विचार एवं कलात्मक भूमि, के आधार पर ही मध्यकालीन भारतीय एवं अन्तत: मध्यकालीन हिंदी भक्ति कविता का भी विकास हुआ।

कबीरदास कवि ही नहीं थे, वे एक दार्शनिक सन्त थे। वे उस परमतत्व को अन्यन्त अलख, निरंजन, निरभै, शून्य एवं स्थूल से भिन्न, दृश्य और अदृश्य से विलक्षण मानते है। उनका 'राम' निर्गुण ब्रह्म है, जो विश्वातीत विश्वोत्तीर्ण एवं विश्वमय है। वह तो घट-घट व्यापी, अनादि, अनन्त है। वह देश-काल से परे है और जिससे प्रेम द्वारा ही मिलन संभव है। उनका निर्गुण ब्रह्म दशरथ नन्दन 'राम' नहीं है। वह ससीम नहीं वरन् असीम है। उनके मतानुसार 'आतम राम अवर नहि दूजा' अर्थात् 'आत्मा' और 'राम' एक ही है। सृष्टि कर्त्ता में ही सृष्टि है और सृष्टि में सृष्टि कर्त्ता ओत-प्रोत है। उनका जीवन दर्शन प्रेम का दर्शन है।

4.5 निगुर्ण राम की परिकल्पना

"परमार्थ के लिए, ईश्वर के लिए, परम चैतन्य के लिए कबीर ने 'राम' शब्द का प्रयोग किया है। उनका राम निर्गुण है। कुल लोगों ने शांकर वेदांत के निर्गुण ब्रह्म को ही कबीर का निर्गुण राम समझा है, किन्तु कबीर के निर्गुण राम सर्वथा शांकर वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म के समान नहीं है। निर्गुण ब्रह्म विश्व का चैतन्य मात्र अधिष्ठान है। वह सर्वथा निष्क्रिय है। समष्टि अज्ञान अथवा माया से उपहित होकर वह सगुण ब्रह्म कहलाता है। कबीर का राम तो विश्व से अतीत है, और विश्व में व्याप्त भी है। वह विश्वोत्तीर्ण है और विश्वमय भी है। वह घट-घट में समाया हुआ है। वह अवर्ण है किन्तु सभी वर्ण उसी के हैं। वह अरूप है, किन्तु सभी रूप उसी के है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों देश से परिसीमित है। वह देश और काल से परे है। उसका न आदि है न अंत। वेदान्त के निर्गुण ब्रह्म विश्व में व्याप्त नहीं है। वेदान्त का सगुण कबीर का निर्गुण राम विश्व से परे भी है और विश्व में व्याप्त भी। (कबीर वाणी पीयूष)

कबीर साहित्य में राम का अर्थ अन्तत: सर्वसत्तावादी, सर्वरूप, सर्वव्याप्त उस परम तत्व चेतना से है जिसे सगुण सम्प्रदाय राम अथवा अन्य ईश्वरीय संज्ञा पदों से जानता है। कबीर के वहाँ 'राम' संज्ञा स्पष्ट न होते हुए भी 'राम' की अवधारणा एकदम स्पष्ट है। कविजनोचित संस्कार के कारण कबीर ने राम को अन्यान्य संज्ञा पदों से भी पुकारा है। सगुण की तरह कबीर के राम एक रूपी चरित्र न होकर सर्वव्यापी ईश्वर की काव्योचित एवं भक्तिपूर्ण अवधारणा है। (कबीर वाणी पीयूष)

4.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप –

- कबीर के प्रारम्भिक एवं उत्तरवर्ती जीवन का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।
- कवि, दार्शनिक एवं समाजवेत्ता के रूप में कबीर के महत्व को जान चुके होंगे।
- कबीर के साहित्यिक महतव का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।

4.7 शब्दावली

वर्णाश्रमभ्रष्ट – परम्परागत वर्ण विभाजन से अलग

अन्यतम – जिसका जैसा दूसरा कोई न हो

तुल्य – समान

अध्येता – शोधकर ज्ञान प्राप्त करने वाला

श्रमसाध्य – मेहनत द्वारा प्राप्त

सर्वव्याप्त – जो हर जगह हो, ईश्वर

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 1270
2. मगहर
3. रामानंद
4. अयोध्या प्रसाद सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर वाणी पीयूष, पृष्ठ. 16,17
2. उपरोक्त , पृष्ठ.19
3. उपरोक्त , पृष्ठ.19,20
4. उपरोक्त , पृष्ठ.21
5. उपरोक्त , पृष्ठ.28
6. काव्य गरिमा पृष्ठ.26
7. कबीर वाणी पीयूष, पृष्ठ.30

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. सिंह, डा. जयदेव, सिंह, डॉ. शुकदेव सिंह, कबीर वाणी पीयूष, 1979,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. पाठक, मानवेन्द्र, काव्य गरिमा, 1991, गुरूदेव आफसेट नैनीताल।

3. दास, डा. श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली।
4. शर्मा, प्रो.सरनाम सिंह, कबीर – व्यक्तित्त्व , कृतित्व एवं सिद्धान्त, 2011, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली।

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कवि कबीर के प्रारम्भिक एवं साहित्यिक जीवन का विश्लेषण विस्तार से कीजिए।
2. कबीर के कवि रूप का मूल्यांकन करते हुए भारतीय भक्ति क्षेत्र में अनेक महत्व का आंकलन कीजिए।

इकाई 5 कबीर: पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 कबीर की कविता: आलोचना
5.4 कबीर का काव्य: व्याख्या
5.4.1 कबीर के पद: संदर्भ एवं व्याख्या
5.4.2 कबीर के दोहे: संदर्भ एंव व्याखा
5.5 कबीर का काव्य
5.5.1 कबीर के पद
5.5.2 कबीर के दोहे
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

यह स्नातकोत्तर स्तर के प्रथम वर्ष के द्वितीय प्रश्न पत्र की पांचवी इकाई है।

इस इकाई के अध्ययन के पूर्व की इकाई में आपने कबीर एवं उनके संबंध में सविस्तार अध्ययन किया। अब तक आपने कबीर के जीवन एवं उनकी कविता की साहित्यिक विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया प्रस्तुत इकाई में आप कबीर की कविता के विभिन्न रूपों का पाठ करेंगे तथा संदर्भ सहित कबीर काव्य की व्याख्या का अध्ययन भी करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- कबीर के काव्य का सीधा परिचय पा सकेंगे।
- कबीर के काव्य एवं कबीर के व्यक्तित्व के महत्व को जान सकेंगे।
- कबीर के पदों तथा दोहों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।

5.3 कबीर की कविता: आलोचना

जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे उसके कुछ ही पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इसलाम-जैसे एक सुसंगठित सम्प्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म-मत और समाज-व्यवस्था को बुरी तरह से झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्त्तनीय समझी जानेवाली जाति-व्यवस्था को पहली बार जबर्दस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था। बहुत-से पण्डितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने-अपने ढंग पर भारतीय समाज और धर्म-मत को संभालने का प्रयत्न कर रहे थे।

यहाँ दो और प्रधान धार्मिक आन्दलनों की चर्चा कर लेनी चाहिए। पहली धारा पश्चिम से आयी। यह सूफी लोगों की साधना थी। मज़हबी मुसलमान हिन्दू धर्म के मर्मस्थान पर चोट नहीं कर पाये थे, वे केवल उसके बाहरी शरीर को विक्षुब्ध कर सकते थे। पर सूफी लोग भारतीय साधना के अविरोधी थे। उनके उदारतापूर्ण प्रेम-मार्ग ने भारतीय जनता का चित्त जीतना आरम्भ किया था। फिर भी ये लोग आचार-प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके। उसका सामंजस्य आचार-प्रधान हिन्दूधर्म के साथ नहीं हो सका। यहाँ यह बात स्मरण रखने की है कि न तो सूफी मतवाद और न योगमार्गीय निर्गुण परम-तत्व की साधना ही उस विपुल वैराग्य के भार को वहन कर सकी जो बौद्ध संघ के अनुकरण पर प्रतिष्ठित था। देश में पहली बार वर्णाश्रम-व्यवस्था को एक अननुभूतपूर्व विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था। अब तक अब तक वर्णाश्रम-व्यवस्था का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं था। आचार-भ्रष्ट व्यक्ति व्यक्ति समाज से अलग कर दिए जाते थे और वे एक नयी जाति की रचना कर लेते थे। इस प्रकार सैकड़ों जातियाँ और उपजातियाँ सृष्ट होते रहने पर भी वर्णाश्रम-व्यवस्था एक प्रकार से चलती ही जा रही थी। अब

सामने एक जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी समाज था जो प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक जाति को अंगीकार करने की बद्धपरिकर था। उसकी एकमात्र शर्त यह थी कि वह उसके विशेष प्रकार के धर्म-मत को स्वीकार कर ले। समाज से दण्ड पाने वाला बहिष्कृत व्यक्ति अब असहाय नहीं था। इच्छा करते ही वह एक सुसंघटित समाज का सहारा पा सकता था। ऐसे समय में दक्षिण से वेदान्त-भावित भक्ति का आगमन हुआ, जो इस विशाल भारतीय महाद्वीप के इस छोर से उस छोर तक फैल गया। डा. ग्रियर्सन ने कहा था, ''बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त (धार्मिक मतों के) अन्धकार के ऊपर एक नयी बात दिखायी दी। यह भक्ति का आन्दोलन है। ''इसने दो रूपों में आत्म-प्रकाश किया। पौराणिक अवतारों को केन्द्र करके सगुण उपासना के रूप में और निर्गुण-परब्रह्म जो योगियों का ध्येय था, उसे केन्द्र करके निर्गुण प्रेम-भक्ति की साधना के रूप में। पहली रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता लिया, दूसरी ने विद्रोह का; एक ने शास्त्र का सहारा लिया, दूसरी ने अनुभव का; एक ने ऋद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को; एक ने सगुण भगवान् को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान् को। पर प्रेम दोनों का ही मार्ग था; सूखा ज्ञान दोनों को अप्रिय था; केवल बाह्याचार दोनों को सम्मत नहीं थे; आन्तरिक प्रेम-निवेदन दोनों को अभीष्ट था; अहैतुक भक्ति दोनों की काम्य थी; बिना शर्त के भगवान् के प्रति आत्म-समर्पण दोनों के विचारों में था। दोनों ही भगवान् की प्रेम-लीला में विश्वास करते थे। दोनों का ही अनुभव था कि भगवान् लीला के लिए इस जागतिक प्रपंच को सम्हाले हुए हैं। पर प्रधान भेद यह था कि सगुण-भाव से भजन करने वाले भक्त भगवान् को दूर से देखने में रस पाते रहे, जब कि निर्गुण-भाव से भजन करने वाले भक्त अपने-आप में रमे हुए भगवान् को ही परम काम्य मानते थे।

भक्त की भगवान के साथ यह जो आनन्द-केलि या प्रेम-लीला है ,वही मध्य-युग के समस्त भक्तों की साधना का के समस्त भक्तों की साधना का के भगवान के साथ यह रसमय लीला ही भक्त का परम काम्य है-लीला जिसका कोई प्रयोजन नहीं फल नहीं कारण नहीं आदि नहीं अन्त नहीं। इसी बात को मध्य-युग के अन्यतम वैष्णव भक्त विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कहा था, 'प्रेम ही परम पुरूषार्थ है-प्रेमाः पुमर्थो महान्।' साधारणः जिनको पुरूषार्थ कहा जाता है वे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष भक्त के लिए कोई आकर्षण नहीं रखते। और कबीरदास ने इसी बात को और शक्तिशाली ढंग से कहा था:

राता- माता नाम का, पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का, मॉगें मुक्ति बलाय।।
और भक्ति के आदर्श की धोषणा करते हुए द्विधाहीन भाषा में कहा:
भाग बिना नहि पा ये, प्रेम - प्रीति की भक्त।
बिना प्रेम नहीं भक्ति कछु भक्ति -भरयो सब जक्त।।
प्रेम बिना जो भक्ति हैं, सो निज दम्भ-विचार।
उदर भरन के कारने, जनम गवायौ सार ।।

परन्तु कबीरदास अपने युग के सगुण - साधना - परायण भक्तों से कुछ भिन्न थे।

यद्यपि दोनों की साधना का केन्द्र - बिन्दु यह प्रेम - भक्ति हैं,- इसे आनन्दकेलि प्रीति ,

भक्ति ,प्रेमलीला आदि जो भी नाम दे दिया जाय,-तथापि एक बात में वे सबसे अलग हो जाते हैं। कबीरदास का रास्ता उल्टा था। उन्हें सौभाग्यवश सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने प्रकार के संस्कार पड़ने के रास्ते हैं वे प्राय: सभी उनके लिए बन्द थे। वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे, हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे, वे साधु होकर भी साधु (=अगृहस्थ) नही थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान् की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे। वे भगवान् की नृसिंहावतार की मानव-प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वे नाना असम्भव समझी जानेवाली परिस्थितियों के मिलन-बिन्दु पर अवतीर्ण हुए थे। हिरण्यकशिपु ने वर मांग लिया था कि उसकोमार सकनेवाला न मनुष्य हो न पशु; मारे जाने का समय न दिन हो न रात; मारे जाने का स्थान न पृथ्वी हो न आकाश; मार सकनेवाले का हथियार न धातु का हो न पाषाण का- इत्यादि। इसीलिए उसे मार सकना एक असम्भव और आश्यर्चजनक व्यापार था। नृसिंह ने इसीलिए नाना कोटियों के मिलन-बिन्दु को चुना था। असम्भव व्यापार के लिए शायद ऐसी ही परस्पर-विरोधी कोटियों का मिलन-बिन्दु पर खड़े थे। जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता हैओर दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरीओर अशिक्षा; जहाँ पर एक ओर योगमार्ग निकल जाता है, दूसरी ओर भक्तिमार्ग; जहाँ से एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना,- उसी प्रशस्त चौरास्ते पर वे खड़े थे। वे दोनों और देख सकते थे और परस्पर-विरूद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के दोष-गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवत सौभागय था। उन्होंने इसका खूब उपयोग भी किया।

जैसा कि शुरू में ही बताया गया है, कबीरदास ने अपनी प्रेम-भक्तिमूला साधना का अभ्यास एकदम दूसरे किनारे से किया था। भगवत्-प्रेम पर उनकी दृष्टि इतनी दृढ़-निबद्ध थी कि इस ढाई अक्षर (प्रेम) को ही वे प्रधान मानते थे :

पि पि के पत्थर भया, लिखि लिखि भया जु ईट।
कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकौ छींट।।
पोथी पि पि जग मुआ, पंि त भया न को ।
ाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंि त हो ।।

यह प्रेम ही सब-कुछ है, वेद नहीं, शास्त्र नहीं, कुरान नहीं, जप नहीं, माला नहीं, तस्वीह नहीं, मन्दिर नहीं, मस्जिद नहीं, अवतार नहीं, नबी नहीं, पीर नहीं, पैगम्बर नहीं। यह प्रेम समस्त बाह्राचारों की पहुँच के बहुत ऊपर है। समस्त संस्कारों के प्रतिपाद्य से कहीं श्रेष्ठ है। जो कुछ भी इसके रास्ते में खड़ा होता है वह हेय है।

उन्होंने समस्त व्रतों, उपवासों और तीर्थों को एक साथ अस्वीकार कर दिया। इनकी संगति लगाकर और अधिकार-भेद की कल्पना करके इनके लिए भी दुनिया के मान-सम्मान की व्यवस्था कर जाने का उन्होंने बेकार परिश्रम समझा। उन्होंने एक अल्लाह निरंजन निर्लेप के प्रति

लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लगन या प्रेम का साधन यह प्रेम ही है; और कोई भी मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रेम ही साध्य है, प्रेम ही साधन-व्रत भी नहीं, मुहरम भी नहीं; पूजा भी नहीं, नमाज भी नही; हज भी नहीं; तीर्थ भी नहीं :

एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू तुरूक दुहूँ नहिं मेरा।
राखूँ व्रत न महरम जांनां, तिस ही सुमिरूँ जो रहै निदांनां।
पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै मनसकारूँ।
नां हज जाऊँ न तीरथ-पूजा, एक पिछाण्यां तौ क्या दूजा।
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन-सूँ मन लागा।

कबीर ने जो समस्त बाह्याचारों को अस्वीकार करके मनुष्य को साधारण मनुष्य के आसन पर और भगवान् को 'निरपख' भगवान् के आसन पर बैठाने की साधना की थी, उसका परिणामक्या हुआ और भविष्य में वह उपयोगी होगा या नहीं, यह प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं। सफलता महिमाकी एकमात्र कसौटी नहीं है। आज शायद यह सत्य निबिड़ भाव से अनुभव किया जानेवाला है कि सबकी विशेषताओं को रखकर मानव-मिलन की साधारण भूमिका नहीं तैयार की जा सकती। जातिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत,सम्प्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिन्न करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है जहाँ एक मनुष्य दूसरे से मनुष्य की हैसियत से ही मिले। जब तक यह नहीं होता तब तक अशान्ति रहेगी,मारामारी रहेगी, हिंसा-प्रतिस्पर्द्धा रहेगी। कबीरदास ने इस महती साधना का बीज बोया था। फल क्या हुआ, यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है।

कबीरदास की साधना भी न तो लोप हो गयी है, न खो गयी है। उनका पक्का विश्वास था कि जिससे साथ भगवान् हैं और जिसे अपने इष्ट पर अखण्ड विश्वास है उसकी साधना को करोड़-करोड़ काल भी झकझोरकर विचलित नहीं कर सकते :

जाके मन विश्वास है, सदा गुरू है संग।
कोटि काल झकझोर हीं, तऊ न हो चित भंग।।

('कबीर : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से साभार)

5.4 कबीर का काव्य: व्याख्या

प्रस्तुत इकाई के इस भाग में संत कबीर के काव्य जगत से चयनित पद एवं 10 दोहों की ससंदर्भ व्याख्या प्रस्तुत की जा रही है। विद्यार्थी इस काव्य चयन को सावधानी पूर्वक पढ़ कर सूक्ष्म मनोयोग से इसका मनन करें।

5.4.1 कबीर के पद: संदर्भ एवं व्याख्या

1. **संतौ भाई आई ग्यांन की आंधी रे।**
   भ्रम की टाटी सभै उड़ानी माया रहै न बांधी रे।।

दुचिते की दोह थूँनि गिरानी मोह बलेंड़ा टूटा।
त्रिसनां छानि परी घर ऊपरि दुरमति भां ा फूटा।
आंधी पाछै जो जल बरसै तिहिं तेरा जन भीनां।
कहै कबीर मनि मया प्रगासा उदे मानु जब चीनां।।

शब्दार्थ -

टाटी - टरिया या पर्दा
दुचिते - चित्त की दो अवस्थाएँ - 1. विषयासक्ति 2. बाह्याचार
थूँनि - खम्भा, स्तम्भ
बलेंडा - छाजन में बीच का बेड़ा या बल्ली, बड़ेर।
भीनां - भीग गया, रससिक्त
मनि - मन में, जन - भक्त, सेवक
खीना - क्षीण

संदर्भ - इस पद में कबीर ने बताया है कि अज्ञान का आवरण हटने पर ही ज्ञान का प्रकाश होता है और भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। इस तथ्य को उन्होंने छप्पर, आँधी और वर्षा के रूपक द्वारा स्पष्ट किया है।

व्याख्या - इस रूपक में ज्ञान को आँधी बताया गया है। आँधी आने पर छप्पर या छाजन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। ज्ञान की आँधी आने पर भ्रम की टटिया उड़ गई। वह टटिया माया की रस्सी से ही बँधी थी। वह रस्सी भी छिन्न-भिन्न हो गई। छप्पर को रोकने के लिए खम्बे लगे थे, वे भी आँधी के थपेड़ों से ध्वस्त हो गए। ये दो खम्भे चित्त की दो अवस्थाओं – विषयासक्ति और बाह्याचार - के थे। ज्ञानरूपी आँधी के थपेड़े से वे भी नष्ट हो गए। उस तृष्णारूपी छप्पर का मुख्य आधार मोहरूपी बड़ेर (बांस या बल्ली) भी मग्न हो गया। फलस्वरूप वह छप्पर धराशायी हो गया अर्थात् तृष्णा विनष्ट हो गई। छप्पर के गिरने पर अर्थात् तृष्णा के नष्ट होने पर कुमति रूपी बर्तन भी टूट गए। सामान्यतः आँधी के बाद वर्षा होती है। ज्ञान की आँधी के बाद प्रेम भक्ति रूपी जल की वर्षा हुई। इस प्रेमाभक्ति की वर्षा से प्रभु का भक्त रसस्नात हो गया। कबीर कहते हैं कि ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने पर उसके मन में दिव्य प्रकाश छा गया और उसने अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लिया।

टिप्पणी -

इससे मिलता रूपक 'धम्मपद' के एक पद में मिलता है। भगवान बुद्ध के हृदय में प्रकाश या ज्ञान का आविर्भाव होने पर उनके मुख से जो प्रथम उद्गार निकला था वह इस पद में निबद्ध है –

अनेक जाति संसारं संधाविस्सं अनिब्बिसं
गहकारकं गवेसन्ती दुक्खा जाति पुनप्पुनं

गहकारक दिट्ठोऽसि पुन गेहं न काहसि
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं बिसंखितं
बिसंखारगतं चितं तण्हानं खयमज्झगा।

मैं इस शरीररूपी घर को बनाने वाले की खोज करता हुआ अज्ञानवश अनेक जन्मों में संसार में आता हुआ दौड़ लगाता रहा। बार-बार जन्म लेना दुखदायी है। हे घर के बनाने वाले। मैंने अब तुझे देख लिया है। अब तू पुनः घर न बना पाएगा। तेरा गृहकूट (बड़ेर) विश्रृंखलित हो गया है और उसमें लगी शहतीरे मग्न हो गई हैं। चित्त में सभी संस्कार नष्ट हो गए हैं और तृष्णा का क्षय हो गया है।

2. अवधू सो जोगी गुरू मेरा
जो या पद का करै निबेरा
तखर एक मूल बिन ठाढ़ा बिन फूलॉ फल लागा
साखा पत्र कुछ नहिं वाकै अष्ट गगन मुख बागा
पग बिन निरत करां बिनु बाजा जिम्या हीना गावै
गावनहार कै रूप न रेखा सतगुर होई लखायै
पंखी का खोज मीन का मासा कहै कबीर बिचारी
अपरम्पार पार परसोतम वा मूरति की बिलहारी।।

शब्दार्थ - अवधूत = अव (उपसर्ग) + घू (धातु) + क्त **(प्रत्यय)** = जिसने अपनी सभी निम्न प्रवृत्तियों और संस्कारों को झकझोर कर बाहर फेंक दिया है। नाथ सम्प्रदाय के साधक अपने को योगी अथवा अवधूत कहते थे। कबीर ने प्रायः अवधू या योगी सम्बोधन द्वारा अपर व्यंग्य किया है। निबेरा = स्पष्टीकरण, तरवर = वृक्ष प्रकृति या माया (मायां तु प्रकृति विद्यान् - श्वेताश्वर उपनिषद), अष्ट गगन - आठ दिशाएँ अथवा अष्टद्या प्रकृति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार)। मुख = ओर, तरफ। बागा = व्याप्त हुआ, निरति = नृत्य, खोज = मार्ग।

संदर्भ - गीता में तीन तत्वों - क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, पुरूषोत्तम - का उल्लेख मिलता है। कबीर ने इस पद में इन्हीं तीन तत्वों की ओर संकेत किया है। क्षेत्र प्रकृति अथवा माया है, जिसमें क्षेत्रज अर्थात् जीवात्मा का क्रियाकलाप चलता रहता है। पुरूषोत्तम वह तत्व है जो क्षेत्र और क्षेत्रज दोनों को अपने में समेटे हुए है।

व्याख्या -वह कहते हैं कि हे अवधू! मैं तुम मैं तुम लोगों में उस योगी को अपना गुरू मानने को तैयार हूँ जो मेरे इस पद का स्पष्टीकरण कर दे। एक ऐसा वृक्ष है जो बिना मूल के स्थित है। उसमें बिना फूल के फल लगते हैं। यहाँ वृक्ष के द्वारा प्रकृति की ओर संकेत किया गया है। प्रकृति का कोई मूल और जड़ नहीं है। वह स्वयं सभी का मूल अर्थात् आधार है। सांख्य में उसे मूल प्रकृति कहा गया है, क्योंकि उसका और कोई मूल नहीं है - मूले मूलामावादमूलं मूलमसांख्यसूत्र। उस मूल प्रकृति रूपी वृक्ष में बिना फूल के विश्वरूपी फल लगा है अर्थात् सारा विश्व अत्यक्त प्रकृति

का व्यक्त परिणाम है। यद्यपि उस वृक्ष में शाखाएँ और पत्ते नहीं है तथापि वह आठों दिशाओं में फैला है। आठ दिशाओं में अष्टधा प्रकृति (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि अहंकार) का संकेत है।

इन क्षेत्र में आत्मा अर्थात् क्षेत्रज्ञ का क्रिया कलाप चलता रहता है। वह ऐसा चेतन तत्व है कि बिना पैर के नृत्य करता है, बिना हाथों के बाजा बजाता है और बिना जिह्वा के गाता है अर्थात् सूक्ष्म रूप से ही वह सारे क्रियाकलापों का मूलभूत आधार है। उस चेतन की कोई आकृति नहीं है, केवल सद्गुरू ही उस निराकार का बोध या परिचय करा सकता है। अंतिम दो पंक्तियों में कबीर यह बताते हैं कि वह चेतन पुरूषोत्तम से किस प्रकार युक्त हो सकताहै। पुरूषोत्तम सभी सीमाओं से परे है, उसकी कोई सीमा नहीं। कबीरदास कहतेहैं ऐसा पुरूषोत्तम जो सभी सीमाओं से परे (पार) है, मैं उसके प्रति आत्मसमर्पण करता हूँ। उससे युक्त होने के दो मुख्य मार्ग हैं - बिहंगम मार्ग और मीन मार्ग।

टिप्पणी - सिद्धों और योगियों द्वारा मुक्ति या परमार्थ के तीन मार्ग बताये गए है - पिपीलिका मार्ग, विहंगम मार्ग और मीन मार्ग पिपीलिका का अर्थ है - चींटी। चींटी धीरे-धीरे क्रम से चलती है। वह न कूद सकती है और न उड़ सकती है। जिस साधना द्वारा क्रयमुक्ति प्राप्त होती है, उसे पिपीलिका मार्ग कहते है। यहाँ कबीर ने मुक्ति के लिए केवल दो मार्गों - विंहगम मार्ग और मीन मार्ग को चुना है।

विंहगम मार्ग के दो मुख्य लक्षण हैं -

1. विहंगम अर्थात् पक्षी अपने गन्तव्य स्थान को उड़कर पहुँचता है।
2. उसके गमन का कोई पद-चिन्ह नहीं रह जाता है।
3. पक्षी की उड़ान के द्वारा सद्योमुक्त का संकेत किया गया है और दूसरे लक्षण द्वारा आत्मा के परमात्मा तक गमन की रहस्यात्मकता को व्यक्त किया गया है।

मीन मार्ग के भी दो लक्षण है। मछली के जल में गमन का कोई चिन्ह नहीं रह जाता। यह लक्षण विंहगम मार्ग के ही समान है, किन्तु मीन की दूसरी विशेषता यह है कि वह जलधारा के विपरीत चलती है। इसके द्वारा यह संकेत किया गया है कि जीव की विषयों के प्रति जाने की जो पराङ्.मुखी प्रवृत्ति होती है, परामात्मा तक जाने के लिए उसे उलटकर प्रत्यङ्.मुखी बनाना होगा।

अलंकार - विभावना

राग - रामकली

3. तननां बुननां तज्यौ कबीर
राम नाम लिखि लियौ सरीर
मुसि मुसि रोवै कबीर की माई
ए बारिक कैसे जीवहिं खुदाई

जब लगि तागा बाहौं बेहि
तब लगि बिसरै राम सनेही
कहत कबीर सुनहु मेरी माई
पूरनहारा त्रिभुवनराई।

शब्दार्थ - मुसि मुसि = (सं. मुषित) ठगी-सी। ए-यह। बारिक = बालक, लड़का। बाहौ = भरूँ। बेहि = वेध। छिद्र। पूरनहारा = आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला।

व्याख्या - कबीर ने वस्त्र बुनने का कार्य छोड़ दिया। उनके रोम-रोम में राम नाम भर गया। इस कारण कबीर की मॉ ठगी सी रोती है और कहती है कि हे प्रभु। यह बालक कैसे जीवन निर्वाह करेगा ? कबीर माँ को समझाते हुए कहते हैं कि मैं एक क्षण भी प्रिय राम को नहीं भुला सकता। मैं जब नली के छेद में तागा भरता रहूँगा, तब तक राम नाम बिसरा रहेगा। ऐ माँ! तू मेरे लिए चिन्ता मत कर। प्रभु सबकी आवश्यकाओं की पूर्ति करने वाला है।

टिप्पणी - यह पद कबीर के जीवन पर प्रकाश डालता है। कपड़ा बुनना उनका व्यवसाय था। किन्तु उनके उपर राम नाम की ऐसी घुन सवार थी कि वह एक क्षण भी उस नाम को बिसार नहीं सकते थे। उन्होंने अपनी माता को आश्वासन भी दिलाया था कि वह उनके लिए चिन्ता न करें। प्रभु उनके योग क्षेत्र का ध्यान रखेगा।

4. पिया मेरा मिलिया सत्त गियांनी
सब में व्यापक सबकी जांनै ऐसा अन्तरजामी
सहज सिंगार प्रेम का चोला सुरति निरति भरि आनी
सील संतोख पहिरि दो कंगन होई रही मगम दिवांनी
कुमति जरा करौ मैं काजर पढ़ी प्रेम रस बांनी
ऐसा पिय हमं कबहुँ न देखा सूरति देखि लुभानी
कहै कबीर मिला गुर पूरा तन की तपनि बुझांनी।।

शब्दार्थ - सत्त = सत्य। गियानी = ज्ञानी। चोला = वस्त्र। सुरति = प्रेमपूर्णध्यान। निरति = प्रेमपूर्ण ध्यान की उत्कृष्टावस्था।

व्याख्या - उपनिषदों, में कहा गया है कि ब्रह्मवाचक इन्हीं तीनों शब्दों का अपने ढंग से प्रयोग करते है कि मेरा प्रियतम मुझे मिल गया, जो कि सत्य है, ज्ञान रूप है और सबमें व्यापता है। वह ऐसा अन्तर्यामी है कि सबके भीतर विद्यमान रहते हुए, सभी की शुभ-अशुभ वासनाओं और कर्मो को जानता रहता है।

अपने प्रियतम से मिलने के लिए मैंने सहज श्रृंगार किया है। मैंने प्रेमपूर्ण ध्यान और लवलीनता के सुन्दर वस्त्र में अपने को सुसज्जित किया है। हाथों में शील और संतोष के दो कुंगन धारण कर मैं प्रेम में उन्मत्त हो रही हूँ। मैं कुमति को जलाकर उसके काजल से अपने नेत्रों को सजाऊँगी। मैंने प्रियतम को रिझाने के लिए प्रेम रस से परिपूर्ण वाणी भी सीख ली है। मेरा

प्रिय अनुपम है। उसके प्रथम दर्शन मात्र से मैं उसकी ओर आकृष्ट हो गई। कबीर कहते हैं कि मुझे वह रहस्य ज्ञात हो गया जिससे मैं प्रियतम को प्राप्त कर अपने त्रिताप को बुझाने में सफल हो गई हूँ।

अलंकार - सांग रूपक

राग - बिहंगड़ो (बिहागड़ा)

5.4.2 कबीर के दोहे: संदर्भ एंव व्याखा

1. **कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गये ब्रह्म महेस**
   राम नाम ततसार है, सब काहू उपदेस

शब्दार्थ - कथि = कह। ततसार = सारतत्व

व्याख्या - कबीर कहते है कि ब्रह्मा और शिव ने सारे संसार को एक मुख्य उपदेश दिया है और मैं भी वही कहता हूँ कि राम नाम ही वास्तव में सार वस्तु है। यह उपदेश सबके लिए है अर्थात् बिना वर्ण, जाति, सम्प्रदाय और लिंग के भेद के राम की भक्ति का अधिकार सबको है।

2. **तूँ तूँ करता तू भया मुझ मैं रही न हूँ**
   वारी फेरी बलि गई जित देखौं तित तूँ ।।

शब्दार्थ - वारी = वरना, बलिहारी जाना

फेरी = भाँवरी, चक्कर

बलि गई = न्यौछावर होना।

व्याख्या - तू तू याद करते हुए मैं स्वयं 'तू' हो गया। मुझमें मेरा पन न रह गया अर्थात् मेरा अंहभाव समाप्त हो गया। मैं पूर्वरूप से तेरे उपर न्यौछावर हो गया हूँ और अब जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू दिखलाई देता है अर्थात् सारा जगत ब्रह्ममय हो गया है।

टिप्पणी - दूसरी पंक्ति का अन्य पाठ इस प्रकार मिलता है -

- 'वारी तेरे नाऊँ पर' इसका भी अर्थ वही है कि मैंने तेरे नाम पर अपने को न्यौछावर कर दिया। 'वारीफेरी बलि गई' का एक दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है - वारी फेरी अर्थात संसार में चक्कर काटते रहना, आवागमन, बोलि गई बल गया, जल गया, नष्ट हो गया। मेरा पृथक भाव जाता रहा। संसरण समाप्त हो गया। अब जिधर देखता हूँ, तू ही तू दिखलाई देता है।

अलंकार - तद्गुण

3. बिरहा - बुरहा जिमि कहा बिरहा है सुलतान
जा घट बिरह न संचरै सो घट सदा मसान

शब्दार्थ - बुरहा = विरह

सुलतान = राजा, श्रेष्ठ

मसान = श्मशान।

व्याख्या - विरह को बुरा मत कहो। बिरह तुच्छ, नहीं श्रेष्ठ है। जीवन का राजाधिराज है। वह सदा श्मशान के समान है अर्थात् जिस व्यक्ति में विरह का भाव नहीं है, वह मृत समान है, निर्जीव है।

टिप्पणी - तुलनीय - बिरहा-बिरहा आखिये, बिरहा है सुलतान फरीदा,
जिमुतन बिरह न उपजै, सोतणु जाणुमसाणु

4. कबीर माया पापिनी, फंद ले बैठी हाटि
जब जन तौ फन्देपरा, गया कबीरा काटि।।

शब्दार्थ - पापिनी = पाप में ले जाने वाली, दुष्टा

फंद = फंदा, पाश।

हाटि = बाजार में

काटि = काटकर।

कबीर कहते हैं कि पाप में ले जाने वाली माया इस संसार रूपी बाजार में फंदा लिए बैठी है। संसार के सारे लोग उसी पाश में फंस गए केवल कबीर (प्रभु-शरण में) उस फंदे को काटकर निकल गया अर्थात् उसके प्रलोभन से बच गया और परमार्थ को प्राप्त कर लिया।

अलंकार - व्यतिरेक।

5. सहजैं सहजैं सब गए, सुत वित कामिनि काम
एकमेव है मिलि रहा, दास कबीरा राम।

शब्दार्थ - सहजै-सहजै = सरलतापूर्वक।

सुत = पुत्र

वित = सम्पत्ति

कामिनि = स्त्री

व्याख्या - इस साखी में 'सहजैं-सहजैं' पारिभाषिक अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुआ है यहाँ 'सहज' का अर्थ है - सरलतापूर्वक, स्वत: साधना दो प्रकार की होती है - एक तो नाना प्रकार की यन्त्रणाओं से इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को बलपूर्वक दबाना और दूसरे प्रभु में इतना तीव्र अनुराग हो जाना कि विषयों का आकर्षण स्वतः घूट जाय। कबीरदास की साधना इसी दूसरे प्रकार की थी और उसी दृष्टि से वह कहते हैं कि मेरी पुत्र, धन, कामिनी और काम में आसक्ति सहज भाव से अर्थात! सरलतापूर्वक चली गई और मैं राम से एकरस हो गया। मैं तो इसी को 'सहज' कहता हूँ।

अलंकार - पुनरूक्तिप्रकाश।

5.5 कबीर का काव्य

कबीर की कविताई के संबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा ''उनकी वाणियों में सबकुछ को छाकर उनका सर्वजयी व्यक्तित्व विराजता रहता है। कबीर की वाणी का अनुकरण नहीं हो सकता। अनुकरण करने की सभी चेष्टाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई है। इसी व्यक्तित्व के आकर्षण को सहृदय समालोचक संभाल नहीं पाता और रीझकर कबीर को कवि कहने में संतोष पाता है। ऐसे आकर्षक वक्ता को कवि न कहा जाए तो और क्या कहा जाए। परंतु यह मूल नहीं जाना चाहिए कि यह कवि रूप धतुण् में मिली वस्तु है। कबीर ने कविता लिखने की प्रतिज्ञा करके अपनी बाते नहीं कही थी।''

कबीर का कवि व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण है प्रसंगवश इतना कहना होगा कि हिंदी साहित्य के बहुमान्य समालोचकों ने कबीर की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए भी कवि के रूप में कबीर की प्रतिष्ठा कम ही ऑंकी है। इकाई के इस भाग में विद्यार्थियों के अभ्यास हेतु कवि कबीर की कविताओं के कुछ चयनित अंश शब्दार्थों के साथ दिए जा रहे हैं जिन्हें विद्यार्थियों द्वारा स्वाध्याय द्वारा व्याख्यायित किया जाना है।

5.5.1 कबीर के पद (अभ्यास)

1. माया महागिनी हम जानी
तिरगुण फॉसि लिए कर ालै
बोलै मुधुरी बानी
केसव के कवंला होई बैठी
सिव कै भवन भवानी
पं ा कै मूरति होई बैठी
तीरथ हूँ मैं पानी
काहूँ के कौड़ी कानी
जोगी के जोगिनि होई बैठी
राजा के घरि रानी
मंगतां के भगतिनि होई बैठि

तुरकां के तुरकांनी
दास कबीर साहेब का बंदा
जाकै हाथ बिकानी।

शब्दार्थ - तिरगुण = तीन गुणों वाला (सत, रज, तम)
केसव = विष्णु
कवंला = लक्ष्मी
तुरकां = तुर्क
बिकानी = बिक गई, दास बन गई।

2. हम न मेरें मरि है संसारा
हम कूँ मिल्या जियावन हारा
अब न मरौ मरनै मन माना
तई मुए जिनि राम न जाना
साकत मेरे संत जन जीवै
भरि-भरि राम रसायन पीवै।
हरि भरि है तो हमदूँ मरि है।
हर न मेरे मेरें हम काहू कू मरि है।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा
अमर मये सुख सागर पावा।

शब्दार्थ - जियावन = जीवन देने वाला

नई मुए = वो मरेंगे

साकत = शाक्त मतावलम्बी

रसायन = सार तत्व

3. माघौ कब करिहौ दाया

काम क्रोध हंकार बिआपें ना छूटै माया

उतपति बिदुं भयौ जा दिन तैं कबहूँ सचुनहि पायौ
पंच चोर संग ला दिए हैं
न संगि जनम गवांयौ
तन मन स्यौ मुजंग भांमिनी
लहर ं वार न पारा
गुरू गार ू मिल्यौ नहि कबहूँ
पसन्यो बिरव बिकरारा

कहै कबीर दुख कासौं कहिए
कोई दरद न जानै
देहु दीदार बिकार दूरि करि
तब मेरा मन मानै।

शब्दार्थ - हंकार = अंहकार
बिआपै = व्याप्त होना
बिन्दु = वीर्य
सचु = आनंद
भामिनी = कामिनी
लहरे = विष के प्रभाव का झोंका
वार न पारा = ओर-छोर
गारडू = सर्प का विष उतारने वाला
बिकरारा = बिकराल
दीदार = दर्शन
बिकार = अवगुण
मन मानै = मन संतुष्ट होना।

5.5.2 कबीर के दोहे (अभ्यास के लिए)

1. मेरा मन सुमिरै राम, मेरा मन रामहिमाहि
अब मन रामहिं है रहा, सीस नवावौं काहि

सुमिरै = स्मरण करता है

माहि = में

नवावौं = नवाऊँ , झुकाऊँ

काहि = किसे।

2. नैन हमारे बावरे, छिन छिन लौरे तुज्झ
नाँ तूँ मिलै न मैं सुखी ऐसी वेदन मुज्झ

लौरै - लपकते हैं, उत्सुक होते हैं

तुज्झ - तुझे

वंदन - वंदना, पीड़ा

मुज्झ - मुझे

3. सुर नर थाके मुनि जनां ,जहाँ न कोई जा
मोटे भाग कबीर के , तहाँ रहे घर छा ।

शब्दार्थ - जनाँ - लोग
मोटे - बड़े
छाइ - बना कर

4. कबीरा मन मिरतक मया
दुरबल मया सरीर
पाछै-पाछै हरि फिरै
कहत कबीर - कबीर

शब्दार्थ – मिरतक - मृतक तुल्य
दुरबल - दुर्बल

5. सुखिया सब संसार है
खायै अरू सौवै
दुखिया दास कबीर है
जागै अरू रोवै

अभ्यास प्रश्न

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए -

1. कबीर की कविता का संग्रह.....है।
2. कबीर के कविता के.....भाग है।
3. साखी का अर्थ.....है।
4. सबद में.....हैं।
5. साखी.....छन्द में है।

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप :

- कबीर के कवि व्यक्तित्व से परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।
- कबीर द्वारा लिखित पदों एवं दोहों की सविस्तार व्याख्या को समझ चुके होंगे।
- कवि कबीर के कवि, दार्शनिक एवं सामाजिक रूप से चेतन व्यक्तित्त्व का साहित्यिक साक्ष्य प्राप्त कर चुके होंगे।

5.8 शब्दावली

आविर्भूत - प्रकट हुआ

विषयासक्ति - विषयों में आसक्ति

सम्प्रदाय - धर्म मत

क्रियाकलाप - विभिन्न प्रकार के कार्य

त्रिताप - तीन प्रकार के ताप (दैहिक दैविक, भौतिक)

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) 1. बीजक

2. तीन

3. गवाह

4. पद

5. दोहा

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शर्मा, सरनाम सिंह, कबीर, व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धान्त, 2011, कल्पना प्रकाशन,दिल्ली।
2. अग्रवाल, पुरूषोत्तम, कबीर-साखी और सबद, 2007, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नई दिल्ली।
3. दास, श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, 2010, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
4. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, (सम्पादक - मुकुदं द्विवेदी) 1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

5.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, बनारस

2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

3. अग्रवाल, पुरूषोत्तम, अकथ कहानी प्रेम की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. वंशी, बलदेव, कबीर एक पुनर्मूल्यांकन आधार प्रकाशन पंचकूला

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. कबीर का जीवन परिचय देते हुए उनके काव्य की सविस्तार समालोचना कीजिए।
2. भारतीय धर्मसाधना में कबीर के महत्व पर प्रकाश डालते हुए अपने विचार सविस्तार रूप से लिखिए।

इकाई 6 : सूरदास : साहित्य एवं आलोचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 सूरदास : जीवन परिचय एवं रचनाएँ
6.3.1 सूरदास: जीवन
6.3.2 सूरदास: रचनाएँ
6.4 सूरदास : काव्यकला एवं विचार
6.4.1 सूरदास: काव्यकला
6.5 सूरदास: आलोचना
6.6 सूरदास: पाठ एवं व्याख्या
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.11 सहायक पाठ्य सामग्री
6.12 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

स्नातकोत्तर प्रथम वर्ष के द्वितीय प्रश्न पत्र के अंतर्गत यह छठी इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने क्रमश:भक्ति काव्य के उदय, उसके विकास को समझा तथा सूरदास से पूर्व मध्यकालीन भक्ति कविता के प्रमुख कवि संत कबीर के जीवन एवं काव्य को गंभीरता से समझा होगा। प्रस्तुत इकाई में आप कविवर सूरदास के जीवन एवं साहित्यिक का परिचय प्राप्त करेंगे। साथ ही उनके साहित्य संसार में से चयनित कुछ प्रतिनिधि पदों का पाठ एवं व्याख्या का अध्ययन भी हो इस इकाई में करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- सूरदास के जीवन का क्रमिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- सूरदास के काव्य का क्रमबद्ध विकासात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
- सूरदास के सघन रसात्मक पदों की ससंदर्भ व्याख्या कर सकेंगे।
- मध्यकालीन भक्ति कविता के अंतर्गत महाकवि सूरदास के महत्व को समझ सकेंगे।

6.3 सूरदास:जीवन परिचय एवं रचनाएँ

भारत वर्ष की महान प्रतिभाओं का लौकिक जीवन साधारण अर्थों में अज्ञात है। महाकवि सूरदास का जीवन भी इतिहास के किसी अज्ञात कोने में छिपा हुआ है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'यह अन्धा गायक कौन था' नामक निबंध में लिखा है, "यह अन्धा मनुष्य जो महाप्रभु वल्लभचार्य की शरण में गया था, जो अपने को 'सब पतितन कौ टीको' जनमत ही कौ पातकी बताकर व्याकुल वेदना से घिघिया उठा था (स्वयं महाप्रभु ने ही इस शब्द का प्रयोग किया था) और अपने को भगवत्-लीला के विषय में अन्जान बताया था, वह कौन था? वह किन अवस्थाओं में अन्धा हुआ था; कहाँ-कहाँ भटकता हुआ गऊघाट पहुँचा था; कितना अपमान, कितनी अवहेलना, कितना तिरस्कार पा चुका था, इसका कुछ भी पता नहीं है। बड़भागी माता पिता ने उसको जन्म दिया था, किन निदारूण परिस्थितियों में उनका यह लाला दर-दर भटकने को मजबूर हुआ था, उसे कोई नहीं जानता। किसी ने जानने की परवाह भी नहीं की। जिसका दृढ़ विश्वास हो गया था कि 'मैं जनमत ही कौ पतित' हूँ, 'सब पतितन कौ नायक' हूँ, वह कितना उपेक्षित हो चुका होगा; कितना अपमानित जीवन बिता चुका होगा – हमें बिल्कुल नहीं मालूम।" महाकवि सूरदास के संदर्भ में आचार्य द्विवेदी का यह कथन महत्वपूर्ण है। हालाकि महाकवि के जीवन से संबंधित बहुत सी जानकारियाँ विभिन्न शोध अध्येताओं एवं विचारकों ने खोज निकाली हैं परन्तु यहाँ यह कह देना महत्वपूर्ण है कि महाकवि के जीवन से संबंधित यह तथ्य अन्त: साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्यों पर आधारित है तथा कभी-कभी यह कल्पना की सीमा तक पहुँच जाते हैं।

अन्त:साक्ष्य के अन्तर्गत स्वयं कवि द्वारा लिखित उन पदों को रखा जा सकता है जिनके आधार पर हमें महाकवि के जीवन संबंधी तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है। हालांकि स्वयं ऐसे पदों की प्रमाणिकता पर भी विभिन्न विद्वानों ने संदेह प्रकट किया है। इसी तरह बहिर्साक्ष्यों के अन्तर्गत विद्वानों ने विभिन्न साहित्यिक एवं इतिहासपरक साक्ष्यों, प्रमाणों को सम्मिलित किया है । उदाहरण: (1) वार्ता साहित्य (2) साम्प्रदायिक साहित्य (3) समकालीन एवं परवर्ती भक्ति-साहित्य (4) ऐतिहासिक ग्रंथ (5) आलोचना एवं शोध।

6.3.1 सूरदास: जीवन

जन्म :- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की तरह कविवर सूरदास का जन्म भी इतिहास के गर्त में छिपा हुआ है। विभिन्न विद्वानों ने शोधपूर्ण अध्ययन के पश्चात् महाकवि की जन्म तिथि, जन्म स्थान, जन्म स्थिति, प्रारम्भिक एवं उत्तरकालीन जीवन स्थितियों का विवरण दिया है। मध्यकालीन भक्ति साहित्य के अन्तर्गत महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले वल्ल्भ सम्प्रदाय के आधार पर कुछ विद्वान महाकवि सूरदास का जन्म सं.1535, वैशाख शुक्ल पंचमी, मंगलवार को मानते हैं। इस संदर्भ में मध्यकालीन भक्ति कविता के विशेषज्ञ डा. दीनदयाल गुप्त का विश्लेषण महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार पुष्टिमार्ग के आचार्य वल्लभ सूरदास से आयु में 10 दिन बड़े थे। महाप्रभु वल्ल्भाचार्य की जन्म तिथि सं.1535 वि. वैशाख कृष्ण एकादशी, रविवार मानी जाती है, इस आधार पर डा. दीनदयाल गुप्त एवं अन्य कई शोधकर्ता सूरदास की जन्मतिथि वैशाख सुदी पंचमी को मानते हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के एक अन्य वार्ताकार श्री गोकुल दास की पुस्तक 'निजवार्ता में भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है, उन्होंने लिखा है, ''सो श्री आचार्य जी सो दस दिन छोटे हुते।''

जन्म स्थान :- जैसा की पहले कहा जा चुका है कि सूरदास के जीवन की अन्य स्थितियों की ही तरह जन्म स्थान के संबंध में भी तथ्यात्मक घटाटोप बना हुआ है। विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर शोध के आधार पर अलग-अलग स्थानों को सूरदास का जन्मस्थान माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ''सूरदास जी का वृत्त 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' से केवल इतना ज्ञात होता है कि वे पहले गऊघाट (आगरे और मथुरा के बीच) पर एक साधु या स्वामी के रूप में रहा करते थे और शिष्य करा करते थे।'' इसी प्रकार डा. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने वर्तमान ग्वालियर को 'गोपाचल' नामक स्थान मानकर वहाँ सूरदास का जन्म निश्चित किया है। हालांकि रामचंद्र शुक्ल ने गऊघाट को सूरदास का निवास स्थान माना है परन्तु वे रूनकता को सूरदास का जन्म स्थान मानते हैं। "डा. मुंशीराम शर्मा ने 'साहित्यलहरी' में उल्लिखित, 'गोपाचल' और जनश्रुति में प्रचलित 'रूनकता' को गऊघाट या गौघाट बताया है जो आगरा मथुरा से 24 मील दूर है।" जो भी हो परन्तु इतना निश्चित है गऊघाट पर ही सूरदास और वल्लभाचार्य की भेंट हुई ओर वल्लभाचार्य की ही प्रेरणा से सूरदास ने भागवत की कथा को गेय पदों में परिवर्तित किया। आचार्य शुक्ल के अनुसार, इसके पश्चात् ही "उनकी सच्ची भक्ति और पदरचना की निपुणता

देख वल्लभाचार्य जी ने उन्हें अपने श्रीनाथ जी के मंदिर की कीर्तन सेवा सौंपी।" कुछ विद्वान सीही नामक स्थान को भी सूरदास का जन्म स्थान मानते हैं।

जीवन स्थिति :- महाकवि सूरदास के जीवन से संबंधित एक तथ्य पर अधिसंख्य विद्वान एकमत हैं - वह तथ्य है कवि का जन्मान्ध होना। स्वयं सूरदास द्वारा लिखित कई पदों में कवि के अन्धे होने का उल्लेख मिलता है। परन्तु कुछ विद्वान मानते है कि कवि सूरदास अंधे अवश्य थे,परन्तु जन्म से नहीं। प्रसिद्ध पुस्तक 'भक्तमाल', चौरासी वार्ता एवं गोस्वामी हरिराय के भावप्रकाश के अनुसार भी सूरदास जन्मान्ध थे। कवि की शिक्षा के संबंध में भी लगभग यही स्थिति है। सम्पूर्ण सूर-काव्य का अवगाहन करने के पश्चात् यह बात आसानी से कही जा सकती है कि सूरदास काव्य-ज्ञान के आधार पर शिक्षा सम्पन्न व्यक्तित्व के स्वामी थे। उनकी रचनाओं को पढ़कर यह अनुभव होता है कि सूरदास को न केवल काव्यशास्त्र का अपितु संगीतशास्त्र का भी ज्ञान था। सूरदास का अनुभव क्षेत्र बृहद था यह बात भी सूरदास के पाठकों को भली प्रकार समझ में आ जाती है। हालांकि सूरदास की शिक्षा के संबंध में सभी अन्त: एवं बाह्य साक्ष्य मौन है तदापि सूरदास के काव्य को पढ़कर उनके विशिष्ट शास्त्रीय ज्ञान एवं व्यावहारिक अनुभव को जानना कठिन नहीं है।

मृत्यु :- महाकवि सूरदास के जीवन के अंतिम चरण पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'सूरसागर' समाप्त करने पर सूर ने जो 'सूरसागर सारावली' लिखी है उसमें अपनी अवस्था 67 वर्ष की कही है – 'गुरू परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन'। तात्पर्य यह कि 67 वर्ष के होने के कुछ पहले वे 'सूरसागर' समाप्त कर चुके थे। सूरसागर समाप्त होने के थोड़ा ही पीछे उन्होंने 'सारावली' लिखी होगी। एक और ग्रंथ सूरदास का 'साहित्य लहरी' है, जिसमें अलंकारों और नायिका भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने वाले कूट पद है। इसका रचनाकाल सूर ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

मुनि सुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरीनंद को लिखि सुबल सम्बत पेख।।

इसके अनुसार संवत् 1607 में 'साहित्य लहरी' समाप्त हुई। यह तो मानना ही पड़ेगा कि साहित्यक्रीड़ा का यह ग्रंथ 'सूरसागर' से छुट्टी पाकर ही सूर ने संकलित किया होगा। उसके दो वर्ष पहले यदि 'सूरसारावली' की रचना हुई तो कह सकते हैं कि संवत् 1605 में सूरदास जी 67 वर्ष के थे। अब यदि उनकी आयु 80 या 82 वर्ष की मानें तो उनका जन्मकाल सं.1540 के आसपास तथा मृत्युकाल, सं.1620 के आसपास अनुमानित होता है। डा. मुंशीराम शर्मा के अनुसार सूरदास संवत् 1628 एवं 'सूर-निर्णय' के लेखकों के अनुसार संवत् 1640 तक वर्तमान थे। सभी विद्वानों के शोधों का विश्लेषण करने पर यह अनुमित किया जा सकता है कि महाकवि सूरदास की मृत्यु संवत् 1635 से 1642 के मध्य कभी हुई होगी। सूर-साहित्य के अन्यतम विद्वान प्रोफेसर व्रजेश्वर वर्मा ने सूरदास के जीवन का आकलन करते हुए ठीक ही लिखा है कि, ''सूरदास उच्च कोटी के भक्त थे। महाप्रभु से भेंट होने के पूर्व से ही वे विरागी और संभ्रांत भक्त

के रूप में भगवतद्भजन करते हुए गऊघाट पर रहते थे। उस समय भी वे पद-रचना और संगीत में पर्याप्त निपुण थे। वे इतने विज्ञ और अनुभवी थे कि उन्होंने तीन-चार दिन में ही 'श्रीमद्भागवत' और 'सुबोधिनी' का वास्तविक भाव हृदयंगम कर लिया और तत्संबंधी आशु पद-रचना से महाप्रभु पर गंभीर प्रभाव डाल दिया। यद्यपि दार्शनिक वादों के संबंध में उनका दृष्टिकोण पंडितों-जैसा नहीं था और न उन्होंने अपने काव्य में दार्शनिक विचारों का प्रतिपादन या विवेचन किया है, फिर भी भक्ति-भाव के प्रकाशन के प्रसंगों से विदित होता है, कि उन्हें तत्कालीन दार्शनिक सिद्धान्तों की भक्ति-भावना का जैसा विशद और व्यावहारिक रूप उनके काव्य में मिलता है, वैसा कदाचित् अन्यत्र दुर्लभ है।''

6.3.2 सूरदास:रचनाएँ

सूरदास वास्तविक अर्थों में 'महाकवि' की पदवी धारण करने के अधिकारी हैं। 'महाकवि' के स्तर पर पहुँचने के लिए अनेकानेक वृहद काव्य ग्रंथों का निर्माता होना आवश्यक नहीं होता। अध्येताओं ने माना है कि 'सूरसागर' सूरदास की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना है। इसके अतिरिक्त 'सूरसारावली' एवं 'साहित्य लहरी' नामक अन्य दो पुस्तकों को भी कुछ अध्येताओं ने सूरदास की पुस्तक माना है। हालांकि सूरदास के नाम से कतिपय अन्य पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं। **सूरसागर**–परम्परानुसार यह माना जाता रहा है कि महाकवि सूरदास द्वारा मूल रूप में लिखित 'सूरसागर' में सवा लाख पद थे, परन्तु वर्तमान में सूरसागर इतने वृहद रूप में प्राप्त नहीं होता है। 'सूरसागर' के एक परिमार्जित संस्करण का विस्तृत विवेचन करते हुए प्रोफेसर ब्रजेश्वर वर्मा ने निम्न तालिका प्रस्तुत की है –

स्कंध	**पद-संख्या**	**पृष्ठ-संख्या**
विनय के पद तथा प्रथम स्कंद	223+120=343	114
द्वितीय स्कंध	38	13
तृतीय स्कंध	13	10
चतुर्थ स्कंध	13	12
पंचम स्कंध	04	05
षष्ठ स्कंध	08	07
सप्तम स्कंध	08	08
अष्टम स्कंध	17	10
नवम् स्कंध	174	75
दशम स्कंध –पूर्वार्द्ध	4160	1392
दशम स्कंध –उत्तरार्द्ध	149	71
एकादश स्कंध	04	03
द्वादश स्कंध	05	04
	4936	**1724**

इससे स्पष्ट है कि यद्यपि दशम स्कंध-पूर्वार्द्ध अन्य स्कंधों की अपेक्षा आकार में बड़ा है, फिर भी उसमें दशम स्कंध-उत्तरार्द्ध से केवल 11, तृतीय से 48, चतुर्थ से 48 ओर एकादश से 61 पृष्ठ अधिक है। दशम स्कंध–पूर्वार्द्ध की पृष्ठ संख्या शेष स्कंधों की सम्मिलित पृष्ठ-संख्या का लगभग छठा भाग है। विस्तार की दृष्टि से दशम स्कंध- उत्तरार्द्ध का दूसरा, नवम् का सातवाँ और प्रथम का आठवाँ स्थान है।''

वर्तमान सूरसागर जिस रूप में मिलता है उसे दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. द्वादश स्कन्धात्मक
2. संग्रहात्मक

वैकटेश्वर प्रेस, मुम्बई द्वारा प्रकाशित 4578 पदों वाला 'सूरसागर' एवं नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित कुल 5206 पदों वाला 'सूरसागर' द्वादश स्कन्धात्मक है एवं नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित 'सूरसागर' संग्रहात्मक संस्करण है। इसके अतिरिक्त भी इलाहाबाद एंव वाराणसी के कुछ मान्य प्रकाशनों ने 'सूरसागर' के कुछ विशिष्ट संस्करणों का प्रकाशन किया है। सूरसागर की रचना अवधि सम्वत् 1567 से 1600 तक स्वीकृत है। इसका प्रेरणा-स्रोत श्रीमदभागवत है और उसी की भाँति इसमें भी द्वादश स्कन्ध हैं। श्रीमदभागवत को सूरदास ने अपनी प्रतिभा से पल्लिवित किया है। अत: सूरसागर को उसका अनुवाद कदापि नहीं माना जा सकता है। सम्पूर्ण सूरसागर एक मुक्तक के रूप में रचित है। संगीतात्मकता, नाद-सौन्दर्य, भावों की एकता विभिन्न रागरागनियाँ, विभिन्न रसों का प्रयोग तथा अद्भुत भावाभिव्यक्ति आदि न जाने कितनी विशेषताएँ इस ग्रंथ में एक साथ सिमट कर आ गई हैं। इसमें ब्रजभाषा की जो प्रांजलता है, वह घनानंद को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। सूरसागर का दशम स्कन्ध तो रीढ़ रज्जु है।

सूरसागर-सारावली :- इस रचना की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति आज तक नहीं मिली है। बंबई तथा लखनऊ से प्रकाशित 'सूरसागर' की प्रतियों में यह रचना मिलती है। परन्तु इसका आधार कौन सी हस्तलिखित प्रति है, इसका उल्लेख कहीं नहीं हुआ है। वैंकटेश्वर प्रेस, मुंबई द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर' के साथ प्रकाशित 'सूर-सागर सारावली' का शीर्षक 'अथ श्री सूरदास जी रचित सूरसागर सारावली तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र' है। ''आरम्भ में 'बन्दौ श्री हरिपद सुचादाई की टेक के साथ तनिक हेरफेर से 'सूरसागर' का प्रारंभिक वंदना वाला प्रसिद्ध पद है। तदनंतर 'सार' और 'सरसी; केवल दो छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक छंद के बाद उसकी संख्या लिखी हुई है, जो 1107 है। छंद संख्या 1102 और 1103 में बताया गया है कि "कर्मयोग, ज्ञान और उपासना के भ्रम में भटकने के बाद श्री बल्ल्भ गुरू ने तत्व सुनाया और लीला-भेद बताया। उसी दिन से 'एक लक्ष पद बंद' में हरि लीला गाई। उसका 'सार' 'सुरसारावली' अति आनन्द से गाते हैं।'' इस प्रकार इस रचना का विषय 'सूरसागर' के पदों की सूची अथवा सार कहा गया है। पद-संख्या 966 के बाद 'इति दृष्टकूट सूचनिका सम्पूर्ण' से भी यही सूचित होता है।"

हालांकि अधिसंख्य विद्वान 'सूरसागर' एवं 'सूरसागर सारावली' में अभिन्नता का भाव बताते हैं परन्तु वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के पश्चात् यह बात साफ हो जाती है कि अधिकांश में अभिन्नता होते हुए भी 'सूरसागर' एवं 'सूर-सारावली' में पारस्परिक भिन्नता विद्यमान है। सूर-सागर सारावली एक स्वतंत्र रचना है। इस कृति का रचनाकाल विद्वानों ने संवत् 1602 स्वीकार किया है, किन्तु डा. गोवर्द्धन नाथ शुक्ल को यह स्वीकार्य नहीं है। उन्होंने इसका रचनाकाल संवत् 1634 निर्धारित किया है। उनका कथन है –"जब सागर में ही सूर उसके रचनाकाल का संकेत नहीं दे सके, तो 1107 युग्मों की रचना तो उनके लिए खिलवाड़ मात्र थी। फिर भी संवत् 1602 की अपेक्षा 1634 कहीं अधिक जँच सकता, किन्तु कवि का लक्ष्य सारावली का प्रणयन-संवत् देना है ही नहीं, क्योंकि गुरूप्रसाद का महतव 1634 नहीं, अपितु 1567 में है।"

साहित्य लहरी :- 'सूरदास' के नाम पर एक अन्य काव्य–रचना को विद्वानों ने प्रमाणिक माना है, वह रचना है 'साहित्य-लहरी'। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इस पुस्तक का रचना काल सं. 1607 वि0 है परन्तु डा. मुंशीराम शर्मा एवं डा. धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार उक्त रचना का निर्माणकाल क्रमश सं. 1627 या सं. 1617 है। 'साहित्यलहरी' का विषय अलंकार और नायिका भेद है। इन्हीं के साथ कुछ संचारी एवं स्थायी भाव का विश्लेषण भी किया गया है "दृष्टि कूट शैली में स्वयं रूपकातिश्योक्ति अलंकार माना जाता है। रूपकातिश्योक्ति को आधार बनाकर अन्य अलंकारों तथा नायिका, रस, भाव आदि के उदाहरण देने का विचार अत्यन्त विलक्षण है।" हालाकि सूरसाहित्य के गंभीर अध्येताओं ने 'साहित्य-लहरी' की विषय-वस्तु की सूरदास की महान काव्य-प्रतिभा एवं काव्य-कला की अपेक्षा कमतर माना है और सूरदास की कृति के रूप में साहित्यलहरी की प्रमाणिकता को संदिग्ध माना है। इस पर भी साहित्य के कुछ मर्मज्ञ समालोचकों ने 'साहित्य-लहरी' को सूरदास की मौलिक रचना माना है। 'साहित्य लहरी की विषय-वस्तु पर संक्षिप्त टिप्पणी करते हुए डा. अंकुर ने लिखा है, 'साहित्य-लहरी' एक चमत्कारपूर्ण रचना है। इसका सृजन 'दृष्टिकूट' पदों में हुआ है। दृष्टिकूट एक ऐसी रचना है, जिसमें चमक, श्लेष एवं अन्योक्ति के माध्यम से वाचक अर्थ या प्रसंग की कल्पना की जाती है। साथ ही अनेकार्थवाची विशिष्ट शब्दों का प्रयोग भी इसमें अपेक्षित है। श्रीमदभागवत में ऐसी रचना को 'वाच-कूट' की संज्ञा दी गई है। श्री प्रभुदयाल भीत्तल का कथन है कि ऐसी रचना किसी विशिष्ट उद्देश्य से की जाती है। 'दृष्टिकूट' का शाब्दिक अर्थ है – दृष्टि को छलने वाला। अर्थात् ऐसे शब्द जिनका अर्थ गोपनीय हो या लक्षणा-व्यंजना का आवरण लिए हुए हों उन्हें दृष्टिकूट कहते हैं।

महाकवि सूरदास एवं उनकी काव्य सामग्री का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- "पहले कहा गया है कि श्री वल्लभाचार्य जी की आज्ञा से सूरदास जी ने श्रीमद्भागवत की कथा को पदों में गाया। इनके सूरसागर में वास्तव में भागवत के दशम स्कंध की कथा संक्षेपत: इतिवृत्त के रूप में थोड़े से पदों में कह दी गई है। सूरसागर में कृष्णजन्म से लेकर श्रीकृष्ण के मथुरा जाने तक की कथा अत्यंत विस्तार से फुटकल पदों में गाई गई है। भिन्न-भिन्न लीलाओं के प्रसंग को लेकर इस सच्चे रसमग्न कवि ने अत्यंत मधुर और मनोहर पदों की झड़ी सी बांध दी है । इन पदों के संबंध में सबसे पहली बात ध्यान देने की यह है कि चलती हुई

ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्य रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। यह रचना इतनी प्रगल्भ और काव्यपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियाँ सूर की जूठी सी जान पड़ती है। अत: सूरसागर किसी चली आती हुई गीतकाव्य परम्परा का – चाहे वह मौखिक ही रही हो – पूर्ण विकास सा प्रतीत होता है।"

अभ्यास प्रश्न

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

i. सूरदास का जन्म कब हुआ था ?
ii. सूरदास की सर्वाधिक प्रमाणिक रचना कौन सी है ?
iii. सूरदास की तीन रचनाओं के नाम बताईए।

(ख) सही/गलत चुनिए –

i. सूरदास जन्मान्ध थे (सही/गलत)
ii. सूरसागर की कथा श्रीमद्भागवदपुराण पर आधारित है (सही/गलत)
iii. सूरसागर एकादश स्कन्धों में विभाजित है (सही/गलत)

6.4 सूरदास:काव्यकला एवं विचार

महाकवि सूरदास की काव्य कला को उसकी पृष्ठभूमि में समझाते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराईयों में विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील कुंजों के बीच फैले मुरझाए मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अन्धे कवि सूरदास की वीणा की थी।"

6.4.1 सूरदास : काव्यकला

किसी भी कवि का विश्लेषण करने के लिए शास्त्रज्ञ आचार्यों द्वारा काव्य को दो अलग-अलग अवयवों में विभाजित किया गया है। इसे काव्य का आंतरिक एवं वाह्य विभाजन भी कहा जाता है। इस विभाजन में एक तरफ जहाँ काव्य की वस्तु का विश्लेषण किया जाता है वहीं दूसरी तरफ काव्य के स्वरूप की समीक्षा की जाती है। सूरदास की काव्य कला के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस विश्लेषण प्रक्रिया को निम्नांकित आधार से समझाने का प्रयास किया है। "कवि कर्म विधान के दो पक्ष होते हैं – विभाव पक्ष और भाव पक्ष। कवि एक ओर तो ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है, जो मन में कोई भाव उठाने या उठे भाव को और जगाने में समर्थ होते हैं, और दूसरी ओर उन वस्तुओं के अनुरूप भावों के अनेक स्वरूप शब्दों द्वारा व्यक्त

करता है। एक विभाव पक्ष है दूसरा भाव पक्ष है। कहने की आवश्यकता नहीं कि काव्य में ये दोनों अन्योन्याश्रित है, अत: दोनों रहते हैं। जैसे नायिका के रूप का नखशिख का कोरा वर्णन लें, तो उसमें भी आश्रय का रतिभाव अव्यक्त रूप में वर्तमान रहता है।"

विभाव पक्ष के अंतर्गत वस्तुएँ दो रूपों में लाई जाती है – वस्तु रूप में और अलंकार रूप में; अर्थात् प्रस्तुत रूप में और अप्रस्तुत रूप में। आचार्य शुक्ल द्वारा प्रदान किया गया आधार महाकवि सूरदास की काव्यकला को विश्लेषित करने हेतु महत्वूपर्ण प्रतिमान की तरह कार्य करता है। विभिन्न विद्वानों ने इसी आधार पर सूरदास की काव्यकला का एकनिष्ठ विवेचन किया है। विद्वानों के अनुसार प्रथम अर्थात् भाव पक्ष के अंतर्गत भक्ति-भावना, विचार, दर्शन, प्रकृति व्यंजना, वात्सल्य, श्रंगार आदि तत्वों एवं काव्य अवयवों का समावेश किया गया है तथा दसरे अर्थात् विभाव पक्ष में काव्य सौष्ठव एवं सौन्दर्यशास्त्रीय तत्वों का विश्लेषण किया गया है। इसके अन्तर्गत भाषा, लालित्य, छंद, रस एवं अलंकार, शैली इत्यादि तत्वों का समावेश किया गया है।

(क) भाव पक्ष (अनुभूति पक्ष) – महाकवि सूरदास की अनुभूति या भावपक्ष के अन्तर्गत भक्ति भावना, वात्सल्य, श्रृंगार, प्रकृति-चित्रण, दर्शन, व्यंग्य–विनोद, आदि तथ्यों पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है।

भक्ति-भावना – महाकवि सूरदास ने इस प्रपंचात्मक संसार से छूटने का एकमात्र उपाय हरि-भक्ति ही स्वीकार किया है । सूरदास की रचनाओं का सम्यक् अनुशीलन करने पर हमारे सामने दो प्रकार के पद आते हैं। एक तो विनय-भक्ति के पद और दूसरे सख्य-भक्ति के पद। विनय से आप्लावित भक्ति मुख्य रूप से दास्य भाव पर आधारित है। इस कोटि की भक्ति में भक्त कवि सूर ने अपने को निरीह, अंकिचन और पापी की सरणी में रखा है। अपने अराध्य की श्रेष्ठता को उन्होंने पग-पग पर स्वीकार किया है।

"श्रीमद्भागवत की नवधा भक्ति में से सूर ने अन्तिम तीन को ही मुख्य रूप से ग्रहण किया है, जिसमें आत्म-निवेदन, दास्य एवं सख्य के नाम उल्लेख्य है।" सूरदास के काव्य में समाविष्ट संपूर्ण भक्ति तत्व का आधार उपासक एवं उपास्य के बीच अनन्य प्रेमपूर्ण काव्य का केन्द्र बिन्दु है। यही पारस्परिक प्रेम एक तरफ सूर के काव्य में माधुर्य ओज एवं लालित्य का सृजन करता है वहीं दूसरी तरफ श्रृंगार और वात्सल्य के सभी पारम्परिक एवं मौलिक तत्वों का समावेश कराता है।

वात्सल्य – सूरदास का काव्य प्रारम्भिक स्तर पर अधिकांशत: उपास्य की बाल सुलभ चेष्टाओं का मौलिक काव्यात्मक उदाहरण कहा जा सकता है। वात्सल्य के अंतर्गत दो काव्य रूप हमारे सामने हैं -

(1) संयोग वात्सल्य (2) वियोग वात्सल्य

(1) संयोग वात्सल्य के अन्तर्गत कृष्ण के जन्म से लेकर बाल्यकाल की संपूर्ण चेष्टाएँ अत्यन्त काव्यात्मक एंव मौलिक रूप से सूरदास की कविता में समाविष्ट है।

कृष्ण जन्म, गोकुल प्रवेश, जन्मोत्सव से होते हुए सम्पूर्ण बाल्यकाल, कृष्ण का बाल रूप में वर्णन, बाल-चष्टाएँ, पारम्परिक बाल केलियाँ, माँ एवं शिशु का मनोवैज्ञानिक संबंध, शिशु की उत्तरोत्तर बढ़ती चेष्टाएँ बाल-लीला, माखन चोरी एंव शिशुत्व का अद्भुद समागम, सूर के काव्य को स्वयं में एक प्रतिमान बना देते हैं।

वियोग वात्सल्य - सूर के वात्सल्य-वर्णन का संयोग पक्ष जितना मार्मिक एवं अद्वितीय बन पड़ा है, वियोग पक्ष उतना ही हृदयद्रावक और अनूठा हो चला है। वियोग वात्सल्य की सबसे सुन्दर झलक श्रीकृष्ण के माथुरागमन के अवसर पर लक्षित होती है। इस प्रकार देखा जा सकता है कि वात्सल्य रस के अन्तर्गत सूरदास के विश्लेषकों ने लक्षित भी किया है, सूर बाल-लीला-वर्णन में अपना सानी नहीं रखते हैं। उन्होंने वात्सल्य के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस क्षेत्र में अन्य कवि उनकी सरणी में बैठने में असमर्थ हैं। तभी तो आचार्य शुक्ल को कहना पड़ा है – "वात्सल्य और श्रृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। इन क्षेत्रों का वे कोना-कोना झाँक आये।"

श्रृंगार - वात्सल्य की ही तरह सूरसागर में वर्णित श्रृंगार भावना का चित्रण भी अद्वितीय है। यह भी सूरदास ने पारम्परिक श्रृंगार भावनाओं -संयोग श्रृंगार एवं वियोग श्रृंगार - का चित्रण बेहद सघे हुए पारम्परिक एंव नवीन उद्भावनाओं वाले मौलिक रूप से किया है। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की विवेचना प्रस्तुत की जा सकती है।

श्रृंगार एवं वात्सल्य के क्षेत्र में सूर की समता को और कोई कवि नहीं पहुँचा है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार और किसी कवि में नहीं मिलता। वृन्दावन में कृष्ण और गोपियों का सम्पूर्ण जीवन क्रीड़ामय है और वह सम्पूर्ण क्रीड़ा संयोगपक्ष है। उसके अन्तर्गत विभागो की परिपूर्णता, कृष्ण और राधा के अंगप्रत्यंग की शोभा के अत्यन्त प्रचुर और चमत्कारपूर्ण वर्णन में तथा वृन्दावन के करील कुंजों, लताओं, हरेभरे कछारों, खिली हुई चाँदनी,कोकिल कूजन संचारियों का इतना बाहुल्य कहाँ मिलेगा। सारांश यह कि संयोगमुख के जितने प्रकार के क्रीड़ाविधान हो सकते हैं, वे सब सूर ने लाकर इकट्ठे कर दिए हैं। यहाँ तक कि कन्धे पर चढ़कर फिरने का राधा का आग्रह जो कुछ कम रसिक लोगों को अरूचिकर स्त्रैणता प्रतीत होगी।

सूर का संयोगवर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता। राधाकृष्ण के रंग रहस्य के इतने प्रकार के चित्र सामने आते हैं कि सूर का हृदय प्रेम की नाना उमंगों का अक्षय भण्डार प्रतीत होता है। प्रेमोदयकाल की विनोदवृत्ति और हृदयप्रेरित भावों की छाया चारों ओर छलक पड़ती है। कहने का सारांश यह कि प्रेम नाम की

मनोवृत्ति का जैसा ज्ञान सूरदास को था वैसा किसी अन्य कवि को नहीं। इनका सारा संयोगवर्णन लम्बी चौड़ी प्रेमचर्या है जिसमें आनन्दोल्लास के न जाने कितने स्वरूपों का विधान है। रासलीला, दानलीला, मानलीला इत्यादि सब उसी के अन्तर्गत हैं। सूर के संयोग वर्णन की बात हो चुकी, इनका विप्रलम्भ भी ऐसा ही विस्तृत और व्यापक है। वियोग की जितन अन्तर्दशाएँ हो सकती है, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यतः हो सकता है, वे उसके भीतर मौजूद हैं। आरम्भ वात्सलय रस के वियोगपक्ष से हुआ है। आगे चलकर गोपियों की वियोगदशा का जो धाराप्रवाह वर्णन है उसका तो कहना ही क्या है। न जाने कितनी मानसिक दशाओं का संचार उसके भीतर है। कौन गिना सकता है ? संयोग और वियोग दो अंग होने से श्रृंगार की व्यापकता बहुत अधिक है। इसी से वह रसराज कहलाता है। इस दृष्टि से यदि सूरसागर को हम रससागर कहें तो बेखट के कह सकते हैं।

विप्रलम्भ श्रृंगार का उत्कृष्टतम रूप सूरदास के काव्य में अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने विरह-दशा के अन्तर्गत सभी अन्तर्दशाओं का चित्रण किया है। इसमें गोपियों के निश्छल हृदय एवं सहज प्रेम आत्मानुभूति का विषय बन गया है, प्रिय का अतीन्द्रिय स्वरूप आत्मानुभव से ही ग्राह्य है। प्रिय और प्रिया का, भक्त और भगवान का, ज्ञाता और ज्ञेय का यह पूर्ण एकात्म्य ही प्रेम, भक्ति और ज्ञान की सिद्धावस्था है। इस प्रकार सूर का श्रृंगार वर्णन रम्य, मौलिक और संपूर्ण विश्व-साहित्य के लिए अद्भूत है।

प्रकृति - सूरदास के काव्य में प्रकृति की उपस्थिति अनिवार्य चरित्र के रूप में है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लक्षित करते हुए लिखा है, ''सूरदास जी का विहार स्थल जिस प्रकार घर की चाहरदीवारी के भीतर तक ही न रहकर यमुना के हरे-भरे कछारों, करील के कुंजों और वनस्थलियों तक फैला है, उसी प्रकार उनका विरह विर्णन भी 'बैरिन भइँ रतियाँ' और 'साँपिन, भई सेजिया' तक ही न रहकर प्रकृति के खुले क्षेत्र के बीच दूर-दूर तक पहुँचता है। मनुष्य के आदिम वन्य जीवन के परम्परागत मधुर संस्कार को उद्दीप्त करने वाले इन शब्दों में कितना माधुर्य है – 'एक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढौ, कतहूँ न श्याम लहौं।' ऋतुओं का आना-जाना उसी प्रकार लगा है। प्रकृति पर उनका रंग वैसा ही चढ़ता-उतरता दिखाई पड़ता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं की वस्तुएँ देख जैसे गोपियों के हृदय में मिलने की उत्कंठा उत्पन्न होती है वैसे ही कृष्ण के हृदय में क्यों नहीं उत्पन्न होती ? जान पड़ता है कि ये सब उधर जाती है नहीं, जिधर कृष्ण बसते हैं। अपनी अर्न्तदशा को ऋतु-सुलभ व्यापारों के बीच बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में देखना भावमग्न अन्तः करण की एक विशेषता है। इसके वर्णन में प्रस्तुत अप्रस्तुत का भेद मिट सा जाता है।" सूरदास के काव्य में प्रकृति आलम्बन एवं उड़पीन दोनों रूपों में विद्यमान रही है। संयोग के क्षणों में जो प्रकृति सुखदायिनी होती है, वियोग पक्ष में वही प्रकृति दुखदायिनी बनकर प्रकट होती है।

कला पक्ष:

भाषा - भाषा के रूप में महाकवि सूरदास ने ब्रजभाषा को अपनी साहित्य रचना का आश्रय बनाया। भाषा के सभी आंतरिक एवं बाह्यगुणों का उद्घाटन हमें सूरदास की कविता में दृष्टिगोचर

होता है। भाषा की भावात्मकता, लालित्य, गीतात्मकता एवं सहज प्रांजल प्रवाह का उत्कृष्टतम उदाहरण महाकवि सूरदास की भाषा है। सूरदास की कविता में पाठक को ब्रज भाषा के लगभग सभी गुण एवं रूप देखने को मिलते है। शब्दों के तत्सम रूप तद्भव रूप, अप्रस्तुत योजना के लिए मौलिक शब्द विन्यास, लोकोक्तियों एवं मुहावरे का प्रयोग, सहजता, उक्ति वैचित्रय, शब्द की तीनों शक्तियों-अमिधा, लक्षणा एवं व्यंजना - का उत्कृष्ट प्रयोग आदि कुछ सूरदास की काव्य-भाषा की मौलिक विशेषताएँ हैं। सूरदास जी ने जन-प्रचलित लोकभाषा को साहित्यिक क्षेत्र में अवतरित किया। फलस्वरूप उनकी भाषा में विभिन्न प्रकार के शब्द आ गए। सबसे अधिक शब्द उन्होंने संस्कृत से लिए। बोलचाल में संस्कृत शब्दों के विकृत रूप प्रयुक्त होते रहते हैं। सूरदास ने संस्कृत के इन तद्भव शब्दों की बहुलता है। इसके अतिरिक्त सूरदास ने अन्य प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों तथा अरबी-फारसी जैसी विदेशी भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार सूरदास द्वारा प्रयुक्त शब्द-समूह को निम्नांकित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

1. तत्सम, 2. तद्भव, 3. देशज या ग्रामीण शब्दावली, 4. प्रान्तीय भाषाओं के शब्द तथा 5. विदेशी शब्द।

सूरदास जी ने तत्सम शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक सिद्धान्त निरूपण, स्तोत्र रचना तथा अप्रस्तुत योजना के प्रसंगों में किया है। इसके अतिरिक्त सूर-साहित्य में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का ही मिलता है। सूरदास ने देशज शब्दों का भी प्रचुर परिमाण में प्रयोग किया है। कुछ देशज शब्द इस प्रकार हैं- बगदाइ, मोट, डहकावै, मॉड़ी, विगोवै आदि। सूर ने ब्रज भाषा के शब्द-भण्डार को समृद्ध करने के लिए गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, अवधी आदि प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। यथा -

(क) गुजराती - बियौ = दूसरा

'काके सरन जाऊं जदुनन्दन नाहिंन और वियौ।

(ख) राजस्थानी - पूरबली = पूर्वकालीन

'विभीषन को लंका दीन्ही पूरबली पहिचानि।'

(ग) पंजाबी - बिरियाँ = बेला, समय

'आवहु कान्ह सांझ की बिरियाँ '

(घ) अवधी - इहाँ - उहाँ = यहाँ - वहाँ

'हरि बिनु सुख नहिं न उहाँ '

सूर-काल में फारसी-अरबी अनेक भाषाओं के शब्द सामान्य हो गए थे। सूरदास ने ब्रज-भाषा को साहित्यिक प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए फारसी और अरबी शब्दों का स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग किया है किन्तु उन्होंने इन शब्दों के तत्सम रूप की सुरक्षा की चिन्ता नहीं की। यथा -

(अ) 'साँची सो लिखहार कहाबै'

(ब) 'हरि हौ ऐसा अमल कमायौ।'

(स) 'जनम साहिबी करत गयो।' आदि ऐसे पद हैं कि जिनमें कवि ने फारसी-अरबी शब्दों की भरमार कर दी है।

रस एवं छंद - जैसा की पहले कहा गया है कि वाल्सल्य (उसके दोनों रूप संयोग वात्सल्य एवं वियोग वात्सल्य) एवं श्रृंगार (दोनों रूप) दोनों ही रस-क्षेत्रों में सूरदास का काव्य अपना मौलिक स्वरूप प्रकट करता है, इसे 'रस-तत्व' के संबंध में भी समझा जा सकता है। अध्येताओं के अनुसार, ध्यातव्य है कि कविवर सूर ने अपने सृजन में जिन रसों की निबन्धना की है, उनमें वात्सल्य और श्रृंगार ही प्रमुख हैं। अन्य रस तो प्रसंगवश ही आ गये हैं। इसका प्रमुख कारण है कि सूर की दृष्टि जीवन की विविधता की ओर नहीं गई है। उनकी दृष्टि बाल-क्रीड़ा, प्रेम के रंग-रहस्य और उसकी अतृप्त वासना तक ही परिसीमित है। जहाँ तक वात्सलय और श्रृंगार का प्रश्न है, मैंने पीछे इसका विस्तृत वर्णन कर दिया है। अब शेष अन्य रसों पर दृष्टिपात कर लेना है, जो सूर-साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं।

कविवर सूर विनोदी प्रकृति के व्यक्ति हैं। कृष्ण की बाल-छवि एवं क्रिया-कलापों तथा राधा की सरल सामान्य उक्तियों में हास्य रस के सुन्दर परिपाक को देखा जा सकता है। नटवर नागर कृष्ण दही की चोरी के निमित्त किसी के घर में घुस जाते हैं ओर चोरी करते हुए ग्वालिन के द्वारा रंगे हाथ पकड़ जाते हैं। इनकार कर पाने की स्थिति न देखकर कृष्ण फौरन बात को घुमा देते हैं। उनका कथन हास्यास्पद है कि मैं अपना ही घर समझकर यहाँ आ गया थ। दही में चींटी देखकर उसे निकालने लगा। कृष्ण की इस प्रकार की चतुरतापूर्ण बातें सुनकर ग्वालिन के अधरों पर मुस्कान थिरक उठती है। प्रमाण के लिए उदाहरण दृष्टव्य है –

मैं जान्यौ यह मेरो घर है, ता धोखे में आयौ।
देखत ही गोरस में चींटी, काढ़न को करनायौ।।

इसी प्रकार संयोग और वियोग वर्णन में हास्यरस के अनेकानेक चित्र 'सूर-सागर' में विद्यमान हैं। 'भहरात झहरात दावानल आयौ' वाले पद में भयानक रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। दावानल-प्रसंग के अन्य पदों में करूण रस का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। 'प्रथमहिं देउँ गिरिहि बहाइ' वाले पद में रौद्ररस तथा 'आजु हौं हरिहि न सरल बहाऊँ' जैसे पदों में वीररस, 'नन्दहिं कहत जसोदा रानी' वाले पद में अद्भुत रस तथा 'को को न तरयो हरिनाम' या 'मेरो मन अनत कहाँ सुखपावै' जैसे पदों में भक्तिरस की व्यंजना देखी जा सकती है।

कविवर सूर एक रससिद्ध कवि हैं। वात्सल्य और श्रृंगार रस के वर्णन में तो उन्होंने अपना सानी नहीं छोड़ा है। साथ ही अन्य रसों का यथाक्रम प्रवेश भी न्यूनाधिक रूप में अपने सृजन में कराया है। इस प्रकार रस की बूँदा-बाँदी से 'सूरसागर' सराबोर हो गया है।

अलंकार - अत: अलंकारों का सम्यक् विवेचन हो जाने के पश्चात् अब हम आलोच्य कवि सूर के अलंकार-विधान को देखना चाहेंगे। वस्तुत: अलंकारों का सर्वोत्तम प्रयोग उनकी स्वाभाविकता है। भावों के उद्रेक में स्वत: आये हुए अलंकार ही उत्तम माने जाते हैं। अलंकारों का सायास प्रयोग अच्छा नहीं है। इससे कविता का महत्व घट जाता है। कविवर सूर को अलंकारों के प्रति कोई विशेष मोह नहीं दिखाई पड़ता है। फिर भी सृजन-काल में अगर कोई अलंकार स्वभावत: आ गया है तो उन्होंने उसका उपयोग कर लिया है। वैसे सौंदर्य-चित्रण में उन्होंने अलंकारों का प्रयोग कुछ अधिक ही किया है। वर्णन को प्रभावेत्पादक और हृदयग्राही बनाने के लिए सादृश्यमूलक अलंकार अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि कविवर सूर ने राधा-कृष्ण तथा गोपियों के रूप-सौंदर्य के वर्णन में रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अपह्नुति, समासोक्ति तथा दृष्टान्त आदि अलंकारों का प्रयोग बहुतायत से किया है।

रूपक अलंकार का प्रयोग करते हुए कवि ने कई स्थलों पर भावों में चमत्कार उत्पन्न किया है। एक उदाहरण दृष्टव्य है –

प्रीति कर दीन्ही गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगा कपट-कन पाछे करत बुरी।
मुरली मधुर चेंप काँपा करि, मोर चन्द्र फँदवारि।
बंक विलोकनि, लगौ लोभबस, सकी न पंख पसारि।
तरुत छाँ गये मधुवन कौ, बहुरि न कीन्ही सारि।
सूरदास प्रभु संग कलप तरू, उलटि न बैठी ारि।।

सादृश्यमूलक अंलकारों में उपमा का प्रमुख स्थान है। सूर ने कुछ पदों में परम्परागत उपमा का प्रयोग किया है और कुछ नवीन उपमाओं की उद्भावना भी की है। 'ज्यों जलहीन मीन तरुत त्यों व्याकुल प्रान हमारौ', 'उर भयो कुलिस समान', तथा 'लोचन चातक ज्यों हैं चातक' आदि पदों में उपमा के सुन्दर प्रयोग को देखा जा सकता है। इसी प्रकार 'जसुदा मदन गोपाल सोवावै', 'देखियत काजिन्दी अति कारी' तथा 'देखियत चहुँ दिसि तैं घनघोरे' आदि छन्दों में उत्प्रेक्षा की छटा दर्शनीय है। रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग कवि ने वहाँ पर किया है, जहाँ गुह्यांगों या श्रृंगारिक अवसर आया है। 'अद्भुत एक अनूपम बाग' वाला पद रूपकातिशयोक्ति का अच्छा उदाहरण है। इसी प्रकार 'सखी री चातक मोहि जियावत' तथा 'हमारै हृदय कुलिसहु जीत्यौ' वाले पदों में प्रतीक तथा 'नैना सावन भादौं जीते' एवं 'ऊधौ अब हम समुझि भई' जैसे पदों में व्यतिरेक की सुन्दर निदर्शना हुई है। 'चातक न होइ कोइ बिरहिन नारि' वाला पद अपह्नाति का अच्छा उदाहरण है। 'बिनु पावस-पावस करि राखी' वाले पद में विभावना तथा 'ऊधौ तुम हौ अति बड़भागी जैसे पदों में विशेषोक्ति की छटा दर्शनीय है। विरोध

मूलक अलंकारों में विभावना, विशेषोक्ति के साथ परिकर आदि अलंकारों की भी गणना होती है। इसमें साभिप्राय शोभा बढ़ाने-हेतु विशेषण का प्रयोग किया जाता है। 'सखी इन नैनति ते घन हारे' वाला पद परिकर अलंकार का अनुपम उदाहरण है।

6.5 सूरदास: आलोचना

महाकवि सूरदास का समग्र काव्य-जगत अत्यन्त कलात्मक एवं भावूपर्ण है। इसमें उनकी अनूठी उद्भावनाएँ हैं। संयोग श्रृंगार रस की तरह विप्रलम्भ श्रृंगार भी अत्यन्त विस्तृत, व्यापक एवं सर्वांग पूर्ण है। 'भ्रमरगीत सार' की भूमिका में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि ''वियोग की जितनी अन्तर्दशाएँ हो सकती है, जिनते ढंगों से उनका साहित्य में वर्णन हुआ है और सामान्यत: हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं।'' उनका विरह-वर्णन इतना गहन और व्यापक है कि वह देश-काल और पात्र-मुक्त बन गया है। वास्तव में, सूर के विरह-वर्णन में एक दर्द है, टीस है, कसक है और विह्वलता है। सूरदास के वात्सल्य-भाव के पदों की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्हें पढ़कर पाठक जीवन की नीरस और जटिल समस्याओं को विस्मृत कर उनमें तन्यम हो जाता है। सूर ने यदि वात्सल्य को अपने काव्य का विषय चुना तो वात्सलय ने भी सूर को ही अपना एक मात्र आश्रय बनाया है। उनके वात्सल्य रस के आलम्बन है – बालकृष्ण। उनका बाल मनोहर स्वरूप एवं बाल सुलभ चेष्टाएँ-उद्दीपन हैं, आश्रय हैं – यशोदा और नन्द। इस क्षेत्र में सूर ने इतने भावों, अनुभवों और संचारी भावों की योजना की है कि वे साहित्य-शास्त्र को भी पीछे छोड़ गए हैं। आचार्य शुक्ल का मत है कि 'जिस क्षेत्र को सूर ने चुना है, उस पर उनका अधिकार अपरिमित है, उसके वे सम्राट है।''

सामान्य रूप से देखा जाए तो वात्सलय रस के दो रूप है- संयोग वात्सलय और वियोग वात्सल्य। सूर की अनुभूतियाँ अत्यधिक सहज, सरस, सुकुमार और सत्य के निकट हैं। उन्होंने अपने काव्य में बाल सुलभ हृदय की चपलता, स्पर्धा, ईर्ष्या आदि सभी बालोचित गुण, क्रिया-व्यापार और सामान्य मातृहृदय के वात्सल्यमय स्नेह की समस्त अवस्थाओं का नैसर्गिक सौन्दर्य प्रस्तुत किया है। उनके वात्सलय रस युक्त पदों में एक माता के हृदय का मधुर स्पन्दन है। सूर के वात्सल्य वर्णन पर रीझकर ही श्री वियोगी हरि ने उचित ही कहा है कि ''सूर का दूसरा नाम वात्सल्य है और वात्सलय का दूसरा नाम है सूर। दोनों का अन्योन्याश्रय संबंध है।'' सूरदास के भाव पक्ष का विश्लेषण करते हुए तथा उन्हें मधुर एवं कोमल भावनओं के चतुर चितेरे, रस के आक्षय स्रोत, आध्यात्मिक प्रेम के प्रवीण पारखी बताते हुए डा. सावित्री शुक्ला का मत है कि ''सूरदास भारतीय संस्कृति का सहज रूप से कलात्मक उद्घाटन करते हुए आज भी सरसता, अभिनवता, सुचारूता और मनोवैज्ञानिकता को रसज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।''

श्री कृष्ण के अनन्य भक्त सूर ने भगवत् अनुग्रह की प्राप्ति हेतु हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति जिस रूप में की है, वह भक्ति का रूप है। सूर के काव्य में प्रत्यक्ष ओर परोक्ष रूप में भक्ति के महत्व एवं उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन दृष्टिगत होता है। उनके विनय संबंधी पदों में भक्ति योग के शरणगति-सिद्धान्त की षड् विधियों के अलावा वैष्णव सम्प्रदाय की दैन्य, मान-

मर्षता, भय दर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य और विचारण सप्त भूमिकाओं का निदर्शन हुआ है। विनय के पदों में अनन्यता, आत्मनिवेदन और वैराग्य-भावना के साथ-साथ उपालम्भ, साग्रह निवेदन तथा उद्बोधन के भावों का भी समावेश है। सूर की भक्ति सख्य भाव की है। अत: उन्होंने एक सखा के नाते कृष्ण के अन्तरंग जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों को अपना स्वर दिया है। 'सूरसागर' में सख्य-भक्ति का दो रूपों में प्रस्फुटन हुआ है। पहला रूप है-ग्वाल-बालों के साथ कृष्ण का सखारूप में विचरण करना और दूसरा रूप है-ब्रजांगनाओं का श्रीकृष्ण के प्रति सहज प्रेम-भाव। सूरदास की काव्य-कला के दो पक्ष हैं- अनुभूति पक्ष और अभिव्यक्ति पक्ष। अनुभूति पक्ष तो सूर-काव्य का प्राण है। अनुभूति पक्ष ही उनकी सफलता है, सिद्धि है और सुख्याति है। उनकी अनुभूतियाँ अत्यन्त सहज, सरल, सुकुमार और सत्य के निकट हैं। श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के जिन मौलिक विषयों ने उनकी काव्य-कला का श्रृंगार किया है, उन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-बाल-लीला, राधा-कृष्ण तथा गोपी-लीला और भ्रमरगीत। सूरदास एक भाषानिष्ठ कलाकार थे। जिस भाषा को उन्होंने अपने काव्य का माध्यम बनाया, वह उस क्षेत्र की जनभाषा थी। पारसौली, गोबर्द्धन, मथुरा तीनों ही ब्रजभाषा क्षेत्रों में स्थित है। ब्रजभाषा को ही सूर ने अपनी प्रतिभा एवं कला के द्वारा सरस, संगीतमय, सुमधुर एवं सम्पन्न बना दिया। सूरदास जी के समय से पूर्व ब्रजभाषा का प्रयोग लोकगीतों में तो अवश्य हुआ होगा, किन्तु उनसे पहले की ब्रजभाषा में लिखी हुई कोई महत्वपूर्ण साहित्यिक रचना उपलब्ध नहीं होती। इससे प्रकट होता है कि सर्वप्रथम सूरदासजी ने ही ब्रजभाषा को साहित्यिक महत्व प्रदान किया। आचार्य शुक्ल ने स्पष्ट शब्दों में कहा है-''इन पदों के सम्बन्ध में सबसे पहली बात ध्यान देने योग्य है कि चलती हुई ब्रजभाषा में सबसे पहली साहित्यिक रचना होने पर भी ये इतने सुडौल और परिमार्जित हैं। यह रचना प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे होने वाले कवियों की उक्तियाँ सूर की जूठन-सी जान पड़ती है।''

6.6 सूरदास : पाठ एवं व्याख्या

1. जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलरावै मल्हावै जोई सोई कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहिं बेगि सों आवै ताहे कौं कान्ह बुलावै।।
के बहुँ पलक हरि मूंद लेत हैं, अधर कबहुँ फटकावै।
सोवत जानि मौन है बैठी कर-कर सैन बतावै।।
हि अन्तर अकुला उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनि पावैं।।

संदर्भ – प्रस्तुत पद सूर द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है।

प्रसंग – माता यशोदा घर के काम-काज निबटाने हेतु बालक श्री कृष्ण को पालने में झूला, झूलाकर सुलाने का प्रयास कर रही है। बालक माता का सानिध्य पाने के लिए सोने और जागने का बहाना करता है। इस पद में माता का पुत्र के प्रति और पुत्र का माता के प्रति स्नेह भाव देखते ही बनता है।

व्याख्या – सूरदास जी कहते हैं कि माता यशोदा कृष्ण को पालने में झूला, झूला कर सुला रही है इस क्रम में कभी पालने को हिलाती है, कभी बच्चे को पुचकारती है, हवा करती है साथ ही लोरी गाती हुयी नींद से आग्रह करती है कि तुझे कोई साधारण बालक नहीं अपितु मेरा कान्हा तुम्हें बुला रहा है अत: जल्दी से आकर मेरे बालक को क्यों नहीं सुला देती। बाल सुलभ क्रीड़ा में बाल भगवान कृष्ण कभी अपनी पलक बंद कर लेते हैं, और कभी अपनी पलकों को अधखुला सा कर लेते हैं। माता यशोदा सोचती हैं कि बालक को नींद आ गयी है तब पालना हिलाना व गाना बन्द कर देती है तब-तब बालक इशारा कर-करके बताता है कि अभी मैं सोया नहीं हूँ। इस प्रकार की बाल लीला देखकर माता का हृदय ममत्व भाव से भर उठता है, कवि सूरदास जी कहते हैं कि यह वह सुख है जो माता यशोदा प्राप्त कर रही है जैसा अमर मुनियों को भी दुर्लभ है।

शब्दार्थ – दुलराई-प्यार करना, निंदरिया-नींद, सोवत-सोता, सैन-इसारा, अन्तर-हदय, नंद यामिनि-नंद की पत्नी (यशोदा)

विशेष –

1. बाल सुलभ चेष्टाओं का सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है।
2. वात्सल्य रस एवं माधुर्य गुण का समावेश हुआ है।
3. माता के हृदय को ममत्व भाव का अगाद्य सुख प्राप्ति हुई है।
4. ब्रजभाषा में तुकान्त शैली का लयात्मक क्रम है।

2. मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरै मुख लपटायौ।।
देखि तु हि सींके पर भाजन ऊँचैं धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने, छींका केहि विधि पायौ।।
मुख दधि पौंछि, बुद्धि क कीन्ही, दोना पीठि दुरायौ।
ारि साँटि, मुसुकाय जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।।
बाल-विनोद मोद मन मोह्यो, भक्ति-प्रताप दिखायौ।
सूरदास जसुमत को यह सुख, सिव बिरंचि नहिं पायौ।।

शब्दार्थ – ख्याल-खेलना, भाजन-बर्तन, नान्हे-नन्हें, छोटे, दुरायो-छिपना, सींके-छींका, कर-हाथ, साँटि-छड़ी, सिव-शिव भगवान, बिरंचि-ब्रह्मा।

प्रसंग – श्री कृष्ण माखन चोटी करते रंगें हाथों पकड़े गये, तब ग्वालिन उलाहना लेकर माता यशोदा के पास जाती है, माता यशोदा रोज-रोज शिकायत से तंग आकर बालक कृष्ण को मारने के लिए छड़ी उठाती है, बालक किस चतुरता से माँ की मार से बचने के लिए अपनी सफाई पेश करता है।

व्याख्या - सूरदास जी कहते हैं कि श्री कृष्ण अत्यन्त दुलार भरी वाणी में अपनी माता यशोदा से अनुनय विनय करने लगे कि माता मैंने मक्खन की चोरी नहीं की और न ही मैंने मक्खन खाया। मेरे साथ सखा खेलते हैं उनमें बड़े लड़के मक्खन की चोरी करते हैं और मुझ जैसे छोटे बच्चे के मुख पर पकड़े जाने के भय से लिपटा देते हैं। अब तू ही बता कि छोटी बाँहों वाला बच्चा हूँ, मैं इतने ऊँचे पर लटके छींके के बर्तन तक कैसे पहुँच सकता हूँ, प्रयास करने पर भी छींके तक नहीं पहुँच सकता। इतनी सफाई देने पर भी जब माँ का क्रोध शान्त नहीं हुआ तब कृष्ण का ध्यान अपनी शारीरिक स्थिति पर गया तब बड़ी चतुरता से उन्होंने शीघ्रता से मुँह पर लिपटा मक्खन पौंछा और हाथ में पकड़ा हुआ मक्खन से भरा दोना पीठ के पीछे छिपा दिया। कृष्ण के इस बाल सुलभ भेले नटखट रूप का कौतुक देख कर यशोदा हृदय में पुत्र के प्रति स्नेह से भर गयी, सारा क्रोध विस्तृत कर उन्होंने कृष्ण को गले लगा लिया। कृष्ण ने बाल सुलभ क्रीड़ाओं के आनन्द से माँ का मन मोह लिया और भक्ति के प्रताप का यशोदा को दर्शन करा दिए। अन्त में सूर कहते हैं कि बाल-लीला का जो सुख यशोदा को प्राप्त हुआ वह वात्सलय सुख ब्रह्मा और शिव भी नहीं पा सके। यह सुख तो अवर्णनीय और हृदय से अनुभूत करने वाला है।

विशेष –

1. मेया मोरी मैं.....में अनुप्रास अलंकार है।
2. इस पद में बाल लीला के मक्खन चोरी प्रसंग का सहृदयता एवं विद्वग्धता से बिंब या भव-चित्र उपस्थित हुआ है।
3. इस पद में बालकों की अन्तवृत्तियों का प्रकृत स्वभाव निरूपित हुआ है।
4. इस पद में लाक-चेतना का संकेत हुआ है।
5. ब्रजभाषा की लोक संगीत परम्परा का प्रभाव भी इस पद में देखा जा सकता है।

3. ऊधो, मन नाहीं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधै ईस।।
देह अति शिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिन सीस।
स्वासां अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोरि-बरीस।।
तुम तो सखा स्याम सुन्दर के, सकत जोग के ईस।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुखौ मन जगदीश।।

शब्दार्थ – ऊधौ-उध्रव (कृष्ण का मित्र), हुतो, जो पास था, स्याम-श्री कृश्ण, आरौ-आराधना, सीस-सिर, स्वासौ-श्वास, जीवहिं-जी रही हैं सखा-मित्र, रसिकन-प्रेम पूर्ण, बलियाँ-बातें।

संदर्भ- प्रस्तुत पद सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' से लिया गया है।

प्रसंग – उद्धव निर्गुण ज्ञान के प्रसाद हेतु ब्रज में आता है और गोपियों से श्री कृष्ण के निर्गुण रूप की अराधना की बात कहता है। उसका उत्तर गोपियाँ इस पद में देती है। साथ ही अपने लौकिक प्रेम की स्थापना करती है। उद्धव के निर्गुण ज्ञान को ग्रहण न करने की विवशता भी दर्शाती हैं।

व्याख्या – सूरदास गोपियों के माध्यम से कहते हैं कि हे उद्धव, हमारे पास तो केवल एक ही मन था, हमारे पास दस-बीस मन होते तो एक मन हम तुम्हें भी देती, निराश नहीं करती किन्तु हमारी इस विवशता पर भी आप ध्यान देवें। हमारे पास जो एक मन था वो तो श्री कृष्ण अपने साथ मथुरा ले गये, फिर निर्गुण कृष्ण की अराधना बिना मन हम कैसे करें। श्री कृष्ण के लौकिक प्रेम के कारण हम कितनी कमजोर हो गयी हैं मानो बिना सूर के हमारे पास शरीर शेष रह गया है। इस शरीर में श्वास अटकी हैं वो भी उनके आने की आशा से, उनके आने की बात तो हम करोड़ों वर्षों तक करती रहेंगी। हे उद्धव तुम तो श्री कृष्ण के मित्र हो उनसे तुम्हारा लौकिक सम्बन्ध भी है, तुम्हारी ये कठोर बातें हमारे पल्ले नहीं पड़ेगी। अन्त में सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों को श्री कृष्ण के लौकिक प्रेम की बातें करने से ही हमारे द्वारा हमारे इष्ट की सच्ची अराधना है।

विशेष –

1. इस पद में निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय दर्शायी गयी है।
2. वैष्णव परम्परा की सगुण भक्ति में लीला वर्णन में आनन्द का जो स्रोत फूटता है – वह जनता के मन को स्पर्श करता है। इसी स्थिति के कारण सगुण भक्ति ही श्रेष्ठ है।
3. लौकिक प्रेम के प्रति पूर्णशक्ति का भाव चित्रित हुआ है।
4. बोलचाल की ब्रजभाषा में शब्दों का लयात्मक क्रम मिलता है।

4. लरिकाई कौ प्रेम, कहौ अलि, कैसे, करिकै छूटत?
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब, अन्तरगति यों लूटत।।
चंचल चाल मनोहर चितवन, वह मुसुकाति मंद धुन गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को, वह विनोद गृह नतें आवत।।
चरनकमल की सपथ करति, हौं, यह संदेश मोहि विष सम लागत
सूरदास मोहि निमिष न बिसरत, मोहन मूरति सोवत जागत

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद वात्सल्य रस के सम्राट महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।
प्रसंग - गोपियाँ बाल साहचर्य-संभूत प्रेम की एकनिष्ठता का मार्मिक वर्णन कर रही हैं।
व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि, हे उद्धव! यह बताओ कि बाल साहचर्य से उत्पन्न प्रेम किस प्रकार छूट सकता है। हम ब्रज के स्वामी कृष्ण की लीलाओं का कहाँ तक वर्णन करें ? उनकी लीलाओं का ध्यान हमारे मन को सहज रूप से उनकी ओर आकर्षित करता रहता है। अर्थात् उनका स्मरण आते ही हम अपनी सुध-बुध खो बैठती हैं। उनकी वह चंचलता से युक्त चाल, वह मनोहर दृष्टि, वह मधुर मुस्कान और धीमे-धीमे स्वर में गाना हमें कभी भी नहीं भूलता। उनका वह नटवर का वेश धारण करके विनोद करते हुए वन से घर को लौटना-हमारी स्मृति में सदैव छाया रहता है।
हम श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की सौगन्ध खाकर करती हैं कि उनका यह संदेश (उन्हें भूलकर ब्रह्म की आराधना करने का संदेश) हमें विष के समान घातक लगता है। हमें तो सोते और जागते हुए कृष्ण की वह मोहक मूरति एक पल के लिए भी नहीं भूलती है।
शब्दार्थ - लरिकाई-बचपन। अन्तरगति-मन, चित्त की वृत्ति।
निमिष-पलभर को भी। बिसरत-भूलना।
विशेष -

1. यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि बचपन के संस्कार अमिट रहते हैं।
2. 'लरिकाई कौ प्रेम' में एक अद्भुत मार्मिकता और हृदय को छू लेने की क्षमता है।
3. 'स्मृति' संचारी भाव का चित्रण हैं
4. विप्रलंभ श्रृंगार रस है।
5. अनुप्रास, उपमा व रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

5. निरगुन कौन देस को बासी ?
मधुकर! हंसी समुझाय, सौंह दै बूझति सांच , न हांसी ।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।।
कैसो बरन, भेस है कैसो, केहि रस में अभिलासी।।

पवेगो पुनि कियो आपनो, जो रे कहैगो गाँसी ।
सुनत मौन रह्यो ठग्यो सौ, सूर सबै मति नासी।।

संदर्भ - प्रस्तुत पद सगुण उपासक, कृष्ण के अनन्य भक्त महाकवि सूरदास द्वारा रचित 'भ्रमर गीत सार' में से लिया गया है।

प्रसंग - प्रस्तुत पद्यांश में सूरदास ने गोपियों के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म की उपेक्षा और सगुण ब्रह्म की स्थापना का प्रयास किया है।

व्याख्या – गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म पर व्यंग्य करती हुई उद्धव से पूछती हैं कि, हे उद्धव! तुम्हारा निर्गुण किस देश का रहने वाला है। (हम तो अपने सगुण कृष्ण का निवास जानती है) हे मधुकर! हमें हँसकर अर्थात प्रसन्न मन से यह सब समझा दो। हम तुम्हें सौगंध देकर सच-सच पूछ रही हैं। तुम्हारे साथ मजाक नहीं कर रही हैं। अब यह बताओं कि तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म का पिता कौन है, उनकी माँ कौन हैं, कौन उनकी पत्नी है और उनकी सेवा करने वाली दासी कौन है? उसका रंग और वेश-भूषा कैसी है और उसे कौन सा रस अच्छा लगता है ?

फिर गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से कहती हैं कि - हे भ्रमर! यदि तूने कोई कपट की बात कही, झूठ कहा तो तुझे अपनी करनी का फल भुगतना पड़ेगा। गोपियों के मुख से निकली इन बातों को सुनकर उद्धव मौन हो गए और ठगे से रह गए। ऐसा लग रहा था कि जैसे उनकी सारी बुद्धि ही नष्ट हो गई। अर्थात् वह किंकर्त्तवविमूढ़ हो कुछ भी उत्तर नहीं दे सके।

शब्दार्थ - सौंह-सौगन्ध, कसम। बरन-वर्ण, रंग। गाँसी-गाँस सा कपट की बात। ठग्यो सौ-ठगा हुआ सा, स्तम्भित। नासी-नष्ट हो गई।

विशेष -

1. प्रस्तुत पद में व्यंग्यात्मक शेली में निर्गुण ब्रह्म का खण्डन किया गया है।
2. गोपियों का वाग्वैदग्ध दृष्टव्य है।
3. उपनिषदों ने जिस ब्रह्म के संबंध में नेति-नेति कहा है, उस ब्रह्म का निरूपण बेचारे उद्धव कैसे कर पाते!

6. **अंखियाँ हरि-दरसन की भूखी।**
कैसे रहें रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी।
अवधि गनत कटक मग जोवत तब एती नहीं झूखी।
अब न जोग-संदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी।।

बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता है सूखी।।

संदर्भ - प्रस्तुत पद रागानुराग भक्ति के उपासक, कृष्ण प्रेम व सौन्दर्य के चितेरे महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - गोपियों की कृष्ण के प्रति प्रेम की अनन्यता एवं एकनिष्ठता का महाकवि सूर ने हृदयस्पर्शी चित्रण किया है।

व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि हमारे ये नेत्र सदैव कृष्ण दर्शन के लिए लालायित रहते हैं। ये आँखे कृष्ण के रूप और उनके प्रेम रस में पगी हुई हैं, उनमें ही पूर्णतः अनुरक्त है। फिर तुम्हारे नीरस योग की बातें सुनकर ये कैसे धैर्य धारण कर सकती हैं? जब ये आँखे कृष्ण के लौटकर अपने की अवधि का एक-एक दिन गिनती हुई टकटकी बाँधे मार्ग की ओर देखा करती थीं, उस समय भी इतनी संतप्त नहीं हुई थी। परन्तु अब तुम्हारे इन योग के संदेशों को सुनकर व्याकुल और दुःखी हो उठी हैं। हमारी तुमसे केवल यही प्रार्थना है कि हमें कृष्ण के उस मुख के एक बार दर्शन करा दो, जिस मुख से वह पत्ते के दोने में दूध दुहकर पान किया करते थे। तुम हमें योग का उपदेश देकर वैसा ही असंभव कार्य करने का प्रयत्न कर रहे हो, जैसे कोई सूखी हुई नदी की बालू में हठपूर्वक नाव चलाने का प्रयत्न करे। अर्थात कृष्ण-प्रेम में अनुरक्त हमारे हृदय पर तुम्हारे योग का प्रभाव पड़ना असंभव है।

शब्दार्थ - भूखी-व्याकुल। रूपरस राची-रूप के रस में पगी हुई। गनत-गिनते हुए। झूखी-संतप्त, दुखी। बारक-एक बार। दुहि-दुहकर। पय-दूध। पतूखी-पत्ते का दोना। सिकत-रेत, बालू।

विशेष -

1. वल्लभ सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय विचारधारा का प्रभाव है।
2. रागानुराग भक्ति में उपास्य के रूप और रस की प्रधानता रहती है।
3. सूखी नदी में नाव चलाने का प्रयत्न करने के लौकिक व्यवहार के उदाहरण द्वारा निर्गुण ब्रह्म का निराकरण और संभाव्यता प्रदर्शित की गई है।
4. बारक.....पतूखी में स्मरण अलंकार,
   सूर.....सूखी में निदर्शना अलंकार
5. 'ये सरिता है सूखी' में रूपकातिश्योक्ति अलंकार है।

7. **हमारे हरि हारिल की लकरी**
मन-बच-क्रम नंद नंदन सों, उर यह दृढ़ करि पकरी।।
जागत, सोवत, सपने, सौंतुख, कान्ह-कान्ह जकरी।
सुनतहि जोग लगत ऐसौ अलि! ज्यों करूई ककरी।।
सोई व्याधि हमें लै आए, देखी, सुनी न करी।
यह तौ सूर तिन्हें लै दीजै, जिनके मन चकरी।।

संदर्भ - प्रस्तुत पद महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य, अष्टछाप के प्रमुख कवि, दिव्य दृष्टि संपन्न महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - सूरदास ने कृष्ण के प्रति गोपियों के एकनिष्ठ व दृढ़ प्रेम का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या - गोपियाँ उद्धव से कहती है कि कृष्ण तो हमारे लिए हारिल पक्षी की लकड़ी के समान बन गए हैं। अर्थात् जिस प्रकार हारिल पक्षी, चाहे किसी भी स्थिति में हो, वह सदैव अपने पंजों में लकड़ी को पकड़े रहता है। उसी प्रकार हम भी निरन्तर कृष्ण का ही ध्यान करती रहती हैं। हमने मन, वचन और कर्म से नन्द नन्दन रूपी लकड़ी को, अर्थात् कृष्ण के रूप और उसकी स्मृति को अपने मन द्वारा कसकर पकड़ लिया है। अब उसे हमसे कोई नहीं छुड़ा सकता। हमारा मन जागते, सोते, स्वप्न या प्रत्यक्ष में, चाहे किसी भी दशा में क्यों न हो, सदैव 'कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाये रहता है, उन्हीं का स्मरण करता रहता है।

हे उद्धव! तुम्हारी योग की बातें सुनते ही हमें ऐसा लगता है, मानो कड़वी ककड़ी खा ली हो। अर्थात् योग की बातें हमें नितान्त अरूचिकर लगती हैं। तुम हमारे लिए योग रूपी ऐसा बीमारी ले आए हो, जिसे हमने न कभी देखा, न सुना और न कभी भुगता ही है। इसलिए तुम अपनी इस बीमारी को तो उन लोगों को जाकर दो, जिनके मन चकई के समान सदैव चंचल रहते हैं। योग का उपदेश तो अस्थिर मन वालों को दिया जाता है, जबकि हमारे मन तो पहले से ही कृष्ण प्रेम में स्थिर हैं।

शब्दार्थ - हारिल की लकरी-एक पक्षी, जो अपने पंजों में सदैव कोई-न-कोई लकड़ी का टुकड़ा या तिना दृढ़ता से पकड़े रहता है। क्रम-कर्म। सौंतुख-प्रत्यक्ष। जक-रट,धुन। करूई-कडवी। ककरी-ककड़ी। व्याधि-बीमारी। चकरी-चंचल, चकई के समान सदैव अस्थिर रहने वाला।

विशेष -

1. यहाँ निर्गुण के उपदेश को 'व्याधि' कहकर उसकी अवहेलना की गई हैं
2. विरह की प्रलापावस्था का चित्रण हैं
3. ब्रजभाषा का माधुर्य है।
4. सुनतहि.....ककरी में उपमालंकार, हारिल की लकरी में रूपक अलंकार है।

8. अति मलीन वृषभानु कुमारी
हरि-श्रमजल अंतर-तनु भीगो, ता लालच न धुआवति सारी।
अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति, ज्यों हारे थकित जुआरी।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।
हरि-संदेस सुनि सहज मृतक भई, क बिरहिनि दूजे अलि जारी।
सूर स्याम बिनु यों जीवति है, ब्रजबनिता सब स्याम दुलारी।

संदर्भ - प्रस्तुत पद हिंदी साहित्याकाश के सूर्य, भगवान कृष्ण की माधुर्यमयी लीलाओं के चितेरे महाकवि सूरदास द्वारा रचित है।

प्रसंग - कवि ने कृष्ण विरह में सन्तप्त राधा की अत्यन्तज दीन-हीन दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती है कि वृषभानु कुमारी राधा कृष्ण के विरह में अत्यन्त मलीन रहने लगी हैं। यह अपने वस्त्रों को साफ नहीं करतीं, मैली साड़ी पहने रहती है। इसका कारण है कि कृष्ण के साथ केलि-क्रीड़ा करते समय प्रेमावेश के कारण कृष्ण के शरीर से निकले हुए पसीने से राधा का सर्वांग और साड़ी भीग गई थी। इसी लालच के कारण वह उस साड़ी को नहीं धुलवाती। वह सदैव मुख नीचा किए हुए उन्हीं पूर्व मधुर स्मृतियों में खोई रहती है, कभी मुख उठाकर ऊपर नहीं देखती। उसकी दशा उस जुआरी के समान हो गई है, जो जुए में अपनी सारी पूँजी हार गया हो और नीचा मुख किए उदास बैठा हो।

उसके बाल बिखरे रहते हैं और मुख कुम्हलाया रहता है। उसकी दशा उस कमलिनी के समान निष्प्रभ और दयनीय हो उठी है, जिस पर पाला पड़ गया हो। वह एक तो पहले ही कृष्ण की विहिरणी बनी हुई थी, उस पर भौंरा बार-बार उसके पास आकर अपने रूप और गुण-सादृश्य द्वारा कृष्ण का स्मरण कराकर उसे व्यथित करता रहता है। एक तो उसका यह दुःख ही

असहनीय था, ऊपर से उद्धव द्वारा लाए गए संदेश को सुनकर तो वह मृतप्राय हो गई है। ऐसी विषम स्थिति उस अकेली राधा की ही नहीं है, कृष्ण की दुलारी सभी ब्रजवनिताओं की भी ऐसी ही स्थिति है।

शब्दार्थ - मलीन-मैली, उदास। हरि श्रमजल-कृष्ण के साथ की गई प्रेम-क्रीड़ओं के समय शरीर से निकला हुआ पसीना। गथ-पूँजी। चिहुर-केश। बदन-मुख। नलिनी-कमलिनी। हिमकर-ओस।

विशेष -

1. विरहिणी राधा की स्थिति का मार्मिक चित्रण किया गया है।
2. विरह की अन्तिम अवस्था 'मरण' का चित्रण है।
3. उपमा, उत्प्रेक्षा अलंकारों की छटा दर्शनीय है।

(एम0ए0एच0 ी-01
प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य- 2, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा-से साभार)

6.7 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- महाकवि सूरदास के जीवन एवं उनकी कृतियों से परिचित हो चुके होंगे।
- महाकवि सूर के जन्म स्थान, उनकी जन्म तिथि तथा उनकी रचनाओं की प्रमाणिकता के विवादों एवं सर्वमान्य तथ्यों से परिचित हो चुके होंगे।
- महाकवि सूरदास की रस प्रवाहिनी काव्य कला का ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे।
- महाकवि सूरदास के ललित पदों का आनंद प्राप्त कर चुके होंगे।

6.8 शब्दावली

पतितन	-	पापी
निदारूण	-	कष्टकारी
अन्त:साक्ष्य	-	भीतर के प्रमाण
बड़भागी	-	भाग्यशाली
उत्तरकालीन	-	बाद के समय की
जन्मांध	-	जन्म से अन्धा

स्कंध	-	अध्याय
द्वादश	-	बारह
शात्रज्ञ	-	शास्त्र जानने वाला, विद्वान

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) अति लघु उत्तरीय प्रश्न

i. संवत् 1535
ii. सूरसागर
iii. सूरसागर, सूर सारावली, साहित्यलहरी

(ख) सही उत्तर चुनिए

i. सही
ii. सही
iii. गलत

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संचयिता हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 222
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली, खण्ड 01, पृष्ठ 257
3. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 9
4. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 105
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली, खण्ड 1, पृष्ठ 259
6. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 10
7. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 41-42
8. अंकुर, ए0 अजी़ज, कविवर सूर सृष्टि और दृष्टि, पृष्ठ 15-16
9. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 61
10. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 61
11. डा. गोवर्द्धन नाथ शुक्ल, (सम्पा), पृष्ठ 22
12. डा. हरवंश लाल शर्मा, पृष्ठ 83
13. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, पृष्ठ 84
14. अंकुर, ए. अजी़ज, कविवर सूर : सृष्टि और दृष्टि ,पृष्ठ 19-20
15. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास. पृष्ठ-109
16. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-1 ,पृष्ठ /286
17. उपरोक्त ,पृष्ठ 288

18. अंकुर, ए. अजीज़, कविवर सूर: सृष्टि और दृष्टि
19. उपरोक्त, पृष्ठ 26
20. उपरोक्त,पृष्ठ 27
21. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-1,पृष्ठ 295-296
22. उपरोक्त ,पृष्ठ 300
23. ग्रंथावली-1, पृष्ठ 301

6.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिंदी साहित्य का इतिहास एवं सूरदास काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस।
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका एवं सूर-साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. वाजपेयी, नंद दुलारे, सूरदास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा, ब्रजेश्वर, सूरदास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

(क) महाकवि सूरदास का सम्पूर्ण जीवन परिचय देते हुए उनकी काव्य कृतियों की प्रमाणिकता का विश्लेषण कीजिए।

(ख) 'महाकवि सूरदास हिंदी भक्ति कविता के सूर्य है' इस संबंध में अपना समालोचनात्मक दृष्टिकोण प्रतिपादित कीजिए।

इकाई 7 जायसी-जीवन एवं साहित्यालोचना

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 जायसी का परिचय
7.3.1 सामान्य सूचनाएँ
7.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व
7.3.3 रचनाएँ
7.4 सूफ़ी मत एवं निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा
7.4.1 सूफी मत का उद्भव और विकास
7.4.2 निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा का उद्भव और विकास
7.4.3 निर्गुण भक्ति की प्रेममार्गी शाखा से जुड़ी रचनाएँ
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.8 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले आप हिन्दी-साहित्य के इतिहास में वर्णित काल-विभाजन और नामकरण तथा भक्ति-काल के उद्भव और विकास से परिचित हो चुके हैं। यहाँ दी गई पाठ-सामग्री को पढ़कर आप मलिक मुहम्मद जायसी के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं के साथ-साथ प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य और सूफ़ी मत तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। भक्ति-काल में निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य का विकास, लौकिक प्रेमगाथाओं की सुदीर्घ परम्परा पर आधारित है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) की रचनाओं में मिलने वाली भक्ति की प्रवृत्ति को मुख्यतः दो धाराओं में वर्गीकृत किया जाता है- सगुण और निर्गुण। इनमें पारस्परिक भेद का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार ब्रह्म के स्वरुप की धारणा में पाया जाने वाला मतान्तर है। सगुण धारा के अनुसार ब्रह्म निर्गुण निराकार न होकर सगुण साकार है तो अन्य के अनुसार निर्गुण निराकार। कहना न होगा कि इन दोनों धारणाओं के निश्चित सामाजिक और राजनैतिक प्रभावों की ऐसी श्रंखला है जो सामाजिक परिवर्तन की धारा को दिशा-गति देने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रही है। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र के विस्तार और विविधता की दृष्टि से इसमें सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक और सांसकृतिक परिवर्तन की प्रस्तावना करने वाली किसी भी विचार-धारा में अनिवार्य रुप से इतना लचीलापन होना ही था जितना भक्ति में है। यह मात्र संयोग नहीं कि भक्ति-संसार के दिक्पालों में कबीर, जायसी, सूर और तुलसी जैसे विलक्षण सृजनात्मक बोध के महान रचनाकार एक ही मंच पर आ खड़े हुए हैं।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत अध्ययन के उपरान्त आप –

- मलिक मुहम्मद जायसी के संक्षिप्त जीवन परिचय को जान सकेंगे।
- भक्ति की निर्गुण धारा के अन्तर्गत प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- सूफ़ी मत का संक्षिप्त परिचय जान सकेंगे।
- प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य और सूफ़ी मत के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
- हिन्दी-साहित्य की प्रेमगाथा परम्परा का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- हिन्दी-साहित्य की प्रेमगाथा परम्परा में पद्मावत और जायसी को समझ सकेंगे।
- जायसी-साहित्य के प्रधान आलोचकों के अभिमत से परिचित हो सकेंगे।

7.3 जायसी का परिचय

7.3.1 परिचय

पद्मावत के रचयिता मलिक मुहम्मद वर्त्तमान उत्तरप्रदेश में अमेठी के पास जायस के रहने वाले थे, इसी से इन्हें जायसी के नाम से जाना जाता है। इनकी रचनाओं में मिले साक्ष्यों के आधार पर इनके जन्म तथा जीवन-प्रसंग के बारे में अनेक अनुमान किये गये हैं। पर ध्यान में रखना चाहिए कि इनकी रचनाओं में उपलब्ध होने वाले इन साक्ष्यों के आधार पर कोई साफ़ तस्वीर बना पाना आसान नहीं है। बहरहाल 936 हिजरी (सन् 1528 ई.) के आस-पास इनके द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अभिमत निम्नलिखित है -''इस पुस्तक में मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के संबंध में लिखा है - 'भा अवतार मोर नवसदी, तीस बरस ऊपर कवि बदी'। इन पंक्तियों का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता। 'नवसदी' ही पाठ मानने से जन्म काल 900 हिजरी अर्थात 1452 ई. के आस-पास ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा की जन्म के तीस वर्ष बाद जायसी अच्छी कविता करने लगे। जायसी का प्रसिद्ध ग्रंथ है पद्मावत, जिसका निर्माण-काल इस प्रकार दिया है -

''सन् नौ सै सत्ता स अहा। कथा अरंभ बैन कवि कहा।।''

इसका अर्थ होता है पद्मावत कथा के प्रारंभिक वचन 'आरंभ बैन' कवि ने सन् 927 हिजरी यानी सन् 1520 ई. के लगभग कहे थे। पर ग्रंथ के आरंभ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार शाह-ए-वक्त शेरशाह की प्रशंसा की है। जिसके शासन-काल का आरंभ 947 हिजरी अर्थात 1540 ई. से हुआ है। इस दशा में यही जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद 1520 ई. में बनाये थे पर ग्रंथ को 19 या 20 वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया।'' इस प्रसंग में वासुदेव शरण अग्रवाल का मानना है कि -''9वीं सदी हिजरी (1398 ई. से 1494 ई.) के बीच में किसी समय जायसी का जन्म हुआ। नवसदी से यह अर्थ लेना कि ठीक 900 हिजरी अर्थात 1494 ई. में जायसी का जन्म हुआ था, कवि के जीवन की अन्य तिथियों से संगत नहीं ठहरता। पद्मावत की रचना 1527-1540 ई. के बीच किसी समय हुई। उस समय वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। अतः 1494 को उनका जन्म संवत मानना कठिन है। आखिरी कलाम का निर्माण उन्होंने 1535 ई. अर्थात 936 हिजरी में किया। उससे पहले बादशाह बाबर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ चुके थे। जिसका उल्लेख कवि ने किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने यह संकेत भी किया है कि उनके जन्म के आस-पास एक बड़ा भूकम्प आया था।'' मनेर शरीफ (बिहार) वाले ख़ानकाह के पुस्तकालय से मिली अखरावट की प्रति के आधार पर प्रोफेसर सैयद हसन असकरी ने अखरावट का रचनाकाल 1505 ई.माना है। 1505 ई. में 30 वर्ष का समय घटाकर 1475 ई. को जायसी का जन्म वर्ष माना जा सकता है। इसी क्रम में 910-11 हिजरी के उस प्रचंड भूकम्प की चर्चा भी की जा सकती है जिसका उल्लेख 'तारीख़ दाउदी' (अब्दुल्लाह) तथा बदायूँनी की 'मुनतख़वुल तारीख़' आदि में है।

उपरलिखित विवरणों से स्पष्ट है कि जायसी के जन्म संवत को लेकर किसी ठोस निर्णय पर पहुँचना बहुत मुश्किल है। अतः जायसी को 15वीं सदी के मध्य में कभी जन्मा हुआ मानने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं बचता। विवाद इस बात को लेकर भी है कि इनका जन्म जायस में हुआ था या ये कहीं और से आकर वहाँ बस गये थे। पद्मावत में उन्होंने अपने चार मित्रों की चर्चा भी की है। इन मित्रों में युसूफ मलिक को पंडित के रूप में, सालार तथा मियाँ सलोने को वीर योद्धा के रूप में तथा बड़े शेख़ को वे सिद्ध के रूप में याद करते हैं। जनश्रुतियों में इनका एक आँख और एक कान से हीन होना साथ ही कुरूप होना प्रसिद्ध है। इन बातों की चर्चा उन्होंने स्वयं रचना-प्रसंगों के भीतर भी की है। पर यह स्पष्ट नहीं है कि ये चुनौतियाँ उन्हें जन्म से ही मिली थीं या बाद में। इन्होंने अनेक सिद्ध गुरुओं की चर्चा की है जिनकी सहायता से जायसी को वह रास्ता मिला जिसकी उन्हें तलाश थी। इनमें सैयद अशरफ, शेख़ हाज़ी, शेख़ मुबारक और शेख़ कमाल आदि का नाम लिया है। इनके अलावा मौहदी या महदी गुरु शेख़ बुरहान की चर्चा भी की है। इस प्रसंग में उपलब्ध साक्ष्य यह बताते हैं कि जायसी ने शास्त्रीय ज्ञान के लिये कम से कम दो या दो से अधिक धाराओं से संबंध रखने वाले सूफ़ी संतों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है। इससे स्पष्ट है कि वे किसी सम्प्रदाय की सीमा में बँधने की जगह जीवनानुभूति और अभिव्यक्ति के क्षेत्र में उदारता के हामी हैं। उनकी यही उदारता संस्कृतियों के संगम पर खड़े उनके विलक्षण संश्लेषक कवि-व्यक्तित्व की आधारशिला है।

7.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व

मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी साहित्य परम्परा में विलक्षण रचनाकार हैं। ये भक्ति-काव्य की निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों ने कथ्य के आधार के रूप में लोक में प्रचलित प्रेम-कथाओं को अपनाया है। इसी आधार पर उन्होंने अपनी जीवन-दृष्टि को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेममार्गी भक्ति शाखा और जायसी का परिचय देते हुये हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि -''कुतबन, जायसी आदि इन प्रेम कहानी के कवियों ने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखायी पड़ता है। हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ, हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुयी परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी, यह जायसी द्वारा पूरी हुयी।'' इस प्रसंग की तह तक पहुँचते हुए आचार्य शुक्ल निर्गुण भक्ति की दानों धाराओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखकर अपना निष्कर्ष इस प्रकार देते हैं -''कबीर ने अपनी झाड़-फटकार के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के कट्टरपन को कम करने का जो प्रयास किया वह अधिकतर चिढ़ानेवाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करनेवाला नहीं। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है वह उसके द्वारा व्यक्त न

हुआ।'' जाहिर है कि आचार्य शुक्ल इस काल की रचनाओं के माध्यम से उस समय और समाज के परिदृश्य को उसकी समग्र अन्विति में विश्लेषित करने का प्रयास कर रहे हैं। इस क्रम में कबीर के बारे में उनके मन्तव्यों के अतिरेक से सहमत होना सम्भव नहीं है किन्तु, जायसी के सृजनात्मक अवदान के महत्व के विषय में उनके द्वारा व्यक्त की गयी दिशा बहुत महत्वपूर्ण है। इसका संकेत देते हुये जायसी ग्रंथावली की भूमिका में उन्होंने लिखा है -''बहुत दिनों तक एक साथ रहते-रहते हिन्दू और मुसलमान एक-दुसरे के सामने अपना-अपना हृदय खोलने लग गये थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और मग्न करने का समय आ गया था। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिन्दुओं की रामकहानी सुनने को तैयार हो गये थे और हिन्दू मुसलमान का दास्तानहमज़ा।'' यहाँ आचार्य शुक्ल मध्यकालीन भारतीय समाज के तमाम अन्तस्संघर्षों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान और उससे भी बढ़कर हार्दिक एकता के बोध की सम्भावना का संकेत करते हैं -''सूफी मुसलमान फकीरों के सिवा कई सम्प्रदायों (जैसे गोरखपंथी, रसायनी, वेदान्ती) के हिन्दू साधुओं से भी उनका बहुत सत्संग रहा, जिनसे उन्होंने बहुत सी जानकारी प्राप्त की। .....इसी उदार सार ग्राहिणी प्रवृति के साथ ही साथ उन्हें अपने इस्लाम धर्म और पैगम्बर पर भी पूरी आस्था थी। यद्यपि कबीरदास के समान उन्होंने भी उदारता पूर्वक ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों का होना तत्वतः स्वीकार किया है।'' जायसी के रचनात्मक अवदान के प्रसंग में उनकी निभ्रांत धारणा यह है कि -''पद्मावत को पढ़ने से यह प्रकट हो जाएगा कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और 'प्रेम की पीर' से भरा हुआ था। क्या लोकपक्ष में और क्या भगवत् पक्ष में, दोनों ओर उनकी गूढ़ता और गम्भीरता विलक्षण दिखायी देती है।''

कहना न होगा कि, मलिक मुहम्मद जायसी को भक्ति-काव्य-धारा में अत्यंत गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है, जो सर्वथा उपयुक्त है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि -''सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ मलिक मुहम्मद जायसी थे, जो कहीं बाहर से जायस में आए थे और इसी धर्म-स्थान को अपना निवास-स्थान बना लिया था। इनकी प्रसिद्ध रचना पद्मावत है; अखरावट और आखिरी क़लाम नामक दो और रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। भगवान ने इन्हें रूप देने में बड़ी कंजूसी की थी किन्तु शुद्ध निर्मल और प्रेमपरायण हृदय देने में बड़ी उदारता से काम लिया था।'' जायसी के कवि व्यक्तित्व की विशेषता को रेखांकित करते हुए डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि -''जायसी के संदर्भ में यह बात फिर उभर कर आती है कि कविता-मात्र साम्प्रदायिक नहीं होती। मुसलमान होकर हिन्दू शौर्य की गाथा - दिल्ली के सुल्तान के विरुद्ध - एक नाज़ुक प्रसंग है। पर जायसी पद्मावत के चित्रण में एकदम खरे उतरते हैं। यहाँ दोनों पक्षों का पूरे आदर और आत्मीयता के साथ उल्लेख हुआ है -'हिन्दू तुरक दुवौ रन गाजे।' और अगर आत्मीयता कहीं कुछ अधिक है तो चित्तौड़ के साथ न कि दिल्ली के।'' मलिक मुहम्मद जायसी और उनके रचना कर्म को देखने और दिखाने की पारंपरिक दृष्टि को सीधी चुनौती देते हुये विजयदेवनारायण साही ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'जायसी' में लिखा है -''उन्होंने (आलोचकों ने) जायसी को सैयद मुहम्मद महदी का चेला तो माना, लेकिन बिना इसकी छानबीन किये कि महदियत के चरित्र और तसव्वुफ़ के चरित्र में क्या अन्तर है, जायसी को उसी गुरु-परम्परा के आधार पर सूफ़ी मान

लिया। यहाँ तक कि यह हिन्दी की लगभग बद्धमूल धारणा हो गयी है कि पद्मावत एक सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य है और इसकी चर्चा हिन्दी कविता के उस कोने में होनी चाहिए जहाँ जायसी के समकक्ष कुतबन और मंझन दिखते हैं। हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की शृंखला कबीर, जायसी, सूर और तुलसी की है, यह दृश्य अक्सर आँखों से ओझल हो जाता है।'' बहुत से ठोस तर्कों एवं प्रमाणों के आधार पर एक व्यवस्थित विवेचन प्रक्रिया विकसित करते हुये उन्होंने जायसी के कवि व्यक्तित्व की मूलभूत विशेषताओं को सामने लाया है। वे जायसी के काव्य की विशेषताओं का उद्घाटन करने के क्रम में जायसी या पद्मावत पर सूफ़ी प्रभाव का प्रयास पूर्वक निषेध करते हैं। सामान्यतः सभी कवियों और विशेषतः भक्ति-काव्य के प्रतिनिधि कवियों के बारे में बार-बार यह प्रश्न सामने आता है कि उनकी विशेषता का आधार उनकी वह चिंतन-धारा है जिससे वे आमतौर पर जुड़े हुये माने जाते हैं, या फिर उनका कवित्व। परम्परा और परिवर्तन को उसकी समग्रता में पहचानने का इतिहासधर्मी दबाव, कई बार रचनाकार या रचना के रचनात्मक परिप्रेक्ष्य अथवा वैयक्तिक वैशिष्ट्य की पहचान में बाधा बन जाता है। कवित्व का परिचय सामने आता तो है पर दबा-सहमा सा। वहाँ दर्शन की गरिमा साहित्यिक सृजनात्मकता पर भारी पड़ती है। जायसी बड़े सूफी संत हैं या नहीं ? वे महान समाजसुधारक हैं या नहीं ? ये प्रश्न साहित्य के विद्यार्थी के लिए भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं; लेकिन उनके कवित्व की असंदिग्ध प्रभावकता हमारे लिए निश्चय ही अधिक महत्वपूर्ण है।

7.3.3 रचनाएँ

जायसी की अनेक रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। इनमें पद्मावत, अखरावट और आखिरी क़लाम को प्रामाणिकता प्राप्त है। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

पद्मावत - मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा ठेठ अवधी में रचित यह रचना हिन्दी-साहित्य के प्रेमाख्यानकों की परम्परा का उत्कृष्ट ग्रंथ है। इसका रचना-काल, विद्वानों के बीच विवाद का विषय रहा है। कुछ ने इसे 1521 इसवी तो कुछ अन्य ने 1540 इसवी के आस-पास का माना है। इसमें चित्तौड़ के राजा रतनसेन, उसकी रानी नागमती, सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मावत तथा अन्य अनेक पात्रों और आनुषंगिक कथाओं के कुशल संयोग से इस महाकाव्य की रचना की गई है। इसके रचना-विधान पर फारसी की मसनवी शैली का स्पष्ट प्रभाव है। पद्मावत के प्रसंग में अधिकांश आलोचकों का मानना है कि यह सूफ़ी प्रभाव से प्रेरित और सूफ़ी जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करने वाली रचना है। इस बद्धमूल धारणा का आधार निम्नलिखित पंक्तियाँ हैं जिन्हें पाठ-कुंजी माना जाता रहा है-

''तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पद्मिनी चीन्हा।।
गुरु सुआ जे पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा।।
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सो न एहि चित बंधा।।
राघव दूत सो सैतानू। माया अलाउदीं सुलतानू।।
प्रेम कथा एहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु।।''

डा. माताप्रसाद गुप्त ने इन पंक्तियों को प्रक्षिप्त सिद्ध किया है। विजयदेवनारायण साही ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'जायसी' में जायसी और पद्मावत को सूफ़ी प्रभाव से अलग करके देखने की पुरजोर वक़ालत की है। जायसी ने पद्मावत में लोक-जीवन के विविध अनुषंगों (लोक-कथा, लोक-भाषा, लोकोक्ति, लोकाचार आदि) का आधार लेकर न केवल कथा-सूत्र विकसित किया है, बल्कि अपना रचनात्मक संदेश भी इन्हीं आधारों पर सृजित किया है। ऐसा कहने और मानने का कारण यह है कि पद्मावत के कथ्य और उसके रूप से उसके परिवेश की पारस्परिक अन्विति बेजोड़ है। ऐसा किसी रचना या कवि के प्रसंग में तभी संभव हो पाता है जबकि रचनाकार का न केवल अपने कथ्य से, न केवल उस कथ्य के संप्रेषण के घटकों से, बल्कि उस परिवेश और अभीप्सित पाठक-श्रोता समुदाय से भी गहरा तादात्म्य हो। जायसी की सृजनात्मक क्षमता का पुष्ट प्रमाण देता हुआपद्मावतपद्मावत यह भी साबित करता है कि उसे अपनी असंदिग्ध ताकत को प्रमाणित करने के लिए साहित्य से इतर किसी और सहारे की आवश्यकता नहीं। यहाँ कही गयी बातों को अगली इकाई में पद्मावत के मूल पाठ के विवेचन-विश्लेषण के क्रम में व्यावहारिक रूप से जाना जा सकता है।

अखरावट - अखरावट में जायसी का कथ्य सैद्धान्तिक है। जीवन और जगत की संरचना तथा इसके आधार के रूप में सक्रिय उस मूल सत्ता के स्वरूप और भूमिका को स्पष्ट करने वाली यह पुस्तक न केवल जायसी बल्कि उनके समय की प्रचलित धारणाओं को सामने लाती है। आचार्य शुक्ल ने इसके बारे में लिखा है -''अखरावट में वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सिद्धान्त सम्बन्धी, तत्वों से भरी चौपाइयाँ कही गयी हैं। इस छोटी सी पुस्तक में ईश्वर, सृष्टि, जीव, ईश्वर-प्रेम आदि विषयों पर विचार प्रकट किये गये हैं।'' उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं।

दोहा

गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
ऐसे अंधकूप मँह रचा मुहम्मद नूर।।

सोरठा

साईं केरा नाँव, हिया पूर, काया भरी।
मुहमद रहा न ठाँव, दूसर को न समा अब।।
आदिहु ते जे आदि गोसाईं। जे सब खेल रचा दुनियाई।।
जस खेलेसि तस जा न कहा। चौदह भुवन पूरि सब रहा।।
एक अकेल न दूसर जाती। उपजे सहस अठारह भाँती।।
जौ वै आनि जोति निरमई। दीन्हेसि ज्ञान, समुझि मोहिं भई।।
औ उन्ह आनि बार मुख खोला। भ मुख जीभ बोल मैं बोला।।
वै सब किछु, करता किछु नाहीं। जैसे चलै मेघ परिछाहीं।।
परगट गुपुत बिचारि सो बूझा। सो तजि दूसर और न सूझा।।

आख़िरी क़लाम - 'आखिरी क़लाम' में कयामत के समय अल्लाह के फैसले का विशद वर्णन है। विजयदेवनारायण साही ने इस प्रसंग में लिखा है कि -''आख़िरी कलाम की कयामत वह भावनात्मक और वैचारिक धुरी है जिस पर हमारे पुण्य, ईमान और बेइमानियाँ चक्कर काटते हैं - कल या परसों घटित होने वाला इतिहास नहीं।'' यह भी अवश्य याद रखना चाहिए कि जायसी के जीवन और उनकी रचनाओं के बारे में प्राप्त अधिकतर तथ्य परक सूचनाओं का आधार 'आखिरी क़लाम' ही है।

7.4 सूफ़ी मत एवं निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा

7.4.1 सूफ़ी मत का उद्भव और विकास

व्यक्तित्व का विकास उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से संसर्ग का ही प्रतिफल है। कवि जायसी के ठीक पहले और उनके रचना-काल की परिस्थितियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि इस दौर में सूफ़ी जीवन-दर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण बनकर सामने आया। इसके महत्वपूर्ण होने के पीछे ठोस ऐतिहासिक कारण थे। भारत में हिन्दू और मुसलमान अपनी तमाम आन्तरिक विविधताओं, विचित्रताओं और विरोधों के साथ आमने-सामने खड़े थे। इनमें परस्पर सांस्कृतिक आदान-प्रदान स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य भी था। यह आदान-प्रदान न तो आकस्मिक था और न इतना नया ही। परन्तु इतने व्यापक पैमाने पर यह परिस्थिति पहली बार बनी थी, इसमें संदेह नहीं। दोनों-जन समूहों की परस्पर अन्तर्क्रिया से भारतीय संस्कृति को एक नयी दिशा और नया स्वरूप मिलना था। यह तभी सम्भव था जब दोनों जन-समूह अपने जीवन-दर्शन के स्तर पर एक हद तक उदार होते। हिन्दी समाज और साहित्य में सूफ़ी मत, इस्लाम के इसी उदार वैचारिक पहलू का प्रतिनिधि है। 'भारतीय चिन्तन परम्परा' में के. दामोदरन ने लिखा है -''सामंत काल में सूफ़ी सम्प्रदाय रहस्यवाद की सर्वाधिक महत्वपूर्ण धाराओं में से एक था। इसका उदय उन क्षेत्रों में हुआ, जिन्हें आठवीं अथवा नवीं शताब्दी में मुसलमानों ने जीत लिया था। भारत में इस्लाम का प्रसार होने के साथ ही सूफ़ी मत का भी तेज़ी से प्रसार हुआ। भारत में आने से पहले भी सूफ़ी मत बौद्ध धर्म और हिन्दू विचारधारा से परिचित था और उसने भारतीय आदर्शवाद के कुछ तत्वों को आत्मसात कर लिया था।''

सूफ़ी साधकों और संतों ने सादग़ी और एकनिष्ठता को साधना का आधार बनाया। वे वास्तविकता की सही पहचान के लिए साधक के जीवन में अनेक कठिन शर्तों के पालन को अनिवार्य मानते हैं। पारम्परिक इस्लाम के झंडाबरदारों में, इस्लाम के औपचारिक स्वरूप के प्रति जो कट्टरता दिखाई देती है, सूफ़ियों में उसका आभाव है। वे इस्लामी जीवन-विधि के दृश्यपक्ष को खास महत्व न देते हुए उसके आन्तरिक अनुशासन के प्रति समर्पित हैं। जहाँ परमानंद की प्राप्ति लक्ष्य है और इसके लिए एकनिष्ठ प्रेम ही इसका साधन है। सूफ़ी मत की व्याख्या के प्रसंग में अनेक विद्वानों ने वेदान्त-दर्शन से इसकी समानता को रेखांकित किया है। इस्लाम का मूल सिद्धांत -'सिर्फ एक ईश्वर का अस्तित्व है'- सूफ़ियों के यहाँ आकर -'खुदा के अलावा और कुछ

नहीं खुदा ही सब जगह'- हो जाता है। इसे वहदतुलवजूद के रूप में जाना गया। सूफ़ी मत के बारे में कुछ विद्वानों का मानना यह है कि इसका जन्म मुहम्मद साहब के द्वारा प्रस्तुत की गई इस्लाम की अवधारणा के साथ ही हुआ। कुछ अन्य विद्वान इसे अपेक्षाकृत थोड़े बाद का मानते हैं। इस प्रसंग में ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि इस्लाम की पारम्परिक अवधारणा जहाँ बाहरी क्रिया कलापों तथा रोजा, नमाज़ आदि के प्रति एकनिष्ठ प्रतिबद्धता को महत्व देती है। वहीं सूफी मत इस्लाम के रूप में प्रतिपादित धर्म के अन्तर्निहित रूपों, भावात्मक आधारों को लेकर विकास पाता है। मुहम्मद गोरी द्वारा भारत विजय के समय भारत में प्रविष्ट होने से पूर्व यह अनेक सिलसिलों में विभाजित हो चुका था। इनमें से बारह सिलसिले मुख्य माने जाते हैं। भारत में इन बारह सिलसिलों में से केवल चार ही अपना विस्तार पा सके। इनके नाम क्रमशः चिश्तिया, सोहरावर्दी, कादरी, नक्सबंदी हैं। इनमें भी ज्यादा प्रभावशाली चिस्ती और सोहरावर्दी रहे हैं। ख्वाज़ा मोईनुद्दीन चिस्ती और शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया, शेख हमीदुदीन नागौरी, शेख फ़रीदुदीन महमूद और ख्वाज़ा कुतुबुद्दीन बख्तियार क़ाक़ी जैसे कुछ संतों ने अपने विलक्षण प्रभाव से लम्बे समय तक भारतीय समाज को दिशा दी।

इस्लाम की कठोर हदबंदियों को एक हद तक न मानते हुए आस्था के आन्तरिक पक्ष को मूल मानने वाले इन रहस्यवादियों ने हिन्दुओं के बीच इस्लाम के प्रचार और प्रसार की पृष्ठभूमि तैयार की। दिल्ली सल्तनत के तथा मुगल वंश के महानतम विजेताओं ने यदि भारत में राजनीतिक विजय हासिल की (जमीन और धन कमाया) तो शौक़ से मुफ़लिसी में जीने वाले इन सूफ़ी संतों ने लाखों लोगों के हृदयों पर राज किया। इस्लाम की दोनों धाराओं के अन्दर और ख़ासतौर पर सूफ़ी मत में अनेक कबीलों से चली आयी पारंपरिक मान्यताओं और जीवन-विधियों का मेल दिखायी देता है। भारत में आकर अपनी स्वभावगत उदारता के बल पर इन्होंने हिन्दू जीवन-विधि के कुछ अंशों को भी अपना लिया। यही कारण है कि तब से लेकर इन सूफी संतों के मजारों और इनके द्वारा स्थापित खानकाहों में न केवल मुसलमान बल्कि हिन्दू भी श्रद्धा से अपना मत्था टेकते आये हैं। इस तरह यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि इस्लाम के भारत में आगमन से लेकर अब तक दो परस्पर भिन्न एवं एक हद तक परस्पर विरोधी प्रवृत्ति वाली संस्कृतियों के मेल से एक नयी संस्कृति और सभ्यता के विकास की दिशा में सूफी मत का योगदान अविस्मरणीय है। ठीक उसी काल में तथाकथित हिन्दू दलित जातियों के सदस्यों को उनका सम्मान देने और दिलाने के क्रम में भक्ति की विविध प्रवृत्तियों की जैसी भूमिका रही है ठीक वैसी ही भूमिका उपेक्षित और प्रताडित मुसलमानों को उनका हक दिलाने में सूफ़ी मत की रही है। यह महज संयोग नहीं है कि सूफ़ी मत को आधार बना कर चलने वाली निर्गुण प्रेममार्गी शाखा को भक्ति-आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण शाखा के रूप में पहचाना गया है।

7.4.2 निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा का उद्भव और विकास

हिन्दी-साहित्य के इतिहास के पूर्व मध्यकाल को भक्ति-काल कहा जाता है। इस काल में उपलब्ध साहित्यिक रचनाओं के आधार पर किये गये इस नामकरण को व्यापक स्वीकृति मिली है। इस काल की लगभग सभी रचनाओं में भक्ति की प्रवृति मुख्य रूप से सक्रिय है।

साहित्य के विद्यार्थी को यह ध्यानपूर्वक देखना और समझना चाहिए कि भक्ति कोई एकरूपी अथवा समान तरीके अथवा समान उद्देश्य को लेकर चलने वाला जीवन-दर्शन नहीं है। भौगोलिक रूप से लगभग समूचे भारत में एक लम्बे काल-खण्ड (1400-1700 ई.) में रचनात्मक ऊर्जा का संचार करने वाली यह प्रवृत्ति विविध भाषा-भाषी क्षेत्रों, अनेकानेक भिन्न सांस्कृतिक समुदायों के विविध उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक ऐसा भावनात्मक और वैचारिक संदर्भ है जिसके बहुविध सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पहलु हैं। इस अर्थ में भक्ति, बेहद जटिल दार्शनिक अवधारणा है। यह अवधारणा उस काल-खण्ड की विविध और परस्पर विरोधी जीवन-विधियों और आदर्शों को एक ऐसा सृजनात्मक सांस्कृतिक मंच देती है, जो इससे पहले दुर्लभ था। यही कारण है कि यह प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति के इतिहास में अर्जित की गई सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धियों में एक है। जिसका प्रभाव भारतीय जीवन के विभिन्न संदर्भों में, बदले हुए रूपों में, आज भी देखा जा सकता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इसे चार मुख्य धाराओं में बाँटकर देखा गया है। जाहिर है कि इस बँटवारे का आधार इस युग में प्राप्त होने वाली रचनाएँ हैं। आचार्य शुक्ल ने इस काल की चार प्रमुख धाराओं का उल्लेख निम्नवत् किया है- ''इस प्रकार देश में सगुण और निर्गुण के नाम से भक्ति-काव्य की दो धाराएँ विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक समानान्तर चलती रही। ..... यह निर्गुण धारा दो शाखाओं में विभक्त हुई - एक तो ज्ञानाश्रयी शाखा और दूसरी शुद्ध प्रेममार्गी शाखा (सूफियों की)।'' इस क्रम में वे आगे लिखते हैं -''दूसरी शाखा शुद्ध प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों की है। जिनकी प्रेम गाथाएँ वास्तव में साहित्य कोटी के भीतर आती हैं। इन साधक कवियों ने लौकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम तत्व का आभास दिया है जो प्रियतम ईश्वर से मिलानेवाला है।

भक्ति आन्दोलन और इससे प्रेरित साहित्य को आराध्य की अवधारणा के आधार पर दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है - निर्गुण और सगुण। परमात्मा या परमशक्ति की अवधारणा के प्रसंग में निर्गुण और सगुण का यह अन्तर बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। आपाततः परस्पर विरोधी दिखायी देने वाली ये दोनों अवधारणाएँ वस्तुतः अनेक अर्थों में एक दूसरे की विरोधी उतनी नहीं, जितनी की पूरक हैं। भारत जैसे वैविध्य पूर्ण सांस्कृतिक विरासत वाले देश में किसी अवधारणा का लचीलेपन के बिना जीवित रहना असम्भव है। आश्चर्य नहीं कि भक्ति-आन्दोलन के पुरोधाओं के सामने भारतीय परम्परा ने जितने संभव विकल्प रखे थे, उन्होंने उन सब का आवश्यकता के अनुरूप प्रयोग करते हुये इस भूभाग में बसने वाले विराट जन-समूह को सांस्कृतिक नेतृत्व दिया। पारम्परिक हिन्दू चिन्तन धारा में उपलब्ध निर्गुण मत और सूफ़ी मत में अवधारणागत समीपता के कारण भक्ति की निर्गुण धारा के क्रमशः दो भेद सामने आये -

1. ज्ञानाश्रयी निर्गुण मत और
2. प्रेमाश्रयी निर्गुण मत

जैसा नाम से ही स्पष्ट है ज्ञानमार्ग में उस परम शक्ति के बोध का आधार ज्ञान है, जो साधना का विषय है तो दूसरी ओर प्रेममार्गी शाखा में प्रेम का आधार ग्रहण किया गया है। इस धारा के अधिकतर रचनाकारों ने सूफ़ी मत के अनुरूप इश्क मज़ाज़ी (इस दुनियाँ का प्रेम) से इश्क हक़ीक़ी (पारलौकिक प्रेम) की अवधारणा को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है। ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ प्रेम के जिस स्वरूप को आधार बनाया गया है वह वस्तुतः गहन अन्तस्साधना के आधार पर पाया गया बोध है।

7.4.3 प्रेमाश्रयी निर्गुण मत से जुड़ी रचनाएँ

इस प्रेममार्गी शाखा की प्रमुख विशेषता लौकिक प्रेम कथाओं के आधार पर आध्यात्मिक उपलब्धि की यात्रा का सांकेतिक चित्रण है। इन कथाओं में प्रेमी और प्रेमिका के बीच अद्भुत आकर्षण, उनके मिलन-मार्ग की विकट बाधाओं और इन बाधाओं से नायक का जूझने और अन्त में उनके मिलन का चित्रण है। इस परम्परा की लौकिक कथाओं का हिन्दी क्षेत्र के भारतीय जन-समुदाय में व्यापक प्रचार-प्रसार था। इन कथाओं को आधार बनाकर अपनी बात को लोगों तक पहुँचाने का प्रयास प्रेममार्गी सूफी कवियों ने किया। इस धारा के कवियों में प्रथम स्थान चंदायन (1379 ई.) के रचयिता मुल्ला दाउद का है। चंदायन की भाषा अवधी है। इसका परिचय देते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि -''मुल्ला दाउद रायबरेली जिले के डलमउ के थे। वहीं चंदायन की उनहोंने रचना की। यह काव्य बहुत लोकप्रिय एवं सम्मानित था। दिल्ली में मखदुम शेख तक़ीउद्दीन रब्बानी जन समाज के बीच इसका पाठ किया करते थे। चंदायन पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना और उसकी विवाहिता प्रेमिका चंदा की प्रेम-कथा पर आधारित है। बीच-बीच में चंदा को इस काव्य में भी पद्मावत की भाँति अलौकिक सत्ता का प्रतीक बनाया गया है।'' इसी परम्परा में आने वाली दूसरी महत्वपूर्ण रचना 'मिरगावत' (1503-04) है। इसके रचनाकार कुतबन हैं। इस परम्परा को अपने शीर्ष पर पहुँचाने वाले मलिक मुहम्मद जायसी की जगत प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' है। 'पद्मावत' के कवि की सृजनात्मक विलक्षणता, उसकी दृष्टिगत व्यापकता और परस्पर विरूद्ध तत्वों को साथ-साथ देखने और दिखाने की क्षमता में निहित है। इस क्रम में अगला महत्वपूर्ण नाम कुतबन का है। इन्होंने 1503-1504 ई. के आस-पास 'मिरगावत' की रचना की। कुतुबन की 'मिरगावत' की विशेषताओं को रेखांकित करते हुये आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने निम्नलिखित पंक्तियों में इस धारा के रचनाओं के बारे में कुछ बहुत महत्वपूर्ण संकेत दिये हैं -''दो बातें इस कहानी में विशेष ध्यान देने की हैं। एक तो पुरुष का एकान्तिक प्रेम और प्रिया को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना; दूसरा, प्रिया का धोखा देकर उड़ जाना और दूसरे देश में जाकर राज्य-शासन करना। इस प्रकार की कथानक-रूढ़ियाँ इस देश में नयी ही हैं। प्रेमपात्र में ऐश्वर्य-बुद्धि और कठिन साधना के द्वारा ही उसकी प्राप्ति तथा माधुर्य भाव के द्वारा ऐश्वर्य भाव का पराभव, ये सूफ़ियों के आध्यात्मिक आदर्श हैं। यहाँ प्रिय भगवान का प्रतीक है और धोखा देकर उड़ जाना उसके प्रेम की सचाई की परीक्षा है। सूफ़ी कवियों ने सदा प्रेमी को अनेक विघ्नों में से निकाल कर नायिका तक पहुँचाया है। लौकिक पक्ष में यह प्रेम की एकान्तिकता का सूचक है और पारलौकिक पक्ष में

साधना की गहनता का।'' इस परम्परा में तीसरा नाम उस महान कवि का है जिसे इस धारा का सर्वश्रेष्ठ कवि होने का गौरव प्राप्त है। हिन्दी-साहित्य के पाठक इन्हें मलिक मुहम्मद जायसी के नाम से जानते हैं। इनकी जगत प्रसिद्ध रचना पद्मावत इनके अखण्ड यश का दृढ़ आधार है। अखरावट और आखिरी कलाम नामक दो अन्य रचनाएँ भी इन्होंने लिखी हैं। लेकिन साहित्य की दृष्टि से पद्मावत सर्वोपरि है। इसकी आधार कथा सिंघल देश की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौर के राजा रतनसेन की प्रेम-कथा है। अनेक सहायक पात्रों के माध्यम से इस कथा का बहुत प्रभावी ताना-बाना जायसी ने प्रस्तुत किया है। इसके बारे में अधिकतर विद्वानों की धारणा है कि यह सूफ़ी मत का प्रतिनिधि काव्य है। परवर्ती दौर में प्रसिद्ध हिन्दी आलोचक विजयदेवनारायण साही ने इस रचना को सूफ़ी मत से अलग कर, इसकी साहित्यिक विलक्षणता को पहचानने की कोशिश की है। उनका प्रस्ताव यह है कि सूफ़ी मत से जायसी और पद्मावत का अनिवार्य संबंध मान लिये जाने के कारण इसकी व्याख्या और सही समझ विकसित करने में बाधा आती है। लिहाजा जायसी की काव्यगत विशेषताओं को तब तक नहीं पहचाना जा सकता जब तक कि हम पद्मावत को सूफ़ी सिद्धांत की छाया से मुक्त नहीं कर लेते। किन्तु विजयदेवनारायण साही की इस धारणा को व्यापक स्वीकृति मिल पाना अब तक भविष्य का विषय है।

इस परम्परा में अगले रचनाकार मंझन हैं। इनकी रचना का नाम 'मधुमालती' है, जिसका कथा-सूत्र काफ़ी लम्बा और जटिल है। आचार्य शुक्ल ने इन्हें जायसी का पूर्ववर्ती माना है, जबकि परवर्ती शोध इन्हें जायसी के बाद का मानने के पक्ष में हैं। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में लिखा है कि -''कवि ने नायक और नायिका के अतिरिक्त उपनायक और उपनायिका की भी योजना करके कथा को तो विस्तृत किया ही है, साथ ही प्रेम और ताराचंद के चरित्र द्वारा सच्ची सहानुभूति, अपूर्व संयम और निःस्वार्थ भाव का चित्र दिखाया है। जन्म जन्मांतर और योन्यंतर के बीच प्रेम की अखंडता दिखाकर मंझन ने प्रेमतत्व की व्यापकता और नित्यता का आभास दिखाया है।''

7.4.4 निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा की रचनाओं की सामान्य विशेषताएँ

इनमें रचनाकारों ने हिन्दु जन-मानस में प्रचलित लोक-कथाओं और लोक-भाषा (अवधी) का आधार ग्रहण किया है।

- ज़्यादातर रचनाएँ फ़ारसी की मसनवी शैली में लिखी गई हैं।
- इनमें सूफ़ी दर्शन के तत्व प्रकटतः देखे जा सकते हैं।
- इन कथाओं में अनेक कथानक रूढ़ियों का प्रयोग है जो दोनों संस्कृतियों के मेल का सूचक है।

{''कथानक को गति देने के लिए सूफ़ी कवियों ने प्रायः उन सभी कथानक-रूढ़ियों का व्यवहार किया है, जो परम्परा से भारतीय कथाओं में व्यवहृत होती रही हैं; जैसे चित्रदर्शन, स्वप्न द्वारा अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा नायिका का रूप देख या सुनकर उसपर आसक्त होना, पशु-

पक्षियों की बातचीत से भावी घटना का संकेत पाना, मन्दिर या चित्रशाला में प्रियुगल का मिलन होना, इत्यादि। कुछ नयी कथानक-रूढ़ियाँ ईरानी साहित्य से आ गयी हैं; जैसे - प्रेम-व्यापार में परियों और देवों का सहयोग, उड़ने वाली राजकुमारियाँ, राजकुमारी का प्रेमी को गिरफ़्तार करा लेना, इत्यादि। परन्तु इन नयी कथानक-शैलियों को भी कवियों ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया है।''} इन रचनाओं का मुख्य आधार प्रेम की भावना है, जो मनुष्य को सामान्य जीवन में पाये जाने वाले बन्धनों से मुक्त कर अनुभव के दूसरे लोक में पहुँचाता है।

चौपाई और दोहे के मेल से बने कड़वकों में ये कथाएँ निबद्ध हैं।

पाठ्यक्रम संख्या दस में पद्मावत के चयनित अंश की व्याख्या और जायसी की रचनात्मक विषेषताओं से व्यावहारिक परिचय के क्रम में हम प्रेममार्गी काव्यों की कतिपय अन्य विशेषताओं का परिचय भी पायेंगे।

7.5 सारांश

मध्यकालीन कविता की सातवीं इकाई जायसी जीवन एवं साहित्यलोचना का आपने अध्ययन कर लिया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सके कि –

- जायसी भक्ति काल निर्गुण शाखा के प्रेममार्गी धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। जायसी न केवल भक्ति काल के श्रेष्ठ कवि है, अपितु हिंदी साहित्य के भी श्रेष्ठ कवि है।
- जायसी का महत्व न केवल साहित्यिक है वरन् सांस्कृतिक भी है, जायसी जैसे कवियों ने हिन्दु-मुसलमानों को धार्मिक विभेद से मुक्त कर उन्हें लोक सामान्य की भाव भूमि पर प्रतिष्ठित किया।
- जायसी का श्रेष्ठ ग्रंथ पद्मावत है, जो हिंदी साहित्य का अनुपम रत्न है। यह ग्रंथ प्रेम काव्य नहीं है वरन् सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सेतु भी है।
- जायसी लोक भाषा एवं लोकतत्व के कवि हैं। उस प्रदेश के उस समय की प्रचलित लोक भाषा (ठेठ अवधी) का व्यवहार आपने किया है। पूरे काव्य में लोक अभिप्राय बिखरे पड़े हैं।

7.6 शब्दावली

- निर्गुण - संस्कृत/हिन्दी गुणों के परे, गुणों के दायरे से बाहर का, ईश्वर
- प्रेममार्गी - संस्कृत/हिन्दी सूफ़ी मत का आधार ग्रहण करने वाले संत अथवा भक्त कवि
- सूफ़ी (अरबी) अपेक्षाकृत उदार विचार वाले मुसलमानों का एक सम्प्रदाय
- इश्क़ हक़ीक़ी (अरबी) वास्तविक प्रेम (आध्यात्मिक, ईश्वरोन्मुख)

- इश्क़ मज़ाजी (अरबी) कृत्रिम, नकली, संसार या इहलोक सम्बन्धी
- मसनवी (अरबी) कविता का एक प्रकार जिसमें दो-दो तुकान्त चरण एक साथ रहते हैं। अल्लाह और शाह ए वक्त की प्रार्थना से युक्त प्रबन्धात्मक रचना।
- कड़वक संस्कृत/हिन्दी 5 से लेकर 8 चौपाइयों और एक दोहे के मेल से बनने वाले सम्मुच्चय, जो जैन चरित काव्यों, प्रेमाख्यानकों में प्रयुक्त हैं।

7.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
- शुक्ल, रामचन्द्र,जायसी ग्रंथावली, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
- अग्रवाल, वासुदेव शरण, पद्मावत, सं. - ,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली
- साही, विजयदेवनारायण, जायसी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद
- त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरिएन्ट लांगमैन, नई दिल्ली
- चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- बाशम, ए. एल., अ कल्चरल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस
- दामोदरन, के., भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- रिज़वी, एस.ए.ए., द वन्डर दैट वाज इंडिया(भाग दो), रूपा एंड कम्पनी-नई दिल्ली

7.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर जायसी के रचनाकार व्यक्तित्व का परिचय दें।
2. जायसी की विभिन्न रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देते हुये निर्गुण धारा की प्रेममार्गी शाखा में उनके महत्व का रेखांकन करें।
3. पद्मावत और जायसी के संदर्भ में तत्कालीन सामाजिक परिदृश्य पर प्रकाश डालें।

इकाई 8 - तुलसीदास: परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 परिचय

8.3.1 सामान्य सूचनाएँ

8.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व

8.3.3 प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

8.4 सगुण भक्तिधारा की राम-भक्ति शाखा

8.4.1 भक्ति-आन्दोलन का परिप्रेक्ष्य (समय और समाज)

8.4.2 राम-भक्ति शाखा का दार्शनिक आधार (विशिष्टाद्वैत मत)

8.4.3 राम-भक्ति शाखा का स्वरूप

8.5 चयनित पाठ

8.5.1 रामचरित मानस (चयनित अंश एवं व्याख्या)

8.5.2 कवितावली (चयनित अंश एवं व्याख्या)

8.5.3 विनयपत्रिका (चयनित अंश एवं व्याख्या)

8.6 सारांश

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.8 शब्दावली

8.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन से आप महाकवि तुलसीदास के व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं के साथ-साथ रामभक्ति शाखा के साहित्य और विशिष्टाद्वैत मत तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध का परिचय प्राप्त कर सकेंगे। हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्व मध्यकाल - भक्ति काल के नाम से जाना जाता है। इस काल की रचनाओं और रचनाकारों की जीवन-दृष्टि और व्यवहार में भक्ति की सर्वातिशायी सक्रियता के कारण इस काल को भक्ति-काल कहा गया है। भक्ति काल के अन्तर्गत रामभक्ति शाखा का विकास सृजनधर्मी उपलब्धियों और व्यापक प्रभाव की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति-काल की समस्त रचनाशीलता को दो मुख्य धाराओं और पुनः इनकी दो-दो उपधाराओं के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप में श्रेणीबद्ध किया है, जिसे हम आगे की बिन्दुओं में अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

- तुलसीदास के जीवन और साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- भक्ति की सगुण धारा के अन्तर्गत राम-भक्ति शाखा के साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- विशिष्टाद्वैत मत का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- राम-भक्ति शाखा और विशिष्टाद्वैत मत के पारस्परिक संबंध को जान सकेंगे।
- राम-भक्ति शाखा के अन्तर्गत तुलसीदास और उनकी रचनाओं का स्थान निर्धारण कर सकेंगे।
- चयनित पाठ के आधार पर तुलसी-साहित्य की विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

8.3 परिचय

महाकवि तुलसीदास हिन्दी साहित्य की सगुण भक्ति धारा की राममार्गी शाखा के शीर्षस्थ सर्जक हैं। इनका सृजन-संसार अत्यन्त व्यापक और गहन है। सृजन कर्म की व्यापकता और गहराई के कारण ये न केवल अपने समकालीनों में बल्कि समग्र हिन्दी-काव्य के इतिहास में अत्यन्त विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। हिन्दी की पारम्परिक और अद्यतन आलोचनात्मक दृष्टि, अनेक अंतर्विरोधों और मूल्यगत भेदों के बावजूद इनकी सृजन-क्षमता और विलक्षण जीवन-दृष्टि के प्रति सम्मान प्रकट करती आयी है। तुलसी-साहित्य की समग्रतामूलक समझ के लिए इनकी रचना-दृष्टि में निहित अन्तर्विरोधों और मूल्यगत संरचना से अद्यतन जीवन-दृष्टि के अन्तर को जानना अत्यंत आवश्यक है। तुलसी साहित्य की समझ को विकसित करना इसलिए भी

जरुरी है कि इसके बिना हिन्दी-क्षेत्र के व्यापक जन-मानस की मूल संरचना को जानना और पहचानना असंभव है।

8.3.1 सामान्य सूचनाएँ

जनश्रुतियों के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी प्रसिद्ध है। हिन्दी भक्ति-साहित्य के सर्वोतकृष्ट कवियों में सुप्रतिष्ठित तुलसीदास के जन्म की तिथि के प्रसंग में मुख्यतः तीन भिन्न मत हैं। 'गोसाईचरित' के लेखक बेनीमाधव दास और 'तुलसीचरित' के लेखक महात्मा रघुबार दास के अनुसार इनका जन्म-वर्ष संवत् 1554 (1497) है। ठाकुर शिवसिंह सेंगर द्वारा रचित 'शिवसिंहसरोज' में इनका जन्म-वर्ष संवत् 1583 (1526ई.) है और पंडित रामगुलाम द्विवेदी तथा अन्य विद्वानों को अनुसार इनका जन्म-वर्ष संवत् 1589 (1532ई.) है। इनमें सर्वाधिक मान्य तिथि संवत् 1589 (1532ई.) है। इनके देहावसान के वर्ष को लेकर भी मतान्तर रहे हैं किन्तु संवत् 1680 (1623 ई.) इस प्रसंग में मान्य है। उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों के बीच मतान्तर हैं। सोरों (जिला एटा, उत्तर प्रदेश), राजापुर (जिला बाँदा, उत्तरप्रदेश), सूकर खेत (जिला गोंडा, उत्तर प्रदेश), अयोध्या आदि को लेकर विभिन्न मत व्यक्त किये जाते रहे हैं। इनमें से किसी भी स्थान के बारे में निश्चयात्मक आधार का अभाव है। प्रामाणिक रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि महाकवि तुलसीदास सोलहवीं सदी की भारतीय मनीषा की महत्तम उपलब्धि हैं। अवधी भाषा और लोक-जीवन से इनका घनिष्ठ रागात्मक सम्बन्ध है, जिसके प्रमाण इनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं। तुलसी साहित्य से प्राप्त अन्तःसाक्ष्यों से उनके जीवन और सामाजिक परिवेश के बारे में अनेक महत्वपूर्ण संकेत मिलते हैं। इन्हीं संकेतों के आधार पर इनके जीवनवृत के बारे में लोक-प्रसिद्ध जनश्रुतियों से प्राप्त सूचनाओं को सामानान्तर रखकर निष्कर्षों तक पहुँचने की चेष्टाएँ की जाती रही हैं।

8.3.2 रचनाकार व्यक्तित्व

तुलसीदास हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक हैं। उनकी रचनाएँ भारतीय सामान्य जीवन के अतुलनीय विस्तार और सजीव चित्रण के कारण अप्रतिम हैं। जीवन-जगत के वैचारिक और व्यावहारिक दोनों पक्षों का ऐसा सृजनधर्मी संयोजन अन्यत्र दुर्लभ है। अपने समय तक प्रचलित लगभग अधिकांश वैचारिक धाराओं के पारस्परिक सांस्कृतिक-संवाद को परम्परा प्राप्त रामकथा का आधार लेकर सामान्य जन समूह के लिए सामान्य जन-भाषा (अवधी और ब्रजभाषा) में सुलभ बनाकर उन्होंने भारतीय संस्कृतिक विकास में अतुलनीय योगदान किया है। उनकी कृतियों का मुख्य उपजीव्य हिन्दी-क्षेत्र का सामान्य भारतीय जन-जीवन और परम्परा-प्राप्त राम-कथा है। अपने समय और समाज में व्याप्त विसंगतियों और विडम्बनाओं से विचार और व्यवहार के धरातल पर सतत, सतर्क संघर्ष के आधार पर उन्होंने जीवन-व्यवस्था की नवीन संभावना प्रस्तुत की है। साधारण जन-जीवन में कष्टों और चुनौतियों से जूझते लोगों को उनके कवि-व्यक्तित्व में अपने सच्चे हितैषी की झलक मिलती आयी है, यही उनकी अद्वितीय लोकप्रियता का आधार है। उनकी रचनाएँ भारतीय पारम्परिक ज्ञान-धारा का विश्वकोष बनकर उपस्थित हैं। यही कारण है कि रामचरितमानस में की गयी -

''नानापुराण निगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषानिबद्धमतिमंजुलमातनोति।।''

की घोषणा, शब्दों के सच्चे अर्थ में उनकी रचनात्मकता की परिचायिका है। उन्होंने मध्यकाल में प्रचलित लगभग समस्त काव्य पद्धतियों में रचनात्मकता के मानक स्थापित किये हैं। वीरगाथा परम्परा में प्रयुक्त छप्पय-पद्धति; विद्यापति और सूरदास के काव्य में प्रयुक्त गीत-पद्धति; स्वयंभू के पऊमचरिउ, मुल्लादाउद के चंदायन और जायसी के पद्मावत में प्रयुक्त चौपाई-दोहे की पद्धति के साथ ही कवित्त-सवैया पद्धति; दोहे और बरवै की पद्धति में रचित उनकी अमूल्य रचनाएँ विगत लगभग पाँच सौ वर्षों से हिन्दी जन-मानस को रूपाकार और चेतना देती आयी हैं। भारतीय काव्य-परम्परा में प्रयुक्त छन्दों और अलंकारों पर उनका अधिकार अप्रतिम है। छन्दों में दोहा, चौपाई, सोरठा, सवैया और बरवै तथा अलंकारों में रूपक उन्हें विशेष रूप से प्रिय हैं। हिन्दी साहित्य की परम्परा में तुलसीदास के इस महत्वपूर्ण अवदान को ध्यान में रखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपना सुचिंतित निष्कर्ष दिया है -''हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं। ...इनकी वाणी की पहुँच मनुष्य के सारे भावों और व्यवहारों तक है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद्भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यंत उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है।''

8.3.3 प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

तुलसीदास का रचना-संसार मात्रात्मकता और गुणात्मकता दोनों ही दृष्टियों से अत्यंत समृद्ध और विस्तृत है। इनकी लिखी रचनाओं में निम्नलिखित बारह ग्रन्थों की प्रामाणिकता असंदिग्ध है - दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञाप्रश्न, विनयपत्रिका, रामललानहुछ, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवैरामायण, वैराग्यसंदीपनी और श्रीकृष्ण गीतावली। इनमें रामचरितमानस, कवितावली और विनयपत्रिका से परिचित हुए बिना तुलसीदास की रचनात्मक क्षमता का पता नहीं पाया जा सकता। अतः प्रस्तुत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत चयनित अंश इन्हीं तीन रचनाओं से गृहीत हैं। 'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की अमूल्य निधि है। हिन्दी भाषा एवं साहित्य की सम्पूर्ण रचना-परम्परा की चरम उपलब्धियों की गणना में यह कनिष्ठिकाधीष्ठित है। संवत् 1631(1574ई.)में तुलसीदास ने अयोध्या में इसे लिखना आरंभ किया और इसके कुछ अंशों की रचना उन्होंने काशी में की। यह दोहा-चौपाई की प्रबंध पद्धति में रचित है। प्रसंगानुकूल कतिपय अन्य छंदों का प्रयोग भी किया गया है। इसकी भाषा अवधी है। यह सम्पूर्ण प्रबन्ध सात काण्डों में विभक्त है। राम-कथा इस महाकाव्य का उपजीव्य है। राम-कथा के विविध प्रसंगों के वर्णन और चित्रण में महाकवि तुलसीदास की तन्मयता अप्रतिम है। अपनी इस महान सृजनात्मक चेष्टा में उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति के लगभग समस्त आसंगों को समसामायिक अपेक्षा के अनुरूप अतुलनीय अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने कथा के पारम्परिक स्वरूप को यथावत् न रखकर उसमें युगानुकूल

अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। आचार्य शुक्ल ने रामचरितमानस का परिचय देते हुए इसकी असंख्य विशिष्टताओं को निम्नलिखित उपशीर्षकों में बाँधने की चेष्टा की है -

1. कथाकाव्य के सब अवयवों का उचित समीकरण
2. मार्मिक स्थलों की पहचान
3. प्रसंगानुकूल भाषा
4. श्रृंगार की शिष्ट मर्यादा के भीतर बहुत ही व्यंजक वर्णन

किसी परम्परित कथा-सूत्र के आधार पर रचनात्मक सूत्र के विस्तार का प्रयास सृजन-क्षेत्र की बेहद कठिन चुनौती है। यह चुनौती तब और कठिन हो जाती है जब कथा का यह परम्परित सूत्र धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्य-विधान का वाहक और लोक-स्मृति का अविच्छेद्य अंग बन चुका हो। तुलसीदास ने अपनी अद्वितीय कवि-प्रतिभा और एकनिष्ठ समर्पण के बल से अर्जित तन्मयता के बल पर इस चुनौती का सामना किया है। मानव की मूल मनोवृत्तियों में निहित कमजोरियों जैसे काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ आदि से संघर्ष करते हुए इनसे ऊपर उठने का प्रक्रम रामचरितमानस को सार्वदेशिक और सार्वकालिक महत्व देता है। विविध प्रसंगों के चित्रण में तुलसीदास ने बहुविध पात्रों के पारस्परिक व्यवहारों के माध्यम से जीवन में निहित श्रेष्ठता के छद्म और स्वभावगत जड़ता के ऐसे दृश्य सृजित किये हैं, जिन्हें देख कर पाठक का समग्र व्यक्तित्वांतरण सम्भव है। उनकी पंक्तियाँ वास्तविकता का एक ऐसा आईना हैं जो व्यक्ति और समाज के स्वभाव में निहित दोषों को बेहद धैर्य और संयम से दिखाती हुई उसे सुधरने-संवरने का रास्ता बताती हैं। वे इस समूची प्रक्रिया में इतनी नम्रता और आत्मीयता बरतते हैं कि पाठक को पता भी नहीं लगता कि कब वह परिष्कार की राह पर चल पड़ा है। यह महज संयोग नहीं कि तमाम विरोधों के बावजूद रामचरितमानस की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा हिन्दी-समाज के विविध वर्गों के बीच आज भी बनी हुई है।

'कवितावली' तुलसीदास की विलक्षण रचनात्मक प्रतिभा और उनके युग-बोध का पुष्ट प्रमाण है। ब्रजभाषा में लिखी गयी मुक्तक शैली की यह रचना कवित्त-सवैया पद्धति का उत्कृष्ट उदाहरण है। सम्पूर्ण रचना सात खण्डों में विभाजित है। इसके विभिन्न प्रसंगों में वर्णन की जगह चित्रण की प्रधानता है। महाकवि तुलसी के अचूक बिम्ब-विधान को इसके छन्दों में सर्वत्र देखा जा सकता है। इन बिम्बों की गत्यात्मक सजीवता इनकी खास विशेषता है। राम कथा से सम्बद्ध छन्दों में लयात्मकता और शब्दों पर महाकवि के अप्रतिम अधिकार का परिचय मिलता है। कवितावली के उत्तरकाण्ड में कवि ने समसामयिक समाज और अपने जीवन के बारे में जो तथ्यात्मक चित्रण किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तःसाक्ष्य इस रचना के अद्वितीय महत्व का कारण है। इन प्रसंगों को जाने बिना तुलसी की कवि-दृष्टि का परिचय नहीं पाया जा सकता है।

'विनय पत्रिका' तुलसीदास की कवि-प्रतिभा का एक और उत्तम उदाहरण है। इसकी रचना प्रगीत पद्धति पर आधारित है। यह ब्रजभाषा में रचित आत्मनिवेदनपरक गीतों का संग्रह है। इसके नाम से प्रकट है कि इसमें तुलसी दास ने अपने मन के नितान्त निजी भावों को प्रभु राम

के प्रति पत्र के माध्यम से निवेदित किया है। यह करुण निवेदन अपनी नितान्त आत्मपरकता में सार्वजनीन हित कामना से प्रेरित है; यही इसकी विलक्षणता का आधार है। इस कृति की रचनात्मक प्रौढ़ता इसे बेहद महत्वपूर्ण बनाती है। प्रबंधात्मक शिल्प की कतिपय अनिवार्य बाध्यताओं से मुक्त कवि-चेतना ने यहाँ भावों की स्वाधीन अभिव्यक्ति का सहज सुन्दर रूप प्रस्तुत किया है। ये गीत शास्त्रीय रागों में निबद्ध हैं। विनय पत्रिका के पदों का नाद-सौन्दर्य महाकवि की अन्य रचनाओं की अपेक्षा विशिष्ट है। हिन्दी साहित्य परम्परा के आत्मनिवेदनपरक प्रगीतों में इसे अत्यन्त उत्कृष्ट माना जाता है। इसमें संकलित अधिसंख्य पदों में गायक और श्रोता को भाव-विभोर कर देने की अचूक क्षमता है।

8.4 सगुण भक्ति धारा की रामभक्ति शाखा

8.4.1 भक्ति आंदोलन का परिप्रेक्ष्य (समय और समाज)

भक्ति आंदोलन भारतीय सांस्कृतिक विचार-व्यवहार की परम्परा के विकास की अत्यन्त महत्वपूर्ण कड़ी है। अपने प्रसार और प्रभाव में यह आंदोलन सम्पूर्ण भारत के अधिकांश भू-भागों और तत्कालीन भारतीय समाज के सभी स्तरों तक व्याप्त देखा जा सकता है। भक्ति आन्दोलन की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर शोध करने वाले इतिहासकारों में प्रमुख इरफान हबीब और रामशरण शर्मा ने इसे तत्कालीन उत्तर भारतीय समाज में उत्पादन के बदलते स्वरूप और निम्न वर्गों के लोगों के लिए नये शासकों द्वारा स्थापित व्यवस्था से उत्पन्न नवीन अवसरों का स्वाभाविक परिणाम माना है। दिल्ली सल्तनत की जड़ें जमने के बाद इस क्षेत्र में पारम्परिक आर्थिक सम्बन्धों के समीकरण बदलने लगे। अतः समाज के दबे हुए तबकों ने अवसर का लाभ लेकर अपनी मेहनत और कौशल के बल से उन्नति की। इस नवोन्नत वर्ग में सामाजिक प्रतिष्ठा पाने की आकांक्षा को भक्ति के दर्शन का वैचारिक आधार मिला। सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में इसी तरह के परिवर्तन दक्षिण भारत में बहुत पहले हो चुके थे। अतः दक्षिण में जन्मी भक्ति की धारा अनुकूल अवसर पाकर क्रमशः उत्तर भारत में प्रसरित हुई। इस प्रसंग पर विचार करने वाले अधिसंख्य विद्वानों ने यह देखा और दिखाया है, कि भक्ति-आन्दोलन से पहले भारतीय समाज में व्याप्त जड़ता इसे एक ऐसे मोड़ पर ले आयी थी जहाँ विचार और व्यवहार के धरातल पर सर्वातिशायी और दूरगामी परिवर्तन बेहद जरुरी हो गया था। भक्ति-आन्दोलन ने इस महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति की। अपने उद्देश्यों में पूर्णतः सफल न होने पर भी इसने भारतीय जीवन और विचार-पद्धति को बहुत गहराई तक प्रभावित किया।

8.4.2 राम-भक्ति शाखा का दार्शनिक आधार (विशिष्टाद्वैत मत)

भक्ति आन्दोलन को दार्शनिक आधार देने वाली जिन चार महत्वपूर्ण दार्शनिक प्रणालियों की चर्चा की जाती है, उनमें से एक का नाम विशिष्टाद्वैत मत है। भक्ति साहित्य की राममार्गी शाखा के दार्शनिक अधार मुख्यतः इसी विशिष्टाद्वैत में निहित हैं। इस मत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य कहे जाते हैं। रामानुजाचार्य ने श्री सम्प्रदाय की स्थापना की जिसमें विष्णु या नारायण की उपासना प्रचलित है। रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत मत शंकराचार्य के

अद्वैत सिद्धान्त से इस अर्थ में विशिष्ट है कि वे दृश्य जगत को शंकर की तरह भ्रम मात्र नहीं मानते। उन्होंने ब्रह्म, जीवात्माओं और भौतिक जगत को यथार्थ और परस्पर भिन्न माना है। विशिष्टाद्वैत का मतलब एक अपरिमित ब्रह्म का स्वयं अपने स्पष्ट भिन्न और परिमित (विशिष्ट) अंगों से एकाकार होना है। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत मत में ब्रह्म को किसी विशिष्ट गुण से रहित अथवा निर्गुण रूप में उपस्थापित किया गया है। जब कि रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैत मत ब्रह्म को सर्वग्य, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी मानता है। साथ ही उसमें ज्ञान, शक्ति, कल्याण ,दीप्ति और दया आदि गुणों की स्थिति भी स्वीकार करता है। शंकर के मत के विपरीत रामानुज ब्रह्म के साथ जगत की सत्ता को भी यथार्थ मानते हैं। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर के. दामोदरन ने लिखा है कि -''रामानुज ने भी सामन्तवाद की परिधि के भीतर ही अपने सिद्धान्तों का विकास किया। तो भी जाति-प्रथा के प्रति उनका दृष्टिकोण उतना अनमनीय और रूढ़ नहीं था, जितना शंकराचार्य का। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि भक्ति सभी जाति-भेदों से ऊपर है, और यह ईश्वर की आराधना में सब के लिए समानता के समर्थक हैं।'' वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रसंग में विशिष्टाद्वैत में निहित नमनीयता का कारण यह है कि रामानुज की परंपरा में वैदिक परम्परा तथा द्रविड़ परम्परा का सम्मिश्रण है। द्रविड़ परम्परा में बारह भक्त हुए हैं जिन्हें आलवार कहा जाता है। इन भक्तों में शठकोप सबसे प्रसिद्ध हैं जो शूद्र थे। इन आलवार संतों की प्रसिद्ध रचनाओं का संग्रह तमिलवेद के नाम से प्रसिद्ध है और इसे भी भक्ति-परंपरा में मूल वेदों की तरह ही प्रतिष्ठित माना गया है। रामानुज की शिक्षाओं ने भक्ति-आन्दोलन को सबल दार्शनिक आधार दिया; जिसे लेकर स्वामी रामानन्द ने राम भक्ति परम्परा की शुरुआत और प्रसार किया। भक्ति को जन-मन तक पहुँचाने के लिए रामानन्द जी ने वह प्रसिद्ध सूत्र दिया जो भक्ति की शक्ति को सर्वातिशायी बनाता है -'जात-पाँत पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई'। रामानन्द ने भक्ति का द्वार समाज के हर वर्ग के लिए खोल दिया। यह मध्यकालीन सामाजिक जड़त्व के खिलाफ परिवर्तन की गम्भीर उद्घोषणा थी। रामानन्द के बारह शिष्य प्रसिद्ध हैं जिनमें अधिसंख्य शूद्र हैं। स्वामी रामानन्द की शिष्य परम्परा में आगे तुलसीदास का आगमन हुआ। तुलसीदास की रचनाओं से प्राप्त अन्तःसाक्ष्य भी समाज में व्याप्त जातिवादी जड़ता के विरुद्ध उनके क्रोध और वितृष्णा का प्रबल प्रमाण देते हैं।

8.4.3 राम-भक्ति शाखा का स्वरूप

राम-भक्ति शाखा की स्थापना और उसके प्रभाव-क्षेत्र के अद्भुत विस्तार का श्रेय स्वामी रामानन्द को जाता है। राम-भक्ति का प्रचलन सगुण और निर्गुण दोनों भक्ति-धाराओं में है। रामानन्द इन दोनों परम्पराओं से जुड़े भक्तों के गुरु माने जाते हैं। रामानुज द्वारा प्रस्तावित प्रचारित भक्ति मत को वास्तविक अर्थ में सामान्य जन-सुलभ बनाने का काम स्वामी रामानंद ने किया। इनके दो ग्रंथ प्रामाणिक हैं - वैष्णव मताब्ज भास्कर और श्री रामार्चन पद्धति। पन्द्रहवीं सदी में इन्होंने उत्तर भारत में राम-भक्ति का प्रचार-प्रसार किया। स्वामी रामानंद और इनके शिष्यों द्वारा निर्मित राम-भक्ति की इसी भाव-धारा से तुलसीदास ने प्रेरणा ग्रहण की। तुलसीदास की अतुलनीय सृजनात्मक प्रतिभा ने राम-भक्ति धारा की रचनात्मक सम्भावना को इसके सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। इसकी स्वाभाविक परिणति यह हुई कि परवर्ती कवियों की रचनात्मक

अभिव्यक्तियाँ इनके सामने टिक नहीं सकीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस परम्परा के जिन रचनाकारों को महत्वपूर्ण माना है उनमें स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचंद चौहान और हृदयराम उल्लेखनीय हैं। नाभादास की रचना 'भक्तमाल' मध्यकाल के भक्त कवियों के बारे में सूचनात्मक संग्रह है।

अभ्यास प्रश्न 1

(क) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. तुलसीदास का जन्म.....वर्ष में हुआ है।
2. तुलसीदास की मृत्यु.....वर्ष में हुई।
3. रामचरितमानस की भाषा.....है।
4. विनय पत्रिका की भाषा.....है।

(ख) सत्य/असत्य बता ए –

1. तुलसीदास रामभक्ति शाखा के कवि है।
2. तुलसीदास निर्गुण काव्यधारा के कवि है।
3. तुलसीदास की 12 प्रमाणिक रचनाएँ मानी जाती है।
4. रामललानहछू तुलसीदास की रचना नहीं है।

8.5 चयनित पाठ

8.5.1 रामचरित मानस

(क) बालकाण्ड से चयनित अंश

चौपाई:- गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ राम चरित भव मोचन।।१।।

अर्थ:- गुरु पद-रज (पैरों की धूल) कोमल और सुन्दर नयनामृत अंजन है। यह आँखों के दोष मिटाने वाला है। इस अंजन से अपने विवेक की आँखों को निर्मल करके मैं संसार के दुखों से मुक्ति देने वाले राम-चरित का वर्णन करता हूँ। भक्ति के प्रसंग में गुरु का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

टिप्पणी - प्रस्तुत चौपाई में महाकवि तुलसी ने गुरु की अगाध महिमा के प्रति सम्मान प्रकट किया है। जीवन के विराट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वयं क्षमतावान होना ही यथेष्ट नहीं होता। आँखों के होने मात्र से दृश्य की वास्तविकता प्रकट नहीं हो जाती। इसके लिए विवेक सम्पन्न दृष्टि की विमलता बहुत आवश्यक है। इस चौपाई में महाकवि तुलसी ने देखने की वस्तविक प्रक्रिया और उसमें गुरु की महती भूमिका को स्पष्ट किया है।

चौपाई:- बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।।
सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी।।२।।

अर्थ:- पहले इस धरती के देवता, उन ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करता हूँ जो अज्ञान जनित समस्त भ्रमों का निवारण करने वाले हैं। मैं समस्त गुणों की खान संत-समाज को प्रेमपूर्वक अपनी प्रणति निवेदित करता हूँ।

टिप्पणी -इस चौपाई में महाकवि तुलसीदास ने संत-समाज के महत्वपूर्ण सामाजिक प्रकार्य को सामने रखते हुए उसके प्रति अपनी अपरिमित श्रद्धा व्यक्त की है।

चौपाई:- साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा।।३।।

अर्थ:- सज्जनों का चरित कपास के चरित की तरह शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। जो दुःख सहकर भी दूसरों के दोषों को ढंकते हैं और इस प्रवृति के कारण जिन्हें दुनिया में यश मिला है, वन्दनीय हैं।

टिप्पणी -ध्यान देने योग्य है कि सज्जनों की चरित्रिक विशेषता बताते हुए तुलसीदास को कपास के उस फल की याद आती है जो अत्यन्त शुष्क, स्वादहीन और रुई के तंतुओं से भरा होता है। चुने जाने से लेकर तुनने, धुनने, कातने, बुनने और सीने-पीरोने की लम्बी और पीड़ा दायक प्रक्रिया से गुजरते हुए भी वह सुई के द्वारा बने छेद को भरकर कपड़े का स्वरूप सही और सुन्दर बनाये रखने में अपनी अद्वितीय भूमिका अदा करता है। ठीक उसी तरह सज्जन व्यक्ति भी जीवनगत अनेक कष्टों से गुजरते हुए दूसरे के दोषों को समाज में प्रकट होने से रोकते हैं। यही कारण है कि सद्गुणों से सम्पूरित सज्जनों का यह व्यक्तित्व वन्दनीय और यशस्वी है।

चौपाई:- मुद मंगलमय संत समाजू। जो जगजंगम तीरथराजू।।
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरस ब्रह्म बिचार प्रचारा।।४।।

अर्थ:- संत-समाज आनन्द और कल्याण से भरा है। यह इस जगत में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। इस संत-समाज रूपी तीर्थराज प्रयाग में राम भक्ति की गंगाधारा बहती है और इस कथा में निहित ब्रह्म विचार का प्रचार सरस्वती की धारा है।

चौपाई:- बिधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी।।
हरि हर कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मंगल देनी ।।५।।

अर्थ:- इस प्रयाग की यमुना कलयुग के मल का हरण करने वाली कर्मों के विधि-निषेध की कथा है। इसके साथ भगवान विष्णु और शंकर जी की कथाएँ त्रिवेणी के रूप में न्यस्त हैं, जो सुनते ही सब प्रकार का आनन्द और कल्याण प्रदान करनेवाली हैं।

चौपाई:- बटु बिस्वास अचल निज धरमा। तीरथराज समाज सुकरमा ।।
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा।।६।।

अर्थ:- निज धर्म में अटल विश्वास इस तीर्थराज का अक्षयवट है। सुकर्म ही इस तीर्थराज का समाज (परिकर) है। यह तीर्थराज सबों के लिए सब देशों और कालों में सुलभ है, और इसका आदर सहित सेवन, क्लेषों का शमन करता है।

चौपाई - अकथ अलौकिक तीरथराऊ। दे सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।।७।।

अर्थ- यह तीर्थराज अलौकिक और अकथनीय है। यह तत्काल फल देता है और इसका प्रभाव बिल्कुल प्रकट है।

दोहा:- सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।।२।।

अर्थ:- जो इस संत-समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्नता पूर्वक सुनते और समझते हैं तथा प्रेम पूर्वक राम भक्ति धारा में गोते लगाते हैं, वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कर लेते हैं।

(ख) अयोध्याकाण्ड से चयनित अंश

छंद:- श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पा कृपानिधान की।।
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।।

अर्थ:- प्रस्तुत पंक्तियों में महर्षि वाल्मिकि द्वारा श्रीराम की वन्दना का प्रसंग प्रस्तुत किया गया है। वे कहते हैं - हे राम! आप वेद की रक्षा करने वाले जगत्पति हैं और जानकी आपकी माया हैं, जो आपके निर्देश पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। हजार मस्तकों वाले, सर्पो के स्वामी और पृथ्वी को अपने फन पर धारण करने वाले समस्त चराचर के स्वामी शेषनाग ही लक्ष्मण हैं। देवताओं के हित के लिए आप राजा का शरीर धारण कर दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने चले हैं।

सोरठा:-राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।।१२६।।

अर्थ:- हे राम! आपका स्वरूप, वाणी और बुद्धि की शक्ति से परे है। यह अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर नेति-नेति कह कर इसका वर्णन करते हैं।

चौपाई:- **जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे।।**
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हार । औरु तुम्हहि को जाननिहारा।।१।।

अर्थ:- यह जगत दृश्य है और तुम उसको देखने वाले हो। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को नचाने वाले आप ही हो। जब वे भी तुम्हारे मर्म को नहीं जानते तो और कौन जान सकता है।

चौपाई:- **सो जान जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्ह हो जाई।।**
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।२।।

अर्थ:- केवल वही आपको जानता है जिसे आप बता देते हो और आपको जानते ही वह आपका ही होकर रह जाता है। भक्त के हृदय को शीतल करने वाले आपकी कृपा से ही आपका भक्त आपको जान पाता है।

चौपाई:- **चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।।**
नर तनु धरेहु संत सुर काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा।।३।।

अर्थ:- आपकी देह चिदानन्दमय है। उत्पत्ति, नाश, वृद्धि और क्षय जैसे विकारों से यह शरीर रहित है। इस रहस्य को केवल अधिकारी ही जानते हैं। आपने देवताओं और संतों का कार्य के लिए मानव शरीर धारण किया है और प्रकृति से निर्मित देह वाले साधारण राजाओं की तरह वचन और व्यवहार अपनाया है।

चौपाई:- **राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे।।**
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।।४।।

अर्थ:- हे राम! आपके चरित्र को देख और सुन कर मूर्ख लोग तो मोह में पर जाते हैं और ज्ञानी जन सुखी हुआ करते हैं। आप जो भी कुछ करते कहते हैं, वह सब सत्य है, क्योंकि स्वांग जैसा भरे, नाच भी वैसा ही होना चाहिए। इस समय मनुष्य रूप में होने के कारण आपका मानवोचित व्यवहार करना ही ठीक है।

दोहा:- पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ।।१२७।।

अर्थ:- मुझसे आपने पूछा कि कहाँ रहूँ, किन्तु मुझे आपसे पूछते हुए संकोच होता है कि आप जहाँ न हो वह स्थान हमें बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान बताऊँ।

8.5.2 कवितावली

(क) बालकाण्ड से चयनित अंश

सवैया:- अवधेस के द्वारें सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच बिमोचन को ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से।।
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन - जातक - से।
सजनी ससि में समसील उभै नवलील सरोरुह - से बिकसे।।

अर्थ:- (अयोध्या में बसने वाली महिलाओं में कोई एक अपनी सखि से कहती है) मैं प्रातःकाल अयोध्यापति दशरथ के द्वार पर गई। महाराज पुत्र को गोद में लेकर बाहर आये। मैं उस चिन्ताओं से मुक्त करने वाले बालक को देखकर ठगी-सी रह गई। उसे देख कर जो मोहित न हो उन्हें धिक्कार है। उस बालक के अंजन से संवारे हुए नैन खंजन पक्षी के सुन्दर बच्चे की आँखों की तरह थे। हे सखि! उन्हें देख कर ऐसा लगता था मानो चन्द्रमा में दो एक जैसे सद्यःप्रस्फुटित (ताजा) नीलकमल खिले हों। इन पंक्तियों की विशेषता यह है कि इनमें दृश्य और उसके प्रभाव के समेकित सायुज्य को अभिव्यक्ति दी गई है।

(ख) अयोध्याकाण्ड से चयनित अंश

सवैया:-साँवरे-गोरे सलोने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैनु लियो है।
बान-कमान, निषंग कसें, सिर सोहैं जटा, मुनिबेषु कियो है।।
संग लिएँ बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूपु दियो है।
पायन तौ पनहीं न, पयादेंहि क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है।।

अर्थ:- स्वाभाविक रूप से सुन्दर, सांवले और गोरे इन दोनों बालकों ने मनोहरता में कामदेव को भी जीत लिया है। ये धनुष-बाण लिये और तरकस कसे हुए हैं, इनके सिर पर जटाएँ शोभित हैं और इन्होंने मुनियों का-सा वेष बना रखा है। ये चन्द्रमुखी दुल्हन को अपने साथ लिये हैं, जिसने रति को अपना थोड़ा-सा रूप दे रखा है। (इन्हें देखकर) हृदय सकुचाता है कि इनके पैरों में जूते भी नहीं हैं, ये पैदल कैसे चलेंगे ?

सवैया:-रानी मैं जानी अयानी महा, पबि-पाहनहू तें कठोर हियो है।
राजहुँ काजु अकाजु न जान्यो, कह्यो तियको जेहिं कान कियो है।।
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कैसे प्रीतम लोगु जियो है।

आँखिन में सखि! राखिबे जोगु, न्हैं किमि कै बनबासु दियो है।।

अर्थ:- मैंने जान लिया कि रानी महामूर्ख है, उसका हृदय वज्र और पत्थर से भी कठोर है। राजा को भी कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहा, जिन्होंने स्त्री के कहे हुए पर कान दिया। अरे! इनकी मूर्ति ऐसी मनोहारिणी है, भला इन लोगों का वियोग होने पर इनके प्रिय लोग कैसे जीते होंगे ? हे सखि! ये तो आँखों में रखने योग्य हैं, इन्हें वनवास क्यों दिया गया है ?

सवैया:-सीस जटा, उर-बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौंहैं।
तून सरासन-बान धरें तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं।।
सादर बारहिं बार सुभायँ चितै तुम्ह त्यों हमरो मनु मोहैं।
पूँछत ग्रामबधू सिय सों, कहौ, साँवरे-से सखि! रावरे को हैं।।

अर्थ:- सीता से गाँव की स्त्रियाँ पूछती हैं - 'जिनके सिरपर जटाएँ हैं, वक्षःस्थल और भुजाएँ विशाल हैं, नेत्र अरुणवर्ण हैं, भौंहें तिरछी हैं, जो धनुष-बाण और तरकस धारण किये वन के मार्ग में बड़े भले जान पड़ते हैं। स्वभाव से ही आदरपूर्वक बार-बार तुम्हारी ओर देखकर जो हमारा मन मोह लेते हैं, बताओ तो हे सखि! वे साँवले-से कुँवर आपके कौन होते हैं ?।।

सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझा कछू, मुसुका चली।।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदैं बिगसीं मनो मंजुल कंजकलीं।।

गाँव की स्त्रियों के अमृत-से सने हुए सुन्दर वचनों को सुनकर जानकी जान गयीं कि ये सब बड़ी चतुरा हैं। अतः नेत्रों को तिरछा कर उन्हें सैन से ही समझाकर मुसकराकर चल दीं। महाकवि तुलसी कहते हैं कि उस समय लोचन के लाभ की तरह राम के रूप् को देखती हुई वे सब सखियाँ ऐसी सुशोभित हो रही हैं, मानो सूर्य के उदय से प्रेमरूपी तालाब में कमलों की मनोहर कलियाँ खिल गयी हैं।

8.5.3 विनयपत्रिका (चयनित अंश एवं अर्थ) –

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं ।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न सैहौं।।
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं।।
परबस जानि हँस्यो न ंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं।।

अर्थ:- अब तक नष्ट हुआ परन्तु अब नष्ट नहीं होऊँगा। श्रीराम की कृपा से संसार रूपी रात्री बीत चुकी है। मैं अब जाग गया हूँ। अब फिर से माया का बिछौना नहीं बिछाऊँगा। मुझे राम-नाम रूपी सुन्दर चिन्तामणी प्राप्त हो गई है। अब इसे अपने हृदय रूपी हाथों से कभी गिरने नहीं दूँगा। श्रीराम के पवित्र और सुन्दर श्याम रूप की कसौटी पर मैं अपने हृदय रूपी सोने को कसूँगा। दूसरे के वश में जान कर मेरी इन्द्रियों ने मेरी बहुत हँसी उड़ायी है। अब अपने वश में होकर मैं फिर से हँसी का पात्र नहीं बनूँगा। यह मेरा प्रण (प्रतिज्ञा) है कि मैं अपने मन रूपी भौंरे को रघुपति के चरण कमलों में लगाये रखूँगा।

केसव! कहि न जा का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिट न मर भीति, दुख पा य एहि तनु हेरे।।
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।।

अर्थ:- हे केशव क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता, हे हरि, आपकी इस रचना की विचित्रता को देखकर मन-ही-मन समझकर चुप रहना ही उचित है। इस संसार रूपी चित्र को अव्यक्त चित्रकार (परमात्मा) ने शून्य (माया) की दीवार पर, बिना रंग के (मात्र संकल्प से) बना दिया है। धोने से यह मिटता भी नहीं और इसके नष्ट हो जाने का भय भी नहीं जाता। इसे देखकर दुःख ही होता है। मृग-मरीचिका में जो जल दिखाई देता है, उसमें एक भयानक मगर रहता है। उस मगर का मुँह नहीं है तो भी जल की लालसा में वहाँ जाने वालों को वह खा लेता है। ठीक उसी तरह यह संसार, सूर्य की किरणों में जल के समान भ्रम पूर्ण है। इस भ्रमात्मक संसार में सुख के पीछे दौड़ने वालों को भी बिना मुख का मगर अर्थात् निराकार काल खा जाता है। इस संसार को कोई सत्य कहता है, कोई मिथ्या कहता है और कोई सत्य और मिथ्या के मेल से बना हुआ मानता है। तुलसीदास का मत यह है कि जो इन तीनों भ्रमों से मुक्त हो जाता है वही अपने असली स्वरूप को पहचानता है।

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुखरोयो।
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो।।
करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो।।
तुलसिदास प्रभु! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
ासत ही ग बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो।।

अर्थ:- मेरे इस मूर्ख मन ने मुझे बहुत छकाया (धोखा दिया) है। महाकवि तुलसी कहते हैं - हे करूणामय! सुनये, इसी के चलते मैं पुनर्वार जगत में जन्म लेकर दुःख से रोता फिरा। शीतल और मधुर अमृत सरीखे सहज सुख के अत्यन्त निकट होने पर भी मैंने उसे बहुत दूर मानकर खो दिया। मोह में भ्रमित होकर मुझ मूर्ख ने पानी मथकर घी निकालना चाहा। यद्यपि मुझे यह पता था कि कर्म कीच की तरह है फिर भी सब कुछ जानते हुए भी मैंने मल से ही मल को धोना चाहा। मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि प्यासा होने पर भी गंगा की धारा छोड़कर आकाश निचोड़ता फिरता हूँ। सच्चे सुख की प्राप्ति के लिए दुःख रूपी विषयों में भटकता हूँ। हे स्वामी अब आप मुझ पर कृपा करें। मैंने अपना एक भी दोष आप से नहीं छिपाया है। सच कहूँ तो बिस्तर बिछाते-बिछाते ही सारी रात (जीवन) बीत गई। हे स्वामी! कभी नींद भर सो नहीं पाया।

8.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि –

- तुलसीदास हिंदी भक्तिकाल सगुण धारा के रामभक्ति शाखा के श्रेष्ठ कवि है।
- तुलसीदास रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत को मानने वाले कवि है।
- तुलसीदास की 12 प्रमाणिक रचनाएँ हैं जिनमें रामचरित मानस एंव विनय पत्रिका अपनी काव्यात्मक औदात्य की दृष्टि से श्रेष्ठ रचनाएँ है।
- तुलसीदास का काव्य वर्ण्य–वस्तु एवं शिल्प संरचना की दृष्टि से हिंदी का श्रेष्ठ काव्य है।

8.7 शब्दावली

भक्ति - ईश्वर विषयक रति
सगुण - परम सत्ता का वह स्वरूप जो गुण सहित हो
निर्गुण - परम सत्ता का वह स्वरूप जो गुणों से परे हो
ब्रह्म - परम सत्ता
माया - ब्रह्म की शक्ति का वह अंश जो उसकी प्रेरणा से समस्त सांसारिक सत्ताओं का संचालन और नियमन करती है।
जीव - प्राणियों में मौजूद चेतन तत्व, परम सत्ता से वियुक्त उसका अंश
अद्वैत - आदि शंकराचार्य द्वारा प्रस्थापित दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें ब्रह्म और जीव को दूसरा (अपर) नहीं कहा गया है और जगत को मिथ्या बताया गया है।
विशिष्टाद्वैत - रामानुजाचार्य द्वारा प्रस्थापित दार्शनिक सिद्धान्त।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

(क) 1- 1532
2- 1623
3- अवधी
4- ब्रजभाषा

(ख)1- सत्य
2- असत्य
3- सत्य
4- असत्य

8.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

- नोट्स ऑन तुलसीदास: जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1833)
- श्री गोस्वामी तुलसीदास जी: शिवनन्दन सहाय (1916)
- गोस्वामी तुलसीदास: रामचन्द्र शुक्ल (1913)
- हिन्दी साहित्य इतिहास: रामचन्द्र शुक्ल (1929)
- राम कथा का विकास: डा. कामिल बुल्के (1950
- तुलसी: संपादक - उदयभानु सिंह (1976)
- लोकवादी तुलसी दास: विश्वनाथ त्रिपाठी (1974)
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना: रामविलास शर्मा (1993)
- भारतीय दर्शन की रुपरेखा: एम. हरियन्ना (1965)
- भारतीय चिन्तन परम्परा: के दामोदरन (1979)
- अनभै साँचा: मैनेजर पाण्डेय (2002)

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर तुलसी के कवि-व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दें।
2. तुलसीदास की रचनाओं के महत्व पर प्रकाश डालें।
3. निम्नलिखित काव्यांशों की सप्रसंग व्याख्या करें -

क. सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।।
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन।।

ख. सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकीं जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली।।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदैं बिगसीं मनो मंजुल कंजकलीं।।

ग. मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिये सुनहु करुनामय, मैं जग जनमि-जनमि दुखरोयो ।
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो ।
बहु भाँतिन श्रम करत मोहबस, बृथहि मंदमति बारि बिलोयो ।।
करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो ।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि-फिरि बिकल अकास निचोयो।।
तुलसिदास प्रभु! कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ! नींद भरि सोयो ।।

इकाई 9 मीराबाई : पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 भक्ति आन्दोलन, हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा एवं मीराबाई
9.4 मीराबाई: व्यक्तित्व एवं रचनायात्रा
9.5 काव्यगत विशेषताएँ
  9.5.1 भक्ति का स्वरूप
  9.5.2 साधना और दर्शन
  9.5.3 प्रेम और सौन्दर्य
  9.5.4 उत्कट विरहानुभूति एवं वेदना का स्वर
  9.5.5 प्रतिरोध का स्वर एवं स्त्री स्वातंत्र्य
9.6 शिल्प विधान
9.7 मीराबाई की कविता का मूलपाठ
9.8 सारांश
9.9 शब्दावली
9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन की आध्यात्मिक प्रेरणा ने जिन महान कवियों को जन्म दिया, उनमें राजस्थान की मीराबाई का विशिष्ट स्थान है। नाभादास, प्रियादास, ध्रुवदास, मलूकदास, हरीराम व्यास आदि भक्तों और सन्तों ने इनका गुणगान किया है। नाभादास ने मीरा के संघर्ष के महत्त्व को रेखांकित करते हुए भक्तमाल ने लिखा है -

सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट, कलियुगहि दिखायो।
निरअंकुश अति नि र, रसिक जस रसना गायो ।।

बाल्यावस्था में अनेक कष्टों को सहते हुए उन्होंने अपना जीवन साधु-संगति एवं कृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया। वे कृष्ण की मूर्ति को बेसुध होकर निहारती तथा उसके समक्ष विह्वल होकर नृत्य करतीं, वे घोषित रूप से कृष्ण को अपना पति कहतीं। 'राणा के साथ तो उनका विवाह सांसारिक था, शरीर का साथ था, परन्तु मीर अपने अंतर्मन से जिसे पति मानती थीं, जिसके साथ वे आत्मा के स्तर पर सदा-सदा के लिए बँधी थीं, वह तो अविनाशी और अक्षय था, वहाँ कैसा वैधव्य और कैसा विछोह –

म्हारो साँवरो ब्रजवाशी।
जग सुहाग मिथ्या री सजणी होवाँ हाँ मिट ज्याशी,
बरन कर्यां अविनाशी म्हारो काड़-ब्याड़णा खाशी।

यह सब होते हुए भी कहीं-कहीं मीरा के यहाँ नारी होने के कारण अबला होने का अहसास भी है, किन्तु फिर भी मीरा ने कहीं समझौता नहीं किया और न ही सामंतवादी व्यवस्था के सामने हतदर्प हुई। उन्होंने घर-परिवार, राजसत्ता, धर्म सत्ता सभी को चुनौती दे दिया, उसकी औकात बता दी और निर्भय होकर स्वयं को प्रिय के प्रति समर्पित कर दिया। उन्होंने साहस के साथ कहा-

राजा रूठ्याँ णगरी त्यागाँ, हरि रूठ्याँ कण जाणा,
राणा भेजा बिखराँ प्या ा, चरणामृत पी जाणा ।।

मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि मीरा को अपनी प्रेमाभिव्यक्ति के लिए कबीर की तरह न 'बहुरिया' बनने की आवश्यकता है और न सूर की तरह गोपियों, राधा की आवश्यकता है, न ही जायसी के तरह किसी लोककथा की आवश्यकता है। यह सीधा, प्रत्यक्ष प्रेमनिवेदन है, हृदय की पुकार है, जो निर्द्वन्द्व एवं निर्भय है - 'तन की आस कबहूँ नहिं कीनों, ज्यों रण माँही सूरो।' इनका संघर्ष सूरा का संघर्ष है, कबीर के शब्दों में कहें तो 'कायर भागे पीठ दे, सूरा करे संग्राम'। यह पूरी संकल्प शक्ति एवं अटूट आस्था, अदम्य जिजीविषा का जीवन संघर्ष है - 'अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौरानी'। कबीर, जायसी, सूर के प्रेम लोक की चुनौतियाँ प्राथमिक स्तर की हैं, भावात्मक हैं किन्तु मीरा के समक्ष पारिवारिक, सामाजिक जीवन एवं साक्षात् भौतिक जीवन की चुनौतियाँ एवं दंश है, जिसके विरुद्ध मीरा ने खुला विद्रोह कर दिया था -

'लोक लाज कुल कानि जगत की, द बहाय जस पानी।'

कबीर ने भी कहा था कि 'कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि', 'कबीर रेख सिन्दूर की, काजल दिया न जाइ' किन्तु मीरा का संघर्ष बहुआयामी है। उसके विरोध में राणा की सामंती राजसत्ता है, सिसोदिया कुल की मर्यादा एवं शील का दंश है, पुरुष की प्रभुत्व सत्ता है और सामंती समाज की लोकरूढ़ि, लोक-लाज का पूरा तंत्र है, फिर भी मीरा ने कहीं हार नहीं मानी। साधु संगत की सात्विक ताप एवं कृष्णमिलन की आस से उन्होंने पूरे तंत्र को कठघरे में खड़ा कर दिया -

सतसंगति मा ज्ञान सुणै छी दुरजन लोगाँ नै दीठी।
मीरा रो प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो ना अँगीठी।

अतः मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में कहें तो ''मीरा का विद्रोह एक विकल्प-विहीन व्यवस्था में अपनी स्वतंत्रता के लिए विकल्प की खोज का संघर्ष है। उनको विकल्प की खोज के संकल्प की शक्ति भक्ति से मिली है। यह भक्ति आन्दोलन का क्रांतिकारी महत्त्व है। मीरा की कविता में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्त्री-स्वर की मुखर अभिव्यक्ति है। उनकी स्वतन्त्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही सामाजिक भी है।'' (भक्ति आन्दोलन एवं सूरदास का काव्य, पृष्ठ 43)

9.2 उद्देश्य:

इस इकाई में आप हिन्दी निर्गुण कृष्णभक्ति काव्य परम्परा के विशिष्ट कवि मीराबाई का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप -

- हिन्दी साहित्य ही नहीं भारतीय साहित्य के इतिहास में मीराबाई के योगदान को जान सकेंगे।
- भक्ति आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में कृष्णभक्ति काव्य परम्परा की भूमिका को समझ सकेंगे।
- कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में मीराबाई के महत्व को समझ सकेंगे।
- मीराबाई के व्यक्तित्व एवं रचनाओं के विषय में संक्षेप में जान सकेंगे।
- मीराबाई के काव्य की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- मीराबाई के संकलित पदों को पढ़कर उनकी भाषा, चेतना एवं संगीतात्मक अनुभूति प्रवणता से परिचित हो सकेंगे।

9.3 भक्ति आन्दोलन,हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य परम्परा एवं मीराबाई

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता है कि भक्ति का सूत्रपात महाभारत काल में हुआ और प्रवर्तन पुराण काल में हुआ किन्तु इसमें कोई दो राय नहीं कि भक्ति के बीज वेदों में भी विद्यमान हैं। वेदकाल के जो देवी-देवता हैं, वे प्रकृति की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक के रूप में दिखाई देते हैं, जहाँ मनुष्य इनका आहवान करता हुआ दिखाई देता है। उपनिषद युग इस अर्थ में अगला चरण है, जहाँ मनुष्य का ध्यान प्राकृतिक शक्तियों की अपेक्षा परमशक्ति के रूप में ब्रह्म की ओर उन्मुख हुआ और प्रकृति देवों के स्थान पर त्रिदेव - ब्रह्मा, विष्णु, महेश - की उपासना का मार्ग प्रशस्त होने के साथ ही व्यक्तिगत देवों की स्थापना भी हुई। फलतः भक्ति की संकल्पना भी अस्तित्व में आई।

इस प्रकार भारत में प्राचीन काल से ही साधना एवं मोक्ष के तीन मार्ग दिखाई देते हैं - ज्ञान, कर्म, भक्ति। उपनिषद् काल में ज्ञान की प्रधानता रही तो ब्राह्मण काल में कर्म की किन्तु जब ज्ञान एवं कर्म दोनों में ही आडम्बर बढ़ता गया और ये दोनों ही मार्ग आमजन के लिए दुरूह होते गये तो भक्ति का उद्भव हुआ, किन्तु इसी के साथ बौद्ध एवं जैन धर्म का भी उदय वैदिक संस्कृति के प्रतिरोध के रूप में हुआ, जिसने सदाचार, अहिंसा, नैतिकता एवं सात्विकता को रेखांकित किया, किन्तु बौद्ध एवं जैन धर्म में भी रूढ़िवादिता बढ़ती गयी। ठीक इसी समय दक्षिण में आलवारों, नयनारों एवं शंकराचार्य ने बौद्ध-जैन धर्म को कड़ी टक्कर देते हुए ऐसे भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया, जो धार्मिक आवरण में होने के बावजूद धार्मिक आन्दोलन के साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण है। भक्ति आन्दोलन का मूल चरित्र ही वर्ण एवं वर्ग विरोधी है, मनुष्यता केन्द्र में है। श्री के0 दामोदरन भी लिखते हैं, 'भक्ति आन्दोलन का मूल आधार भगवान विष्णु और उनके अवतारों, राम और कृष्ण की भक्ति थी। किन्तु यह शुद्धतः एक धार्मिक आन्दोलन नहीं था। वैष्णवों के सिद्धान्त मूलतः उस समय व्याप्त सामाजिक आर्थिक यथार्थ की आदर्शवादी अभिव्यक्ति थे। सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्होंने राष्ट्रीय नवजागरण का रूप धारण किया। सामाजिक विषय वस्तु में वे जातिप्रथा के आधिपत्य और अन्यायों के विरुद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण विद्रोह के द्योतक थे। इस आन्दोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय भाषाओं और उनके साहित्य की अभिवृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त किया। व्यापारी और दस्तकार सामंती अवशोषण का मुकाबला करने के लिए इस आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त करते थे। यह सिद्धान्त कि ईश्वर के सामने सभी मनुष्य, फिर वे ऊँची जाति के हों अथवा नीची जाति के, समान हैं, इस आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बन गया, जिसने पुरोहित वर्ग और जाति के आतंक के विरूद्ध संघर्ष करने वाले आम जनता के व्यापक हिस्सों को अपने चारों ओर एकजुट किया। इस प्रकार मध्ययुग के इस महान आन्दोलन ने न केवल विभिन्न भाषाओं और विभिन्न धर्मों वाले जनसमुदायों की एक सुसंबद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की, बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया।' (भारतीय चिंतन परम्परा, पृष्ठ 327) इसीलिए मैनेजर पाण्डेय भक्ति आन्दोलन को 'सामंती संस्कृति के विरुद्ध जनसंस्कृति के

उत्थान का अखिल भारतीय आन्दोलन' मानते हैं तो रामविलास जी भक्ति काव्य के 'सामंतवाद विरोधी रूप' और 'मानववादी स्वर' को विशेष रूप से रेखांकित करते हैं और उनकी स्पष्ट मान्यता है कि यह किसी एक वर्ग का आन्दोलन नहीं था, उसमें किसान, शिल्पकार, व्यापारी आदि सभी शामिल थे। वास्तव में भक्ति आन्दोलन सामंती व्यवस्था से पीड़ित और उससे मुक्ति के लिए छटपटाते संघर्षशील सभी वर्गों का व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन था, जिसके उत्थान में आलवारों - नयनारों की भूमिका है तो शंकराचार्य की भी। रामानुज में धार्मिक सद्भाव, रूढ़िहीनता का स्वर एवं लोकवादी चेतना तो है ही, उन्होंने अपने विशिष्टाद्वैत के माध्यम से आलवारों की भक्ति को दार्शनिक आधार देते हुए भक्ति की परम्परा को वेदों से भी जोड़ने का प्रयास किया और भक्ति का द्वार सभी के लिए खोल दिया, किन्तु खान-पान का निषेध वे मानते रहे। बावजूद इसके इस अर्थ में भी रामानुजाचार्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण है कि उनकी शिष्य परम्परा में ही रामानन्द भी आते हैं, जो उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन में अपना खास महत्व रखते हैं। पुरोहितवाद के खिलाफ प्रतिरोध का जो स्वर मुखरित किया, वह उनके अनुयायियों खासकर रामानन्द में ओर भी अधिक क्रान्तिकारी भूमिका में दिखाई देता है। इसीलिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामानन्द को 'मध्ययुग की समग्र स्वाधीन चिन्ता के गुरू, के रूप में रेखांकित किया है, क्योंकि सामंतवाद, वर्णवाद एवं छुआछूतवादी व्यवस्था से टकराने की जो परम्परा शुरू की उसमें शूद्र-द्विज, स्त्री-पुरुष, निर्गुण-सगुण, अमीर-गरीब, हिन्दू-'मुसलमान सभी अपनी लोक चेतना, स्थानीय लोक संस्कृति-भाषा के साथ साझीदार हो गये। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि, 'रामानन्द ने देखा कि भगवान के शरणागत होकर जो भक्ति के पथ में आ गया उसके लिए वर्णाश्रम का बंधन व्यर्थ है, इसीलिए भगवद्भक्त को खान-पान के झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। यदि ऋषियों के नाम पर गोत्र और परिवार बन सकते हैं तो ऋषियों के भी पूजित परमेश्वर के नाम पर सबका परिचय क्यों नहीं दिया जा सकता। इसी प्रकार सभी भाई-भाई है, सभी एक जाति के हैं। श्रेष्ठता भक्ति से होती है, जन्म से नहीं। (हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 56) इसमें कोई दो राय नहीं कि यह भक्ति आन्दोलन एक अखिल भारतीय आन्दोलन है, जिसमें आलवारों-नयनारों, रामानुजाचार्य, रामानन्द के साथ ही बंगाल में चण्डीदास से लेकर चैतन्य तक, महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर से लेकर नामदेव, तुकाराम, समर्थ गुरू रामदास तक, गुजरात के वैष्णव आचार्य मध्वाचार्य से लेकर ब्रज के वल्लभाचार्य, निम्बार्क, आसाम के शंकर देव की भी स्थानीय ही नहीं राष्ट्रीय सांस्कृतिक भूमिका है, किन्तु उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन का चरित्र बिल्कुल भिन्न है। जिसकी दो धाराएँ स्पष्टतः दिखाई देती है - निर्गुण एवं सगुण और ये दोनों ही धाराओं के मूल उत्स रामानन्द ही हैं। लोक में उक्ति ही हे -

भक्ती द्राबि उपजी लाए रामानन्द।
परगट किया कबीर ने सप्तदीप नौ खं ।।

अर्थात् भक्ति का उदय तो दक्षिण में हुआ, किन्तु रामानन्द के साथ उत्तर में पैदा हुई भक्ति विलक्षण है। सगुण काव्यधारा में स्पष्टतः दो अन्तर्धाराएं दिखाई देती हैं - कृष्ण भक्ति एवं रामभक्ति। जहाँ तक रामभक्ति काव्य परम्परा का प्रश्न है, वहाँ गोस्वामी तुलसीदास की केन्द्रीय

स्थिति है ओर वे इस परम्परा के ध्वजवाहक हैं। 'परहित' एवं लोकमंगल को मान्यता देते हुए भी वे वर्णाश्रमी व्यवस्था के पक्षधर हैं, शास्त्र-पुराण-मतवादी हैं, मन्दिर-मूर्ति, तीर्थ, व्रत, पर्व, संध्या वंदन, यज्ञ, जप-'तप, दान-पुण्य के समर्थक हैं और इसे धर्म का मूल भी मानते हैं। इस भक्ति के उदय को लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता स्पष्ट है, 'भक्ति का यह विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में अपना स्थान जमा रहा था, उसी उत्तर भारत में भक्तवर गोस्वामी जी का अवतार हुआ जिन्होंने वर्ण-धर्म, आश्रम धर्म, कुलाचार, वेद-विहित कर्म, शास्त्र प्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सब के साथ भक्ति का पुनः सामंजस्य स्थापित करके आर्यधर्म को छिन्न भिन्न होने से बचाया। ऐसे सर्वांगदर्शी लोक व्यवस्थापक महात्मा के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के चरित्र से बढ़कर अवलम्ब और क्या मिल सकता था।' किन्तु यह शुक्ल जी का विश्लेषण वस्तुतः उनके आर्यधर्म, आचार्य-'व्यवस्था से संचालित है। गोस्वामी तुलसीदास की रामभक्तिशाखा के महत्त्व एवं स्वीकृति को एक बड़ा कारण उनका समन्वयवाद है - लोक और शास्त्र का समन्वय, सगुण-निर्गुण का समन्वय, ज्ञान एवं भक्ति का समन्वय, वैराग्य और गार्हस्थ का समन्वय, पुराण और काव्य का समन्वय, पंडित और अपांडित्य का समन्वय।

जहाँ तक कृष्णभक्ति काव्य परम्परा का पक्ष है वहाँ वर्ण वर्ग की संकीर्णताओं के लिए कोई जगह नहीं है, क्योंकि मध्वाचार्य ने पहले ही अपने शिष्यों को जाति एवं सम्प्रदाय भेद पर आधारित कुरीतियों से दूर रहने की हिदायत दी थी। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि ब्राह्मणों एवं उच्च जातियों की तरह ही शूद्र भी विष्णु की आराधना करने के साथ ही वेद का अध्ययन भी कर सकते हैं। साधना के मार्ग में कोई द्वैत नहीं होना चाहिए। बल्लभाचार्य के पुष्टि सम्प्रदाय में भी जातिभेद के लिए कोई जगह नहीं थी। कृष्णदास, कुम्भनदास, और चतुर्भुज दास तो शूद्र थे, रसखान मुसलमान है और विट्ठलनाथ के प्रिय शिष्य हैं, मीराबाई तो स्त्री हैं, किन्तु कहीं भी अवला होने का भाव नहीं है। इस प्रकार छठी-नवीं शताब्दी के तमिल आलवारों, जयदेव, विद्यापति, चैतन्य महाप्रभु से लेकर अष्टछायी कवियों - सूरदास - आदि रसखान से होते हुए मीराबाई को साथ लेकर कृष्णभक्ति काव्य परम्परा का जो स्वरूप है वह अपने मूल चरित्र में सामंतवाद विरोधी है। वह सामंती समाज को संवेदना के धरातल पर अपनी रागमयता से ललकारता तो है ही सामंती देहवाद के स्थान पर प्रेममय रागभाव को स्वीकृति देता है, लोक भाषा के माधुर्य को रेखांकित करता है। इसके साथ ही जब चारों ओर रूढ़िवाद एवं कट्टरता का प्रभुत्व था, तब कृष्ण भक्त कवियों के सामूहिक कीर्तन गायन ने मनुष्य जीवन के अलगाव को दूर करके टूटे-फूटे हृदयों को राग चेतना से एकसूत्र में पिरो दिया। यह कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा का सबसे बड़ा प्रदेय है। यहाँ पुरुष-कवियों-महात्माओं के साथ स्त्री संत मीराबाई भी हैं। एकांतिक प्रेम और नाम साधना के साथ ही सामूहिक कीर्तन साधना पर बल दिया। पुराहितों, मुल्ला-मौलवियों, शास्त्रनिष्ठ आचार्यों की रीतिनीति के विरुद्ध इन संतों ने प्रेम को मनुष्य मुक्ति एवं ईश्वर प्राप्ति के लिए आवश्यक माना। प्रेम केन्द्रीय उर्जा है, श्रेष्ठ जीवन मूल्य है। मीराबाई ने स्पष्टतः कहा - **माई संवारे रंग राची**

साज सिंगार बांध पग घूंघर, लोक लाज तज नाची ।।

यद्यपि कि यह काव्यधारा विस्तृत क्षेत्र में फैली है, फिर भी लोकभाषा को स्वीकृति देती है। सामाजिक बंधनों के प्रति अस्वीकार का भाव है। प्रेमभक्ति एवं आत्मसमर्पण की प्रधानता है –

भजन करस्यां सती न होस्यां, मन मोहमो घण नामी

आराध्य के प्रति व्यक्तिगत रागात्मक संबंध एवं उच्चतर नैतिक बोध किन्तु इस आन्दोलन की सबसे महत्त्वपूर्ण देन मीराबाई है, जिनके यहाँ आत्मसमर्पण, आत्मविश्वास के साथ ही स्वाधीनता के लिए संघर्ष भी है जो आध्यात्मिक बाद में है, पहले वह सामाजिक है। नाभादास ने भक्तमाल में मीराबाई के संघर्ष को ठीक से पहचाना है -

सदरिस गोपिन प्रेम प्रकट, कलियुगहि दिखायो।
निरअंकुश अति नि र, रसिक जस रसना गायो ।।

× × × × ×

भक्ति निसान बजाय के काहूते नाहिन लजी
लोक लाज कुल वृंखला, तजि मीरा गिरधर भजी

मीरा के यहाँ शास्त्र एवं लोक दोनों के प्रति विद्रोह का भाव भी है तो प्रत्येक प्रकार की सत्ता के प्रति अस्वीकार का साहस भी। उन्होंने आध्यात्मिक एवं सामाजिक दोनों ही विरोधियों को खुली चुनौती दे दिया था क्योंकि उनमें अपने प्रिय के प्रति अटूट आस्था है -

लोक लाज कुल कानि जगत की, द बहाय जस पानी।
अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौरानी ।।

9.4 मीराबाई:व्यक्तित्व एवं रचना यात्रा

चरणदासी सम्प्रदाय के प्रणेता चरणदास ने 'शबद' नामक संग्रह ग्रन्थ में मीरा के बारे में लिखा है -

दास मीरा पत्नी प्रेम सनमुख चली छोड़ दई जाल कुल नाहिं माना।

इतना ही नहीं इनकी शिष्या दयाबाई ने भी 'विनय मालिका' में लिखा है कि -

विष का प्याला धोरि के, राणा भेज्यो छान
मीरा अचयौ राम कहि, हो गया सुधा समान

इसके अतिरिक्त चौरासी वैष्णवन की वार्ता, श्री तुकाराम बाबाच्या अभंगाची गाथा, मीरां माधुरी, भक्तमाल आदि ग्रन्थों में जो उल्लेख मिलता है, वह मीरा की लोकप्रियता के साथ ही उनके महत्त्व की ओर भी संकेत करता है किन्तु यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि भारतीय इतिहास में इस भक्तिमती नारी का कोई प्रामाणिक उल्लेख तक नहीं है। तलवारों की खनखनाहट

एवं युद्धघोष के तुमुलनाद के बीच, सुरा-सुन्दरी के आप्लावित सामंतवादी समय में मीराबाई का भक्तिरस से ओत-प्रोत प्रणय निवेदन एवं सर्वस्व समर्पण का भाव भारतीय भक्ति आन्दोलन का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। रामचन्द तिवारी ने लिखा है कि, 'मध्यकालीन सामंतीय परिवेश का अतिक्रमण करने वाला मीरा का संघर्षशील दर्दभरा व्यक्तित्व अत्यन्त क्रान्तिकारी है।' मीरा: एक पुनर्मूल्यांकन, पृष्ठ 83) किन्तु ऐसे क्रान्तिकारी स्त्री भक्त कवयित्री का जीवनवृत्त इतिहास के लिए उलझन बना हुआ है। मीरा के जीवन के विषय में जो जानकारी विविध स्रोतों से उपलब्ध है, वह विवादास्पद है। फिर भी अनेक तथ्य ऐसे हैं, जिस पर सर्वाधिक विद्वान सहमत हैं। सर्वप्रथम कर्नल टाड ने 'ऐनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑव राजस्थान' में मीरा की जीवनी पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हुए सिद्ध किया है कि वे मेड़ता के राठौर की पुत्री और मेवाड़ के राणा कुम्भा की पत्नी थी। टाड से प्रभावित होकर गोवर्धन माधोराम त्रिपाठी ने 'क्लासिकल पोयट्स ऑफ गुजरात' में मीरा का समय ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में निर्धारित किया है और कृष्ण लाल मोहन लाल झावेरी ने 'माइल स्टोन्स इन गुजराती लिटरेचर' में मीरा का जन्म 1403 ई. और मृत्यु 1460 ई. में माना है । टाड के ही साक्ष्य पर ग्रियर्सन ने मीरा को 1420 ई. में उपस्थित माना और राजा कुम्भकर्ण को उनका पति माना है। शिवसिंह सेंगर ने भी टाड के आधार पर 1413 ई. में मीराँबाई का विवाह राणा कुम्भकर्ण के साथ होना स्वीकार किया है। टाड का मत भ्रान्त धारणाओं पर आधारित है। 'टाड ने मीराँ को मेड़तानी माना था और मेड़ता पर सबसे पहले जोधपुर के राव जोधाजी के चतुर्थ पुत्र दूदा जी ने सन् 1461 ई. में अधिकार किया था। अतः 1461 ई. के पूर्व मीराँ का अस्तित्त्व नहीं माना जा सकता था।' (हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, पृष्ठ 448)। जोधपुर के देवी प्रसाद मुंसिफ ने टाड के मत का खण्डन करते हुए मीरा के सम्बन्ध में स्वीकार किया है कि 'मीराँबाई मेड़तिया राठौर रतनसिंह की बेटी, मेड़ते के राव दूदा जी की पोती और जोधपुर को बसाने वाले राव जोधा जी की प्रपौत्री थी। इनका जन्म गाँव चोकड़ी (कुड़की) में हुआ था, जो इनके पिता की जागीर में था। ये सन् 1516 ई. में मेवाड़ के मशहूर महाराणा सांगा के कुँवर भोजराज को ब्याही थीं। (हिन्दी साहित्य कोश, भाग दो, पृष्ठ 448)। टाड की भ्रान्ति का निराकरण हर विलास सारदा (महाराणा सांगा, अजमेर 1918) और गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (उदयपुर राज्य का इतिहास) ने भी किया। इन विद्वानों ने मीरा का जन्म सन् 1498 ई. के आस-पास निश्चित किया है। मेड़तियों के कुलगुरुओं की बहियों में भी उनका जन्म वि.सं. 1555 वैशाख सुदि 3 अंकित है और जन्मस्थान के रूप में जोधपुर राज्य का बाजोली ग्राम प्रसिद्ध है। अब यही मत अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है; जिसमें पं.परशुराम चतुर्वेदी एवं रामकुमार वर्मा उल्लेखनीय हैं। मिश्रबन्धुओं ने भ्रमवश विवाह काल (1516 ई.) को जन्मकाल माना है, जो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी स्वीकार करते हैं। विवाह के कुछ ही वर्षों बाद उनके पति की मृत्यु हो गयी और इसके तीन चार वर्ष बाद पिता एवं देवर भी नहीं रहे। किन्तु मीरा के भावलोक में कोई अन्तर नहीं आया क्योंकि उनके जीवन में गिरधर नागर ही सर्वस्व हैं -

हेली म्हांसू हरि बिन रह्यो न जाय
सास लड़ै मेरी नंद खिजावै राणा रह्या रिसाय ।।

किन्तु यहाँ यह स्पष्ट है कि पति के जीवित रहते मीराबाई ने पारिवारिक जीवन की मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया और उनके पति कुंवर भोजराज ने भी उनके उत्साह में कोई बाधा नहीं पहुँचाई, किन्तु पति की मृत्यु के बाद वे राजपरिवार की अपेक्षा पर खरी नहीं उतरी क्योंकि जो बचपन से ही जिसने कृष्ण को अपना पति मान लिया हो, वहाँ वैधव्य के लिए कोई कहाँ जगह होगी ? वे भावलोक में सदैव सधवा थीं, गिरधर नागर कृष्ण का नाम-स्मरण, कीर्तन ही उनका जीवन था और यह सामंती सत्ता राज परिवार के लिए असह्य था। इसलिए वे सामंती एवं राज सत्ता के निशाने पर आ गयी, उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित किया गया, उन्हें कुलनाशिनी कहा गया, किन्तु वे तो 'गिरधर के हाथ बिकानी' थी। फलतः किसी भी सत्ता से हार नहीं मानी, कहीं-कहीं प्रत्यक्ष चुनौती भी दिया –

राणा जी ! अब न रहूँगी तोरी हटकी।
साध संग मोंहि प्यारा लागै, लाज गई घूंघट की।

राणा जी ! थे क्यां ने राखो म्यासूं बैर।
थे तो राणा जी म्हाने सड़ा लागो, ज्यों ब्रच्छन में कैर।

मीरा का जीवन जटिल, विषम एवं दुःख-दर्द से भरा है, इसीलिए उनकी कविता में गहरी टीस, बेचैनी के साथ ही विषाद भी है, जो सामंती व्यवस्था की प्रताड़ना एवं रूढ़िवादी मूल्यों से पैदा हुआ है, कृष्ण मिलन की आस उन्हें निर्भय एवं विवेकवान बनाये रखती है –

आवत मोरी गलियन में गिरधारी
मैं तो छुप गई लाज की मारी।

वे पुष्कर, वृन्दावन, आदि की आध्यात्मिक यात्रा करते हुए द्वारिका पहुँची और यहाँ राव रणछोड़ जी के मंदिर को अपना आश्रय बना लिया। उन्होंने अपना जीवन साधु संगत एवं कृष्ण को समर्पित कर दिया। बेसुध होकर कृष्णमय हो गयी, उन्हें ही अपना पति मानती-'जानती थी -

लगण म्हारी स्याम शूं लागी
णेणा णिरख शुख पाय।
साजां सिंगार शुहागां सजणी प्रीतम मिड़यां धाय।
बरणा वरयां वापुरो जणम्या जणम णसाय।
बरथां साजण सांवरो म्हारो चुड़ड़ो अमर हो जाय।

और यहीं 59 वर्ष की अवस्था में विक्रम संवत 1604 में माह सुदी 5 को उनका स्वर्गवास हो गया। मान्यता है कि मीराबाई भक्ति-आवेश में द्वारिका स्थित अपने सावरिया राव रणछोड़ जी की मूर्ति में समा गई, किन्तु इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। समग्रतः मीरा का जीवन आत्मदान का पर्याय है। गिरधर नागर के प्रति मुक्त भाव से समर्पण ही उनकी भक्ति भी है, जीवन भी और काव्य भी। उनका समर्पण रूढ़ियों से मुक्त तो है ही सामंतवाद विरोधी भी है, वह

सत्ता विरोधी भी है चाहे वह राजसत्ता हो या धर्म की सत्ता। इस प्रकार वे एक विद्रोहिणी नारी के रूप में दिखाई देती है। उन्होंने लोकलाज, कुलकानि तज 'सन्तन संग बैठ-बैठ' भजन किया, 'पग घुँघरू बाँध नाची, मेवाड़ राज परिवार की पुत्रवधू होकर 'सिसोदिया' राजाओं की परम्परागत लोक लाज के मिथक को तोड़ा, किन्तु कहीं भी वे हतदर्प नहीं है। इतना ही नहीं सम्प्रदायवाद में भी नहीं बँधीं, किसी एक गुरू को मान्यता नहीं दी इसीलिए यहाँ निर्गुण-सगुण दोनों ही धाराओं के बीज तत्व तो दिखाई देते हैं।

मीराबाई द्वारा रचित कही जाने वाली जो पूर्ण या अपूर्ण रचनाएँ प्राप्त हैं अथवा जिनका उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है, उनकी कुल संख्या ग्यारह है - (1) गीत गोविन्द की टीका, (2) नरसी जी का मायरा (माहेरो), (3) राग सोरठ का पद, (4) मलार राग, (5) राग गोविन्द, (6) सत्यभामानुं रूसणं, (7) मीरां की गरबी, (8) रूक्मणीमंगल, (9) नरसी मेहता की हुण्डी, (10) चरीत (चरित्र), (11) स्फुट पद। इसमें से केवल स्फुट पद ही मीराबाई की प्रामाणिक रचना है, अन्य रचनाओं में से कुछ तो किसी अन्य कृतिकार द्वारा रचित हैं, कुछ सम्पादन मात्र है, कुछ लोक प्रचलित जनश्रुतियों अथवा किंवदन्तियों के आधार पर मीराँ के नाम से सम्बद्ध हो गयी हैं। यही स्फुट पद 'मीराबाई की पदावली' के नाम से विभिन्न रूपों में प्रकाशित है। इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं -

(1) 'मीराँबाई के भजन' (नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1898 ई.)

(2) 'मीराँबाई की शब्दावली' (वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद 1910 ई.)

(3) 'मीराँबाई की पदावली' (साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1932 ई.)

(4) 'मीराँबाई की प्रेम साधना' (अजन्ता प्रेस, पटना, 1947 ई.)

(5) 'मीराँ स्मृति ग्रन्थ' (बंगीय परिषद, कलकत्ता, 1950 ई.)

(6) 'मीराँ वृहत पद संग्रह' (लोक सेवक प्रकाशन, काशी, 1952 ई.)

(7) 'मीराँ माधुरी' (हिन्दी साहित्य कुटीर, काशी, 1956 ई.)

(8) 'मीराँ सुधा सिन्धु' (मीराँ प्रकाशन समिति, भलवाड़ा, राजस्थान 1957 ई.)

(9) मीरा ग्रन्थावली (दो भाग) (वाणी प्रकाशन, दिल्ली)

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

1. मीराबाई का जन्म.....प्रदेश में हुआ।
2. मीराबाई का जन्म.....ई. में हुआ।

3. मीराबाई की मृत्यु.....नामक स्थान पर हुई।
4. मीराबाई.....शाखा की कवयित्री है।
5. मीराबाई की भक्ति.....भाव की है।

9.5 प्रमुख प्रवृतियाँ:

हिन्दी भक्ति आन्दोलन में कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा के बीजतत्व जयदेव के गीत गोविन्द एवं विद्यापति की पदावली में विद्यमान है, किन्तु सूरदास ने गोपाल कृष्ण के गोकुल, वृंदावन और मथुरा के जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रसंगों को लेकर श्रीमद्भागवत की कथा का कायान्तरण ही कर दिया, इसीलिए सूरसागर को भक्तिसागर एवं रागसागर भी कहा गया। वात्सल्य एवं श्रृंगार का उद्घाटन जैसा सूरदास ने किया, वह अनूठा है। कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, श्री भट्ट, रसखान भी कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में उल्लेखनीय है, किन्तु मीराबाई की भूमिका विशेष रूप से रेखांकित करने योग्य है। भक्ति के ऐसे दौर में जब स्त्री को माया एवं कामिनी के पर्याय के रूप में समझा जा रहा था, तब वे स्त्री अस्मिता की पहचान के रूप में दिखाई देती हैं। वे सामंतवाद विरोधी चेतना से लैस ऐसी कवयित्री हैं, जिन्होंने सामाजिक जीवन एवं आध्यात्मिक जीवन दोनों में व्याप्त रूढ़ियों, आडम्बरों को उद्घाटित करने का साहस दिखाया। वे कृष्णभक्ति को नयी भंगिमा देती हैं, नये आयाम प्रदान करती हैं, कीर्तन एवं नामस्मरण का भाव सागर निर्मित करती हैं। मैनेजर पाण्डेय का कथन महत्वपूर्ण है, 'भक्तिकाल के कवियों में मीराबाई का प्रेम सबसे अधिक सहज, उत्कट और विद्रोही है। उनको प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए किसी अलंकार की जरूरत नहीं है, न कबीर की तरह रूपक की, न जायसी की तरह लोककथा की और न सूर की तरह गोपियों की। वहाँ सीधा और प्रत्यक्ष प्रेम निवेदन है, निर्भय और निर्द्वन्द्व आत्माभिव्यक्ति।' (भक्ति आन्दोलन और सूरदास काव्य, पृष्ठ 40-41) मीराबाई के काव्य की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ हैं -

9.5.1 भक्ति का स्वरूप:

15वी-16वीं शताब्दी में उत्तर भारत में वैष्णव भक्ति के विभिन्न सम्प्रदायों - वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, चैतन्य सम्प्रदाय, हरिदासी समप्रदाय, राधास्वामी आदि - ने कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा की लौ प्रज्वलित की थी। इन सम्प्रदायों की भक्ति पद्धति में भिन्नता के बावजूद मूलभूत साम्यता है जैसे सभी सगुणोपासक हैं, सभी के आराध्यदेव श्रीकृष्ण हैं, सभी का मुख्य आधार श्रीमद्भागवत की माधुर्य भक्ति है, किन्तु मीराबाई का स्वर इनसे भिन्न हैं। उन्होंने भक्तिक्षेत्र में व्याप्त पुरुषवर्चस्ववादी मान्यताओं के साथ ही रूढ़िवादी बन्धनों एवं मर्यादाओं को तोड़ दिया। इसीलिए उनका विद्रोही रूप कबीर से मिलता है। कबीर ने भी 'अनुभव' को महत्व दिया तो मीराबाई ने भी। इस साम्यता के कारण ही मीराबाई में निर्गुण प्रभाव भी खोजे गये, जिसे नजरअन्दाज़ भी नहीं किया जा सकता, किन्तु इतना स्पष्ट है कि भक्ति आन्दोलन के बड़े कवियों - कबीर, जायसी, सूर, तुलसी - की तरह ही मीरा की भक्ति का अपना विशिष्ट स्वर है, जो

सम्प्रदाय निरपेक्ष है। वे न तो पुष्टिमार्गीय हैं, न निम्बार्क या विश्नोई सम्प्रदाय, सखी, हरिदास, राधास्वामी सम्प्रदाय की अनुयायी। वे दक्षिण के 'पाँचरात्र तंत्र' एवं बंगाल के चैतन्य सम्प्रदाय से प्रभावित हो सकती है, किन्तु उनकी भक्ति श्रीमद्भागवत में वर्णित माधुर्य भक्ति की एक विशिष्ट परम्परा है।

नारद भक्ति सूत्र के आधार पर देखें तो मीरा की भक्ति प्रेमरूपा भक्ति है। वे गिरधरमय हैं। वे अपने 'गिरधर' के 'बीड़द का गान' बड़ी श्रद्धा, तन्मयता एवं भाव विभोरता के साथ करती हैं। वे एक ओर कहती हैं - 'मीरा के प्रभु गिरधर नागर घर वर पायो पूरो' तो दूसरी ओर कहती हैं - 'पारबिरम पूरण पुरसोतम व्यापक रूप लखाऊँ।' वे पूरी तरह पतिव्रता हैं - 'मैं पतिभरता पीव की हो, मोल लेई चेरी'। इसीलिए प्रतिकूल परिस्थिति में इष्टदेव के प्रति उनका अनुराग कम नहीं होता है बल्कि बढ़ता ही जाता है।

बालपन ते मीराँ कीनी। गिरधर लाल मीताई।।
सो तो अब छूटत नांहि क्यूँ हो। लगन लगी बुरी भाई।।

क्योंकि मीरा के प्रभु अविनासी हैं, दुःख समाप्त कर देने वाले हैं, सर्वशक्ति सम्पन्न ऐसे प्रभु हैं जिनका ध्यान ब्रह्मा और विष्णु भी करते हैं। मीरा के प्रभु अपूर्व सौन्दर्यशाली, गोवरधन धारण करने वाले हैं, मोर मुकट एवं पीताम्बर धारण करने वाले हैं -

जमुना की नीकट बजाई बंसी
जीव जेत जल थल के मोहे और मोहे वन के तपसी।।
सुर नर मुनी मोह लिए हो खुल गए ताल हसे तपसी।।
मीरा के प्रभु हरी अबीनासी, चरण कंवल में प्राणबसी।।

9.5.2 साधना और दर्शन:

मीरा सगुणोपासक भक्त कवि हैं। उनके प्रभु गिरधर नागर हैं, जिनकी भव्य एवं मुग्ध कर देने वाली छवि को मीरा बार-बार निहारती रहती है - 'पिया म्हारे नैणा आगे रहीज्यो जी।' उनमें निर्गुण तत्त्व है, किन्तु वे निर्गुणमार्गी नहीं हैं, सगुण मार्गी हैं, क्योंकि वे श्रीमद्भागवत की तरह अवतार एवं लीला में विश्वास करती हैं और कहती हैं कि -

जनम जनम को पति परमेसुर। जां मैं रच्यौ है जग सारो
मीरा के प्रभु गिरधर नागर। जीवन प्रान हमारौ।।

इसलिए वे 'धूपदीप' से पूजा करती हैं और प्रतिदिन चरणामृत पीती हैं -'चरणामृत को नेम हमारौ'। भालतिलक एवं तुलसी की माला को भी महत्वपूर्ण मानती हैं - 'भाल तिलक तुलछा की माला, फैरत कौ नटै'। आराधना के क्षेत्र में साधु संगत एवं कीर्तन की महत्वपूर्ण मानती हैं - 'साधु संगत अरु भजन करत मोही देत क्लेस माहाई'। तमाम क्लेश के बावजूद वे चैतन्य महाप्रभु की तरह **'पग घुँघरू बाँध'** नाच उठती हैं और एकनिष्ठ भाव से 'गिरधर नगार'

के रंग में रँग जाती हैं - **पायोजी म्हें तो स्याम रतन धन पायो।'** किन्तु उनकी साधना कठिन है, उनका मार्ग दुर्गम है। उन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर 'गिरधर नागर' को प्राप्त किया है - **'मीराँ कहैं प्रभु गिरधर नागर लीयौ छै सीस सटै।'** उन्हें प्रभु स्मरण के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उनकी भक्ति अनन्य है - **'हरि जी मेरा म्है हरि जी की जगत करौ क्यूँ हासी'।** हरि, राम, कृष्ण के प्रति उनका भाव अभेद है।

मीरा वैष्णव भक्तों और दक्षिण के आलवार भक्तों की तरह ही भक्ति को सर्वोपरि महत्व देती हैं और इस भक्ति के लिए नाम महिमा, गुण स्मरण, स्तुति, सत्संग, वैराग्य, श्री कृष्ण की विविध लीलाओं के गान, शरणागति भाव को महत्वपूर्ण मानती हैं। नवना भक्ति अपने भव्य रूप में मीरा के पदों में व्याप्त है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन-वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन के द्वारा वे माधुर्य भाव से 'गिरधर' के भावलोक में रहती है - 'पिया मोही आरत तेरी।' राधा को सौत के रूप में याद करती हैं तो वैष्णव एवं आलवार भक्तों की तरह ही गुरू की महिमा को बार-बार रेखांकित करती हैं, किन्तु मीरा के गुरु स्वयं आराध्यदेव गिरधर नागर ही हैं।

9.5.3 प्रेम और सौन्दर्य:

सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है - अपने आराध्य के साथ व्यक्तिगत रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति। कबीर ने अपने को बहुरिया' माना, सूर ने 'गोपी' माना, तो आंडाल भी अपने को श्रीरंग की पत्नी समझती थीं। अक्क महादेवी भी शिव की उपासना दाम्पत्य भाव से करती हैं। मीराबाई भी साँवरे गिरधर कृष्ण को अपना पति मानती है और उनके रूप पर मुग्ध हैं - 'गिरधर म्हारो सांचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।' दरअसल अन्य कृष्ण भक्त कवियों की तरह ही मीरा का प्रेम कृष्ण के रूप माधुर्य की देन है। यह रूप माधुर्य मीरा के एक-एक रोम में बस गया है। इसीलिए वे कहती हैं 'पिया बिन सूनो है म्हारो देस' क्योंकि उनकी आँखों में तो गिरधर का रूप बसा है - 'माई री! म्हारे नेणा बाण पड़ी।' इसीलिए सुध बुध के साथ, पूरी राग चेतना के साथ अपने पति गिरधर को रिझाना चाहती है और इन्हें किसी की भी परवाह नहीं है -

म्हाँ गिरधर आगे नाचाँ री।
नाच नाच म्हाँ रसिक रिझावाँ, प्रीत पुरातन जाँचाँ री।
स्याम प्रीत री बाँध घुंघरिया, मोहन आगे नाँचाँ री।
लोक लाज कुल री मरजादा जग माँ, नेक ना राखाँ रीं
प्रीतम पल छिन ना विसरावाँ, मीरा हरि रंग राची री।

सूर की गोपियाँ भी कृष्ण से प्रेम करती हैं, किन्तु मीरा का प्रेम अलंकरण की चेतना से मुक्त सहज मन का प्रेम है। मीरा पूरे लोक को अपने प्रेम में भागीदार बनाना चाहती हैं। उनकी इच्छा है कि सभी उनकी तरह गिरधर की छवि को अपनी आँखों में भर लें - 'प्रीतम पल छण णा विसरावां'। यहाँ पूरा लोक मीरा के कीर्तन में शामिल है क्योंकि मीरा सबकी आँखों से कृष्ण को देख रही है। इसीलिए वे कृष्णमय हैं - 'माई! म्है तो साँवरे रंग राची।'

9.5.4 उत्कट विरहानुभूति एवं वेदना का स्वर:

शिव कुमार मिश्र ने लिखा है कि, 'मीरा की कविता प्रेमा-भक्ति की कविता है, ऐसी कविता है जो 'जग की कविताई' से परे है। (भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, पृष्ठ 127) ब्रजनाथ ने जो बात घनानन्द की कविता के लिए कही थी वह मीरा की कविता के लिए भी सोलहो आने सच है -

जग की कविताई के धोखे रहें, ह्याँ प्रवीननि की मति जात जकी।
समुझै कविता घन आनन्द की, हिम आँखिन नेह की पीर तकी।।

इतना ही नहीं आचार्य शुक्ल ने भी जिस तरह घनानन्द को 'प्रेम मार्ग के धीर-गंभीर पथिक' के रूप में याद किया था, उसी तरह मीरा को भी उनके प्रेम की गम्भीरता, समर्पण, एकनिष्ठ विश्वास के कारण भक्तिकाल में अलग से रेखांकित किया जा सकता है। उनके यहाँ न तो क्षोभ है ओर न ही आक्रोश, न प्रिय से मिल पाने की कुंठा, बल्कि गहरी तन्मयता है, स्वच्छन्द मनोभूमि है -

नाचण लागी तद घूंघट कैसो, लाक लाज तिणका ज्यूं तोर्यौ
नेकी बदी हूं सिर पर धारी, मन हस्ती अंकुश दे मोर्यौ
प्रकट निसांण बजाय चली म्हे, राणा राव सकल जग जोर्यौ
मीरा सकल घणी कै सरणे, कहा, भूपति मुख तोर्यो

और यह प्रेमानुभूति सघन एवं सान्द्र है। तभी तो 'प्रेम तृष्णा' की लौ कभी यहाँ मद्धिम नहीं होती। वे कृष्ण की रूपमाधुरी पर मुग्ध हैं, उनकी छवि को अनेक तरह से अपने भीतर कैद कर लेना चाहती है -

आली री मेरे नयनन बान पड़ी
चित्त चढ़ी मेरै माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाड़ी पंथ निहारूं, अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूं, जीवन मूल जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोक कहैं बिगड़ी।

यहाँ सौन्दर्य एवं अनुभूति में कोई द्वैत नहीं है। उन्होंने साहस के साथ कहा 'जाके सिर मोर मुकट मेरौ पति सोई' क्योंकि जीवन की कठोर, निर्मम स्मृतियाँ प्रेमानुभूतियों में ढल गयी हैं। जीवन सिंह का कथन है, 'प्रेम की अनुभूति पर स्त्री-जीवन के वैषम्य की गहरी पीड़ा का रंग मीरा की कविता में इस तरह चढ़ा हुआ है कि उनका प्रेम पीड़ा में बदल जाता है और पीड़ा प्रेम में।' (मीरा: एक पुनर्मूल्यांकन, पृष्ठ 249) उनके महत्वपूर्ण पद 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' में इसकी व्यंजना है। उनका प्रेम निडर एवं जीवन दृष्टि की स्पष्टता से परिपूर्ण होने के कारण आँसुओं के जल से आप्लावित है। कबीर, जायसी, सूर के यहाँ भी आसुओं की धार है, किन्तु भक्ति आन्दोलन में मीरा इकलौती है, जिन्होंने आँसुओं से सींच-सींचकर प्रेमबेलि बोई है।

इसीलिए संयोगमय होते हुए भी संयोग वृंगार के प्रगल्भ चित्र यहाँ नहीं है - 'स्याम प्रीत री बांध घुंघर या मोहण म्हारो सांच्यारी' फिर भी मीरा प्रेम की ऐसी दीवानी के रूप में सामने आती है, जो सदेव विरहिणी ही रहना चाहती है। भक्ति आन्दोलन में राबिया, आंडाल, अक्क महादेवी, जनाबाई, कान्होपावा आदि के समसक्ष मीरा का तेवर विशिष्ट है। विरह ही उनकी काव्यानुभूति, जीवनानुभूति है -

विरह दरद उरि अंतर मांही, हरि विणि सब सुख कोने हो ।'

किन्तु मीरा के प्रेम में स्वाभाविक विरह की उष्णता ही ज्यादा है। यह ऐसा विरह है जो सांसारिक एवं भौतिक अनुभव से निकला है, किन्तु अपनी निष्पत्ति में यह आध्यात्मिक भी है। इस विरहानुभूति में भी मीरा में कहीं विछोह नहीं है। यद्यपि कि वे अन्य विरहणियों की तरह ही कृष्ण की निरन्तर प्रतीक्षा में, हैं, 'अबोलणा में अवधी बीती, काहे की कुसललात' और वे यह भी कहती हैं कि 'जो मैं जाणती रे, प्रीत किया दुख होय/नगर ढिंढोरा फेरती, प्रीत करौ मत कोय' किन्तु वे 'अमर चुड़ला' पहन कर सदा सुहागिन रहना चाहती हैं और उनका यह दर्द आज भी करोड़ो कंठों में जीवित है -

हेरी म्हाँ तो दरद दिवाणी म्हाराँ दरद णा जाण्याँ कोय।
घायड़ री गति घायड़ जाण्यां हिबड़ी अगण संजोय,

डा. शिवकुमार मिश्र की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, 'मीरा की ये दरद पगी पंक्तियाँ, जिसे हमने 'जग की कविताई' कहा है, उसकी कसौटी पर निरी सामान्य साबित होती हैं। न कोई वाग्वैदग्ध्य, न कोई अलंकार-सज्जा और न कोई दूरवर्ती शास्त्रीय व्यंजना। यहाँ कविता सीधे हृदय की आर्त्त पुकार बनकर सामने आई है।' फिर भी शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन करें तो प्रौढ़ पूर्वराग की दस दशाओं-लालसा, उद्वेग, जागरण, तनाव, जड़िमा, व्यग्रता, व्याधि, उल्लास, मोह (मूर्च्छा), मरण-के बीज तत्त्व यहाँ विद्यमान हैं। इसके साथ ही समंजस पूर्वराग की दस दशाएँ - अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कीर्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मृत्यु - भी खोजी जा सकती है, इनकी शास्त्रीय व्यंजनाओं को भी रेखांकित किया जा सकता है, किन्तु हृदयस्थ गिरधर तो सदेव मीरा की आँखों में बसे हैं।

9.5.5 प्रतिरोध का स्वर एवं स्त्री स्वातंत्र्य

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने मीराबाई की काव्यानुभूति के बहाने सम्पूर्ण भक्ति आन्दोलन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि 'भक्त कवि भावना की साधना करते थे। उनकी साधना मुख्यतः व्यक्तिगत थी। लेकिन चूँकि वे अपनी निष्ठा के अनुसार आचरण भी करते थे इसलिए ह्रासोन्मुखी रूढ़ियाँ उनका विरोध करती थीं। भक्त कवि इन विरोधों से टक्कर लेते थे।' (मीरा का काव्य, पृष्ठ 88) मीरा ने पद-पद पर सामंतवादी सत्ता को जो टक्कर दी है उससे पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था की चूलें हिलती हुई दिखाई देती है। शिवकुमार मिश्र की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, 'मीरा अपने माध्यम से, मध्यकालीन समाज में घुटती-कराहती, नाना प्रकार के सामाजिक अत्याचारों और पारिवारिक प्रताड़नाओं को सहती आम नारी का भी अहसास कराती हैं, उसके

दुःख और उसकी कसक को भी अपने माध्यम से वाणी देती हैं, उस समाज को नंगा करती हैं जहाँ नारी इतनी परवश और इतनी असहाय है कि उसका समाज, समाज के बनाए नियमों के खिलाफ, उठा एक पग भी, उसे भ्रष्ट, पतिता ओर 'बिगड़ी' करार देने के लिए पर्याप्त है, भले ही उसके इस प्रयास के पीछे उसके अन्तर्मन की कितनी ही गहरी, कितनी ही उदात्त और कितनी ही पवित्र प्रेरणा क्यों न हो।' (भक्ति-आन्दोलन और भक्ति काव्य, पृष्ठ 127)

मैनेजर पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है कि कबीर, जाससी, सूर के सामने तो मात्र भाव जगत की चुनौतियाँ हैं, किन्तु मीरा के लिए तो भाव जगत से ज्यादा इस लोक की, भौतिक जगत की, सामाजिक जीवन की चुनौतियाँ हैं। मीरा के समक्ष पुरुषवर्चस्ववादी सामाजिक जीवन भी है तो आध्यात्मिक जीवन भी। उन्होंने दोनों की आतंककारी एवं भयावह स्थितियों से जो संघर्ष किया है उसका साक्षी उनका जीवन भी है, काव्य भी और उस समय के ऐतिहासिक दस्तावेज भी। मैनेजर पाण्डेय की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, 'मीरा का विद्रोह अंधे के हाथ लगा बटेर नहीं है। वे अपने संघर्ष की परिस्थितियों के बारे में पूरी तरह सजग हैं। विरोधी शक्तियों के खूंखार स्वभाव और अपनी वास्तविक स्थिति की पहचान के बाद ही उन्होंने कहा है कि, 'तन की आस कबहूँ नहिं कीनो, ज्यों रण माँही सूरो।'

मीरा की यह चुनौती अर्थपूर्ण एवं धारदार तो है ही उसमें सजग एवं निर्भय स्त्री स्वर भी है, जिसमें आक्रोश की अनुगूंज है। अपनी अस्मिता एवं स्वतंत्रता के साथ ही स्त्री जाति की स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता की कामना है तथा इसकी प्राप्ति के लिए विद्रोह भी है -

पद घूँघरू बाँध मीराँ नाची रे।
लोग कहे मीराँ भई बावरी सास केवे कुलनासी रे।
विषरो प्यालो राणोजी भेज्यो, पीवत मीराँ हाँसी रे।
तन मन वाराँ हरि चरणां में, दरसण मरित पास्याँ रे।
मीराँ रा प्रभु गिरधर नागर रावली सरणाँ आस्याँ रे।।

9.6 शिल्प विधान

मीरा के पद उनके निर्मल-निश्छल तन-मन उद्गार हैं और इसके लिए मीरा की किसी कला की जरूरत भी नहीं है न ही किसी उक्ति वैचित्र्य की जरूरत है और न किसी अलंकार सज्जा या वक्रोक्ति की, या शास्त्रीय व्यंजना की। लोक भाषा का जो समृद्ध एवं बहुआयामी परिवेश है, वह मीरा के व्यापक जीवनानुभव की ओर संकेत करता है। उनके यहाँ लोकमान्यताओं के साथ ही लोक भाषा एवं लोक प्रचलित शब्दों का प्रयोग है। किन्तु मुख्य रूप से इनके पदों की भाषा ब्रजमिश्रित राजस्थानी है। कहीं-कहीं गुजराती का भी प्रभाव है। श्री नरोत्तमदास ने भी इसे स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'मीराबाई की कविता की भाषा राजस्थानी है, जो पश्चिमी हिन्दी का एक प्रधान विभाग है। पंजाबी, खड़ी बोली, पूरबी आदि का आभास भी कई स्थानों पर मिलता है।' इसका मुख्य कारण मीरा की साधुसंगत एवं तीर्थाटन भी है और

भक्ति आन्दोलन का राष्ट्रीय तथा लोकवादी चरित्र भी। फिर भी यह स्पष्ट है कि 'मीरा के पद उनके भावविभोर अन्तःकरण से स्वतः मिश्रित अभिव्यक्ति थे जो मीरा की अपनी भाषा में व्यक्त हुए। मीरा के पद एक भक्त हृदय के निश्छल, निर्भीक और प्रेमपूर्ण भावों की अभिव्यक्ति हैं, जो अनायास उच्चरित हुए हैं।' (ग्रन्थावली-1, कल्याण सिंह शेखावत, पृष्ठ 71)। देवरो, पुरबली, राड़-पछाड़, घर धन्धों, पीहरियों, सासरो, पुरसोतम, विरस, बीड़द, जासी, पिछतासी, आदि शब्द इसके प्रमाण है। इसके साथ ही सेल, वाण, राजपाट, नृप, राजा, राव, अमराव जैसे युद्ध सम्बन्धी शब्दावली भी हैं। इतना ही नहीं वे अपने कृष्ण को भी अनेक नामों से सम्बोधित करती हैं।

वस्तुतः मीरा के पद गीत ही हैं, जो सहज, सात्विक, निश्छल भक्त मन के स्वतः प्रसूत उद्गार हैं। अतः यहाँ पाण्डित्यपूर्ण शब्द विन्यास, विद्वतापूर्ण आलंकारिक छन्द श्रृंखला खोजना बेमानी है, क्योंकि यह स्वच्छन्द हृदय का सहज प्रकाशन है। गीति सृष्टि का सभी प्रक्रियाएं - आत्मानुभूति, भाव जागृति, मनोवेगों का उद्वेलन, भावदशा की चरम परिणति, भावयोग का शब्द योग से समन्वय, भावानुरूप शब्द-व्यंजना, भावदशा का उतार-चढ़ाव, अनुभूति की संकलित पूर्णाभिव्यक्ति पर गीत का अन्त आदि विद्यमान हैं। मीरा के पदों में स्वानुभूति के सत्योद्गारों की लम्बी वृंखला है, जीवनसत्य एवं काव्य साधना का अभेदत्व दिखाई देता है। अन्य भक्त कवियों में जहाँ साम्प्रदायिकता और दार्शनिकता की उलझने हैं, वहाँ मीराबाई में बौद्धिकता के लिए कोई जगह नहीं है, बल्कि भाव प्रवणता ही सर्वत्र विद्यमान है। मीरा के पदों में सरल सुलभ गेयता, संगीत तत्व, मनःस्थिति की एकनिष्ठता लोकानुरूप्ता है, जिसके कारण कहा जा सकता है कि यह आत्मदान की कविता है।

मीरा के पदों के साथ न तो छन्दों के प्रकार का और न ही रागारागनियों का उल्लेख मिलता है, इसका मुख्य कारण इनकी भाव-प्रवणता एवं सहजता है। इसीलिए न तो छन्दशास्त्र और न ही संगीत शास्त्र या अलंकारशास्त्र की कसौटी पर इसे कसा जा सकता है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि ये सहज स्वाभाविक रूप में यहाँ विद्यमान है। अलंकारों की दृष्टि से देखें तो उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति, अर्थान्तरन्यास, विभावना, श्लेष, स्वभावोक्ति अलंकार विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

सत्य/असत्य बता ए –

1. मीराबाई सगुणोपासक भकत हैं।
2. मीरा ने कृष्ण की पति रूप में उपासना की।
3. मीरा का प्रेम वियोग से ज्यादा संबंधित है।
4. मीरा की कविता पर राजस्थानी, गुजराती, ब्रज इत्यादि भाषाओं का प्रभाव है।
   मीराबाई की रचना प्रबन्ध रूप में है।

9.7 मीराबाई की कविता का मूलपाठ

मण थे परस परि रे चरण ।।टेक।।
सुभग सीतल कँवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।
ण चरण प्रह्लाद परस्याँ, न्द्र पदवी धरण।
ण चरण ध्रुव अटल करस्याँ, सरण असरण सरण।
ण चरण ब्रह्माण भेट्याँ, नखसिखाँ गिरि भरण।
ण चरण कालियाँ णाथ्याँ, गोपी लीला करण।
णा चरण गोबरधन धर्याँ, गरब मधवा हरण।
दासि मीराँ लाल गिरिधर, अगम तारण तरण ।।1।।

हे मा बड़ी-बड़ी अंखियन वारो,
साँवरो मो तन हेरत हँसिके ।।टेक।।

भौंह कमान बान बाँके लोचन, मारत हियरे कसिके ।
जतन करो जन्तर लिखी बाँधों, ओखद लाऊँ घँसिके।
ज्यों तोकों कछु और बिथा हो, नाहिन मेरो बसिके।
कौन जतन करों मोरी आली, चन्दन लाऊँ घसिके।
जन्तर-मन्तर जादू टोना, माधुरी मूरति बसिके।
साँवरी सूरत आन मिलावो ठाढ़ी रहूँ मैं हँसिके।
रैजा रेजा भयो करेजा अन्दर देखो धँसिके।
मीरा तो गिरधर बिन देखे, कैसे रहे घर बसिके।।2।।

निपट बंकट छब अँटके।
म्हारे णेणा निपट बंकठ छब अँटके ।।टेक।।
देख्याँ रूप मदन मोहन री, पियत पियूखन मटके।
बारिज भवाँ अलक मातवारी, णेणे रूप रस अँटके।
टे ्या कट टेढ़े करि मुरली, टे ्या पाग लर लटके।
मीराँ प्रभु रे रूप लुभाणी, गिरधर नागर नटके।।3।।

म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसरा णाँ कूवाँ।
दूसराँ णाँ कूयाँ साधाँ सकल लोक जूयाँ।।टेक।।
भाया छाँ ्याँ, बन्धा छाँ ्याँ सँगा सूयाँ।
साधाँ ि ग बैठ बैठ, लोक लाज खूयाँ।
भगत देख्याँ राजी ह्वयाँ, जग देख्याँ रूयाँ।।4।।

माई साँवरे रंग राची ।।टेक।।
साज सिंगार बाँध पग घूँघर, लोकलाज तज नाची।
गयाँ कुमत लयाँ साधाँ संगत श्याम प्रीत जग साँची।
गायाँ गायाँ हरि गुण निसदिन, काल ब्याल री बाँची।
स्यामा विणा जग खाराँ लागाँ, जगरी वाताँ काँची।
मीरा सिरि गिरधर नट नागर भगति रसीली जाँची।।5।।

माई री म्हा लियाँ गोविन्दाँ मोल।।टेक।।
थे कह्याँ छाणे म्हाँ काँचो ् लियाँ बजन्ता ोल।
थे कह्याँ मुँहौधो म्हाँ कह्याँ सस्तो, लिया री तराजाँ तोल।
तण वाराँ म्हाँ जीवन वाराँ, वाराँ अमोलक मोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्याँ पूरब जणम की कोल।।6।।

राणाजी थे क्याँने राखो म्हाँसूँ बैर।।टेक।।
थे तो राणा जी म्हाँने सड़ा लागौ ज्यों ब्रच्छन में कैर।
महल अटारी हम सब त्यागे, त्याग्यो थाँरो बसनों सहर।
कागज टीकी राणा हम सब त्याग्या भगवीं चादर पहर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मरित कर दियो जहर।।7।।

पग बाँध घूँघर्याँ पाच्याँरी।।टेक।।
लोक कह्याँ मीरा बावरी, सासु कह्याँ कुलनासाँ री ।
विख रो प्यालो राणा भेज्याँ, पीवाँ मीरा हाँसाँ री।
तण मण वार्याँ हरि चरणामाँ दरसण अमरित प्यास्याँ री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणाँ आस्याँ री।।8।।

अखयाँ तरशा दरसण प्यासी ।
मग जोवाँ दिण बीताँ सजणी, णौण प ् या दुखरासी।
ारा बैठ्या कोयल बोल्या, बोल सुणाया री गासी।
कड़वा बोल लोक जग बोल्या, करस्याँ म्हारी हाँसी।
मीराँ हरि के हाथ बिकाणी, जणम जणम री दासी।।9।।

साँवरे मार्या तीर।
री म्हारा पार निकर गयाँ, सावेर मार्या तीर।।टेक।।
विरह अनल लागाँ उर अन्तरि, व्याकुल म्हाराँ सरीर।

चंचल चित चल्या णा चाला, बाँध्या प्रेम जंजीर।
क्या जाणा म्हारो प्रीतमि प्यारो, क्या जाणा म्हा पीर।
म्हारो काई णा बस सजणी, नैण झरयाँ दोऊ नीर।
मीराँ रो प्रभु थे मिलिया विणि, प्राण धरत णा धीर।।10।।

नोट: मीराबाई के पद मात्र पाठ के लिए दिए गए है परिक्षा मैं इन पदों से व्याख्या नहीं दी जायेगी

9.8 सारांश

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप कृष्णभक्ति काव्य परम्परा में कृष्ण के नये चरित्र एवं मीरा की कविता की विलक्षणता को समझ गए होंगे। वस्तुतः मीरा की कविता में न तो कोई सम्प्रदायगत निष्ठा है और न ही लोक-शास्त्र के समर्थन की आकांक्षा, बल्कि वह निर्भय सात्विक एवं रागसिक्त मन की ऐसी करूण किन्तु प्रतिरोधी पुकार है, जहाँ दर्द ही दवा है। वह समर्पण, आत्मदान, के साथ ही स्त्री स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाली कविता है, जिसका प्रस्थान बिन्दु भले ही अध्यात्म हो, किन्तु अपनी परणति में सामाजिक-सांस्कृतिक चिन्ताओं से लैस है। शिवकुमार मिश्र के शब्दों में कहूँ तो 'मीरा समूचे भक्ति काल में अकेली नारी भक्त हैं जिन्होंने अपनी आत्म निवेदनपूर्ण कविता में अपनी भक्ति और प्रेम के माध्यम से, एक पूरी की पूरी समाज-व्यवस्था की असहिष्णु और अमानवीय मानसिकता को, उसकी भेदभावपूर्ण रीति-नीति को, उसके दोमुँहे चेहरे को बेनकाब किया है।' (भक्ति आन्दोलन एवं भक्ति काव्य, पृष्ठ 131) यहाँ कोई दार्शनिक वाद-विवाद नहीं है, फिर भी भक्ति का लोकवादी एवं सामंतवाद विरोधी चरित्र दिखाई देता है, जो मानवधर्म को सबसे बड़ा मूल्य मानता है। यहाँ अनुभूति की तन्मयता के साथ ही संगीतात्मक चेतना भी है और लयात्मक सौन्दर्य भी।

9.9 शब्दावली

- सगुणोपासना - ईश्वर की मूर्ति रूप में, प्रत्यक्ष रूप में उपासना करना।
- निर्गुणपासना - ईश्वर की निराकार रूप की उपासना करना।
- मार्धुय भक्ति - ईश्वर को पति रूप में पाने की इच्छा।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. राजस्थान
2. 1498 ई.
3. द्वारिका
4. कृष्णभक्ति
5. मार्धुय

अभ्यास प्रश्न 2

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. असत्य

9.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य की भूमिका - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. भक्ति आन्दोलन एवं सूरदास का काव्य - डा. मैनेजर पाण्डेय
4. भक्ति आन्दोलन एवं भक्ति काव्य - शिवकुमार मिश्र
5. भक्ति काव्य का समाजशास्त्र - डा. प्रेमशंकर
6. भारतीय चिन्तन परम्परा - के.दामोदरन
7. मीरा ग्रन्थावली, भाग एक एवं दो - कल्याण सिंह शेखावत
8. मीरा का काव्य - डा. भगवानदास तिवारी
9. मीरा: एक पुनर्मूल्यांकन - सम्पादक पल्लव
10. मीरा का काव्य - डा. विश्वनराथ त्रिपाठी
11. मीराबाई की पदावली - सं. परशुराम चतुर्वेदी
12. मध्यकालीइन प्रेम-साधना - परशुराम चतुर्वेदी
13. मध्यकालीन काव्य संचयन - दीपक प्रकाश त्यागी।

9.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. 'मीराबाई के व्यक्तित्व' पर एक निबंध लिखिए।
2. मीराबाई के काव्य की विशेषताओं को रेखांकित कीजिए।
3. मीराबाई की भक्ति भावना एवं प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

इकाई 10 गुरुनानक : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 हिन्दी भक्ति आन्दोलन, निर्गुण संत काव्य परम्परा एवं गुरुनानक
10.4 गुरुनानक: जीवन परिचय तथा रचनाएँ
10.5 काव्यगत विशेषताएँ
10.6 पाठ एवं व्याख्या
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

गुरुनानक देव सिक्ख धर्म के प्रथम गुरु हैं। वे हिन्दी निर्गुण संतकाव्य एवं पंजाबी भक्तिकाव्य परम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उन्होंने पंजाब में धर्म-संस्कृति एवं साहित्य के क्षेत्र में एक नयी परम्परा का प्रवर्तन किया, जिसने हिन्दी भक्ति काव्य एवं सम्पूर्ण पंजाबी साहित्य को नयी दिशाएं दी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'मध्यकाल के निर्गुण मार्गी सन्तों में गुरुनानक का ही व्यक्तित्व शरच्चन्द्र के समान स्निग्ध, शामक और आह्लादजनक है।' क्योंकि वे रैदास की तरह ही विनम्र हैं, कबीर की तरह आडम्बरों पर चोट करते हैं, किन्तु आक्रोश उनमें नहीं है।' आचार्य द्विवेदी का यह कथन प्रासंगिक है, 'कई सन्तों ने कस-कसके चोटें मारी, व्यंग्य वाण छोड़े, तर्क की छुरी चलाई, पर महान गुरु नानकदेव ने सुधालेप का काम किया। यह आश्चर्य की बात है कि विचार और आचार की दुनिया में इतनी बड़ी क्रान्ति ले आने वाला, किसी का दिल दुखाए बिना किसी पर आघात किए बिना, कुसंस्कारों को छिन्न करने की शक्ति रखने वाला, नई संजीवनी धारा से प्राणिमात्र को उल्लसित करने वाला यह संत मध्यकाल की ज्योतिष्क-मंडली में अपनी निराली शोभा से शरत् पूर्णिमा के पूर्णचन्द्र की तरह ही ज्योतिष्मान् है।'

10.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप हिन्दी निर्गुण संत काव्य परम्परा के विशिष्ट कवि गुरुनानक का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- गुरुनानक के जीवन एवं रचनाओं के विषय में जान सकेंगे।
- हिन्दी निर्गुण संत काव्य परम्परा में गुरुनानक की भूमिका बता सकेंगे।
- गुरुनानक के साहित्य की विशेषताएँ बता सकेगें।
- गुरुनानक के साहित्य के अभिव्यंजना पक्ष के विषय में जान सकेंगे।
- गुरुनानक की कविताओं को पढ़कर उनकी चेतना से परिचित हो सकेंगे।

10.3 भक्ति आन्दोलन हिन्दी निर्गुण संतकाव्य परम्परा एवं गुरुनानक

मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन जिसका प्रारम्भ दक्षिण भारत से हुआ था, वह एक सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन है। रामविलास शर्मा ने इसे 'लोक जागरण' कहा और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'धर्म और मानवता की एक नयी चेतना के रूप' में रेखांकित किया। डा. शिवकुमार मिश्र की टिप्पणी महत्वपूर्ण है, 'इस भक्ति आन्दोलन में पहली बार प्रस्थानत्रयी हो हाशिये पर डालते हुए सन्तों और भक्तों ने लोकमन में रची और पढ़ी भक्ति को अपनी रचनाओं में उभारा और अंकित किया।' इसीलिए इन्होंने नये छन्द एवं नयी भाषा, जो लोक की सम्पत्ति थी उसे अपनी संवेदना का सहचर बनाया। इसमें हिन्दी भाषी समाज का जीवन संघर्ष है और

सामाजिक संघर्ष भी, किन्तु सभी रचनाकारों के रंग और स्वर भिन्न भिन्न होते हुए भी मनुष्यता की चिन्ता सभी के यहाँ हैं। मैनेजर पाण्डेय ने एक बड़ी अर्थपूर्ण टिप्पणी की है, 'भक्तिकाव्य में उस समय के भारतीय समाज की वास्तविकताएँ हैं और उनकी आलोचना भी है, सामाजिक व्यवस्थाओं के चित्र हैं और व्यवस्था के बंधनों को तोड़ने की आकांक्षा भी है, सामंती सत्ता के अनेक रूप हैं और उनके आतंक के विरूद्ध निर्भयता भी है। उसमें कही शास्त्र की रूढ़ियों के अस्वीकार की घोषणा है, कहीं लोक के बंधनों की उपेक्षा का साहस है तो कहीं शास्त्र और लोक के बीच समन्वय का प्रयास भी है। उसमें उस काल के सामाजिक और सांस्कृतिक अन्तर्विरोधों की अभिव्यक्ति है, कहीं अन्तर्विरोधों के बीच संघर्ष की चेतना अधिक है तो कहीं समन्वय की कोशिश।' इस प्रकार आप कह सकते हैं कि भक्ति आन्दोलन अपने समय की सांस्कृतिक परिस्थितियों की अनिवार्य देन हैं और जरूरत भी। इस भक्ति आन्दोलन की कुछ मूल आस्थाएं, चिन्ताएं हैं-

1. धार्मिक विचारों की असमानता के बावजूद जनता की एकता स्वीकार करना।
2. ईश्वर के समक्ष सबकी समानता स्वीकार करना।
3. जातिप्रथा की संकीर्णता का विरोध एवं जाति की श्रेष्ठता को अस्वीकार करना।
4. आचरण की पवित्रता पर बल।
5. इस विचार को स्थापित करना कि मनुष्य एवं ईश्वर के बीच तादात्म्य संभव है और तादात्म्य प्रत्येक मनुष्य के सद्गुणों पर निर्भर है।
6. भक्ति ही आराधना का उच्चतम स्वरूप है।
7. बाह्यचारों, कर्मकाण्डों आदि की निंदा एवं भर्त्सना।
8. मनुष्य सत्य सर्वोपरि है, इसलिए जातिगत भेदभाव धार्मिक श्रेष्ठता का भाव निरर्थक है।

स्पष्ट है कि भक्ति आन्दोलन एक सांस्कृतिक जागरण है, जो उत्तर भारत में रामानन्द के साथ शुरू होता है। इस भक्ति आन्दोलन की निम्नलिखित धाराएं हैं- **हिन्दी भक्तिकाव्य** - (क) निर्गुण भक्तिकाव्य (ख) सगुण भक्तिकाव्य

निर्गुण भक्तिकाव्य - (क) ज्ञानाश्रयी शाखा (ख) प्रेमाश्रयी शाखा

सगुण भक्तिकाव्य - **(क)** कृष्णभक्ति शाखा (ख) रामभक्ति शाखा

ब्रह्म के निर्गुण अर्थात् सत्वादि गुणों (सत्व, रज, तम) से रहित अथवा उनसे परे रहने वाले रूप को लेकर चलने वाले भक्त कवि निर्गुण धारा के कवि हैं। इन्होंने ज्ञान को ही ब्रह्म प्राप्ति का साधन माना, इसीलिए ये ज्ञान मार्गी भी हैं और यहाँ ज्ञान का अर्थ 'साधारण इन्द्रिय जन्य

ज्ञान' अथवा 'बौद्धिक तर्क-वितर्क से प्राप्त गूढ़ दार्शनिक ज्ञान' नहीं है, बल्कि ज्ञान यहाँ अंतर्ज्ञान है जो सहज ही बिना किसी प्रत्यक्ष साधन से पैदा होता है। इसीलिए इसे 'सहजज्ञान' भी कहा गया है। कबीर इसे 'ब्रह्मगियान' कहते हैं- 'अब मैं पाइबो रे ब्रह्म गियान।/सहज समाधैं सुख मैं रहिबो, कोटि कलप विश्राम।' इसीलिए नानक ने भी स्वीकार किया है- **आदि सचु जुगारि सुचु। है भी सचु नानक होसी भी सचु।** निर्गुण भक्ति काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा ने जाँति-पाँति, वर्ग और वर्ण को दीवालें ढहाते हुए भक्ति को सबके लिए सुगम बना दिया और इसमें नामदेव, कबीर, गुरुनानक, दादू दयाल, सुन्दरदास, रैदास, रज्जब आदि प्रमुख भक्त-कवि हुए किन्तु कबीर, रैदास एवं गुरुनानक की भूमिका कुछ खास कारणों से महत्वपूर्ण हैं। इन्हें एवं इस धारा के कवियों को संतकवि भी कहते हैं। सामान्यतः संत का अर्थ है- सदाचारी, पवित्रात्मा व्यक्ति। विशिष्ट अर्थ में संत उस व्यक्ति को कहते हैं, जिन्होंने सत्यरूप परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया हो और जो पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए निःस्वार्थी भाव से लोक कल्याण में संलग्न हो। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का कथन है, 'संत शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने सत रूप परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ सद्रूप हो, जो सत् स्वरूप, नित्य, सिद्ध वस्तु का साक्षात्कार कर चुका हो अथवा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्य में प्रतिष्ठित हो गया हो वही संत है।' किन्तु संतकवि धर्म, साधना की कोई शास्त्रीय व्याख्या नहीं करते बल्कि जनभाषा में इसके मर्म को लोक से परिचित कराते हैं, इसीलिए इनके विचार निजी अनुभूतियों पर आधारित है, 'आँखिन देखी' यहाँ प्रमाण हैं। तीखापन है, विद्रोह है, आक्रोश है तो रैदास, गुरुनानक के यहाँ विनम्रता है, निरीहता है आक्रोश एवं प्रखरता नहीं है। गुरुनानक तो जीवन की सार्थकता भगवान के निरन्तर ध्यान एवं नाम स्मरण में ही स्वीकार करते हैं-

रैण गँवाई सोई कै, दिवसु गवाँ या खा । हीरे जैसा जनमु है, कउड़ी बदले जा ।।

10.4 गुरु नानक: जीवन परिचय तथा रचनाएँ

गुरु नानक का जन्म एक उदार सहिष्णु परिवार में 15 अप्रैल 1469 (सम्वत् 1526 वि0 वैशाख सदी तृतीया) को तलवण्डी (पाकिस्तान) में हुआ था, जिसे इस समय ननकाना साहिब भी कहा जाता है किन्तु काफी अर्से से उनकी जन्म तिथि का उत्सव कार्तिक पूर्णिमा को मनाया जाता है, जो युक्तिसंगत ही है एवं गुरुनानक के निर्मल एवं पवित्र व्यक्तित्व के कारण अर्थपूर्ण भी है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है- 'उनकी आविर्भाव तिथि इस पूर्णिमा को मानने के संगत कारण हैं। यह केवल भक्तों की कल्पना नहीं सुचिन्तित योजना है। निर्मल आकाश में शुभ्र राजहंस की तरह भ्रमण करने वाला चन्द्रमा ही उनके व्यक्तित्व की ओर संकेत कर सकता है।' इनकी माता का नाम तृप्ता एवं पिता का नाम मेहता कल्याणदास था, किन्तु मेहता कालू के नाम से इनकी ख्याति थी। बड़ी बहिन 'नानकी' के अनुकरण पर बालक का नाम नानक रखा गया।

दरअसल ये दोनो भाई बहन दो शरीर एक आत्मा ही थे। नानक की आध्यात्मिक एंव संत प्रकृति की अनुभूति सर्वप्रथम नानकी को ही हुई थी।

डा. जयराम मिश्र ने अपनी किताब 'गुरु नानकदेव: जीवन एवं दर्शन' में लिखा है कि 'नानकदेव इस वसुन्धरा पर दैवी संगीत के रूप में अवतीर्ण हुए। प्रकृति में वे अल्पायु में ही रम जाते थे। अनन्त आकाश की नीलिमा, वायु के मृदुल झकोरों, सूर्य और चन्द्रमा की ज्योति, जल की शीतलता और स्निग्धता तथा पृथ्वी के अलौकिक वर्णों में उन्हें दिव्य सन्देश सुनाई पड़ता। वे घण्टों अधखुली आँखों से प्रकृति के इस रूप को निहारते रह जाते, प्रकृति के माध्यम से वे भावजगत में विचरण करने लगते।' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'भारतवर्ष के अधिकतर महापुरुषों के समान गुरु नानक का जीवन चरित भी चमत्कारिक कथाओं से ढँका हुआ है। उनकी 'जनम-साखियाँ' तो बहुत मिलती हैं, परन्तु सबमें श्रद्धातिरेक के कारण चामत्कारिक कथाओं से ऐतिहासिक तथ्य ढँक गए हैं।' किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि जिसे गुरु नानक के व्यक्तित्व, कृतित्व ने और भी ऊँचाई पर पहुँचा दिया। वे मनुष्य एवं ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेमी के रूप में दिखाई देते हैं। फारसी का यह शेर उनके जीवन पर अक्षरशः लागू किया जा सकता है-

आशिकाने नौ निशानी ऐ पिसर ंतजारी, बेकरारी, बेसबर
आहे-सर्दे, मुखे-जर्दे, चश्मे-तर कम खुरो, कम गुफ्तगू, ख्वाबे हराम।

अर्थात् सच्चे प्रेमियों के नौ चिह्न होते हैं- प्रियतम की प्रतीक्षा, व्यग्रता, बेसबरी, ठण्डी और लम्बी आहें, पीलामुख, अश्रुयुक्त आँखें, अल्पाहार, कम वार्तालाप, अनिद्रा।' साधुसंगत, एकान्तवास और अध्यात्म चिन्तन ही उनका जीवन था। इसीलिए 'सुलक्खनी' से विवाह एवं दो पुत्र श्रीचंद और लक्ष्मीचन्द्र के होते हुए भी वे घर गृहस्थी के बंधन में नहीं बँध पाए, पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ लोदी के एक कर्मचारी के मोदी खाने में नौकरी भी की, किन्तु यह भी उन्हें सांसारिकता से बाँध नहीं पाया। कहा जाता है कि आटा तौलते समय वे एक, दो, तीन गिनते-गिनते जब 'तेरह' पर आए तो इसके पंजाबी उच्चारण 'तेरा' पर उनका ध्यान अध्यात्म की ओर चला गया 'मैं तेरा हूँ' के भाव ने उन्हें तन्मय कर दिया। हाथ से तौलते रहे किन्तु मुँह से तेरा 'तेरा' का उच्चारण रटते-रटते परमतत्व में लीन हो गये और सारा भण्डार खाली हो गया। फलतः नौकरी भी छूट गयी और वे अध्यात्म के पथ पर निकल पड़े। साधु-संगत, भ्रमण, धर्मोपदेश, अध्यात्म चिन्तन ही उनका जीवन एवं कर्म हो गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन अक्षरशः सत्य है, 'उन्हें संसार बाँध नहीं सका, पर संसार के बंधन से छुटकारा देने और दिलाने का रहस्य उन्हें अवश्य प्राप्त हो गया।' उन्होंने लिखा भी है-

दीवा बलै अँधेरा जा । बेद पाठ मति पापा खा ।
उगवै सुरु न जापै चंदु जह गिआन प्रगासु अगिआनु मिटंतु।
बेद पाठ संसार की कार। पि पि पंि त करहि बिचार।

बिनु बूझे सभ होई खुआर। नानक गुरमुखि उतरसि पार।

गुरुनानक के सत्तर वर्ष के जीवन में अनेक पड़ाव हैं-

1. जीवन के प्रथम 18 वर्ष वे अपने पैतृक कस्बे में रहते हुए शिक्षा आदि में व्यतीत किए। यह उनका अध्ययन काल है, जहाँ वे प्रकृति की विविध सत्ताओं एवं रूपों के सौन्दर्य के प्रति अनुरक्त हैं। वैसे अनेक चमत्कारिक कथाएं भी इस काल से जुड़ी हैं, जो गुरुनानक के आध्यात्मिक विकासयात्रा की ओर संकेत करती हैं।

2. 18 वर्ष की आयु में बहन नानकी के पास सुलतानपुर लोधी गए और 10 वर्ष व्यतीत किए, सौदागरी का नैतिक, सहिष्णु जीवन जीते हुए संसार के दुःखी संतप्त लोगों के दुखों को दूर करते हुए सांसारिकता से मुक्ति के राश्ते पर निकल पड़े। 'महला' की यह वाणी महत्वपूर्ण है-

हउ ाढ़ी बेकारू कारे ला आ।
राति दिहै कै वार घुरहु-फुरमा आ।।
ा ी सचै महलि खसमि बुला या।
सची सिफति सालाह कपड़ा पा आ।।
सचा अमृत नामु भोजनु आ आ।
गुरमति खाधा रजि तिनि सुख पा आ।।
ा ी करे पसाउ सबदु बजा या।
ननक सचु सालहि पूरा पा आ।। (माझ की बार)

तीसरा पड़ाव 1497 से शुरू होता है, जहाँ ज्ञान प्राप्ति एवं ज्ञान दान के लिए वे व्याकुल हो उठते हैं और एक परिव्राजक की तरह कामरूप से मक्का मदीना तक अपने गाँव के रागी मुसलमान 'मरदाना' के राग के साथ यात्रा की शुरूआत करते हैं एवं अपने जीवन का अधिकांश समय यात्रा में व्यतीत कर देते हैं। ये केवल तीर्थ यात्राएं नहीं है, बल्कि सत्य के अनुसंधान, प्रेम के प्रसार की ज्ञानमयी सतसंग यात्रा है। इनमें चार लम्बी यात्राएं प्रसिद्ध हैं, जो चार उदासियों (विचरण यात्रा) के रूप में प्रसिद्ध हैं-

(क) उनकी प्रथम यात्रा (या पहली उदासी) की अवधि 1507 से 1515 ई. तक हैं। इस यात्रा में वे लाहौर, एमनाबाद, स्यालकोट, दिल्ली, काशी, पटना, गया, असम, जगन्नाथपुरी, सोमनाथ, रामेश्वर, द्वारिका, नर्मदातट, बीकानेर, पुष्कर, दिल्ली, पानीपत, कुरुक्षेत्र आदि से होते हुए सुलतानपुर पहुँचे और दो वर्ष अपने माता पिता के साथ रहे। इस यात्रा में उन्होंने अनेक ठगों को साधु बनाया, कर्मकाण्डियों को वाह्याडम्बर की निरर्थकता समझाकर उन्हें रागात्मक भक्ति से जोड़ा तथा अनेक का हृदय परिवर्तन किया। इस यात्रा में उनके साथ मरदाना थे, जिनकी बीन पर नानक की वाणी श्रोताओं को मुग्ध कर देती थी।

(ख) दूसरी यात्रा (दूसरी उदासी) 1517 ई. से 1518 ई के बीच की है। इस यात्रा में वे सिरसा, बीकानेर, अजमेर, उज्जैन, हैदराबाद, बीदर, रामेश्वर, शिवकांची और लंका गये। इस यात्रा की समाप्ति पर वे तलवंडी आए। इस यात्रा में उनके साथ सैदो और धोबी नाम के जाट शिष्य थे।

(ग) तीसरी उदासी - तीसरी यात्रा 1518 ई. से 1521 ई. तक की है, जिसमें कश्मीर, कैलाश, मानसरोवर, भूटान, नेपाल, जम्मू, स्यालकोट होते हुए पुनः तलवंडी आए। इस यात्रा में उनके साथ नासू और शिहा नामक दो शिष्य थे। मानसरोवर में योगियों के साथ उनका सत्संग हुआ था।

(घ) चौथी उदासी - यात्रा में उन्होंने विदेशों का भी भ्रमण किया। वे पिंडदादन खाँ, डेरा गाजी खाँ, जामपुर, राजनपुर, कोट मिट्ठन, शिकारपुर, लरकाना, हैदराबाद, कराची से होते हुए बलोचिस्तान, मक्का, मदना एक हाजी के रूप में पहुँचे। यहाँ से बगदाद, ईरान, पेशावर, मुल्तान की यात्रा करते हुए अपने जन्मस्थान तलवंडी पहुँचे। इस यात्रा में अनेक मुस्लिम संतों और पंडितों से सत्संग किया और बगदाद में बहील के शाह को सिक्ख धर्म की दीक्षा दी। इन यात्राओं के अतिरिक्त एक अन्य यात्रा का भी उल्लेख मिलता है, जिसमें वे पाकपटन, कंगनपुर, कसूर, पट्टी और नारोवाल से होते हुए सैयदपुर पहुँचे थे, जहाँ बाबर ने उन्हें बंदी बना लिया था, किन्तु उनकी मीठी एवं सहज वाणी ने बाबर को पराजित कर दिया और उसने क्षमा माँगते हुए उनके साथ सभी कैदियों को आज़ाद कर दिया था। इन यात्रा वृतान्तों में अनेक चमत्कारिक प्रसंगों की भी चर्चा है, किन्तु उनका सद्भाव, धार्मिक सहिष्णुता, संवादधर्मिता, इस यात्रा की विशेष उपलब्धि है, जो निर्गुण संत परम्परा को नयी दिशाएं देता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है, 'उनकी वाणी की मोहकता, उनके व्यक्तित्व का आकर्षण और उनकी भगवन्निष्ठा का प्रभाव इन यात्रा-वृतान्तों से स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि परवर्ती पुस्तकों में उन्हें शास्त्रार्थी विजेता के रूप में चित्रित करने का भी प्रयास है पर यह उनकी नहीं, उस काल की श्रद्धालु जनता की मनोवृत्ति का प्रतिफलन है। गुरु नानक बहुत वाद विवाद में नहीं पड़ते थे। वे अपने पवित्र आचरण के द्वारा ही विरोधियों को सत्य का साक्षात्कार करा देते थे। कितने ही विरोधियों ने जो उनके चरणों में आत्मसमर्पण किया वह शास्त्रार्थ-वैदुष्य देखकर नहीं, अत्यन्त प्रभावशाली आचरण और मधुर व्यवहार के कारण ही किया। (सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, पृष्ठ 20)। जीवन के अन्तिम वर्ष उन्होंने कर्त्तारपुर में व्यतीत किया। सम्वत् 1596 अश्विन शुक्ल दशमी को उन्होंने शरीर त्याग किया, किन्तु अपनी वाणियों में वे चिन्मय रूप में ज्ञानमय विग्रह के रूप में आज भी जीवित हैं और इनके द्वारा वे सामान्य जन की ज्ञान व मुक्ति का नया संदेश दे रहे हैं, सिक्ख या शिष्य परम्परा के द्वारा उन्होंने मनुष्यता के लिए एक ऐसी प्रेम ज्योति प्रज्वलित की, जो प्रत्येक प्रकार की भेद दृष्टि को निरर्थक मानता है एवं मनुष्य की महत्ता को स्वीकार करता है, सत्य को ही परमत्व मानता है।

गुरुनानक देव की रचनाएं **'गुरुग्रन्थ साहिब'** में संग्रहीत हैं। रत्न सिंह जग्गी ने अपनी पुस्तक 'गुरु नानक व्यक्तित्व, कृतित्व और चिन्तन' में गुरु नानक की प्रामाणिक वाणी को चार वर्गों में विभक्त किया है, जिसे प्रो0 हरमहेन्द्र सिंह बेदी एवं प्रो0 धर्मपाल मैनी ने भी स्वीकार किया है और यह वाणी की प्रकृति को देखते हुए युक्तिसंगत भी है-

(1) **वृहदाकार कृतियाँ -**

जपुजी, सिध गोसटि, ओंकार, पट्टी, बारहमाह, थिती

(2) **लध्वाकार कृतियाँ -**

पहरे, सोदर, अलाहिणयाँ, आरती, कुचजी, सुचजी

(3) **वार काव्य -**

माझ की वार, आसा की वार, मलार की वार

(4) **फुटकल पद**

चौपदे (पद्य), अष्टपदियाँ, छंत, सोलहे, श्लोक।

यह वाणी विभिन्न रागों में बद्ध है। वृहदाकार कृतियों को विषयों के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

(1) सिद्धान्त प्रधान - जपुजी, सिध गोसटि
(2) वर्णमालानुसारी - ओंकार, पट्टी
(3) काल-मान पर आधारित - बारहमास, थिती

जपुजी आदि ग्रंथ का सार तत्व है, जिसमें नाम स्मरण-श्रवण और मनन की प्रधानता है। इस वाणी में पाँच अवस्थाओं का वर्णन है, जिन्हें- धर्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, सरम खण्ड, करम खण्ड, सच खण्ड। इन्हें साधना के पाँच खण्ड भी कह सकते हैं। यह रचना भी छन्द-बद्ध है, किन्तु छन्दशास्त्र के नियमों का पालन नहीं मिलता है। प्रत्येक पउड़ी का अपना स्वतंत्र छन्द विधान है। वृहदाकार कृतियों में 'पट्टी' आसा राग में है पट्टी में वर्णमाला के क्रमानुसार काव्यसर्जना है। इसमें गुरुनानक का सचेत कविरूप दिखाई देता है। 'ओअंकार' रामकली राग में, 'सिध गोसटि' रामकली राग में। इस वाणी का मूल लक्ष्य प्रभु मिलन का महत्व और उसके उपाय निर्दिष्ट करना है। इसमें गुरुनानक ने योगियों के प्रतीकों, रूढ़ियों और आडम्बरों का खण्डन करते हुए अपने सिद्धान्तों की सारगर्भिता व्यंजना की है। बारहमास तुखारी राग में है। इसमें 17 पद्य हैं, जिसमें परमात्मा से विमुक्त मानव की विरह वेदना 12 मासों के नाम से अभिव्यंजित है। इसमें लोक काव्य परम्परा का प्रभाव दिखाई देता है। 'थिती' तिथि का अपभ्रंश है। इसमें अंधविश्वासों, रूढ़ियों, आडम्बरों की निरर्थकता बतलाते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि सभी तिथियाँ, दिन वार, मास परमपुरुष द्वारा निर्मित होने के कारण शुभ एवं कल्याणकारी हैं। यह राग विलावलु में हैं। लध्वाकार कृतियों में 'पहरे' सिरी राग में है, जिसमें मनुष्य की विभिन्न जीवन अवस्थाओं का अत्यन्त संवेदनशील, मर्मग्राही और प्रभावशाली चित्रण किया है। सोदर 'आसा राग' में बद्ध है। इस पद्य की 22 पंक्तियों में गुरुनानक ने परमात्मा के विशद् द्वार की कल्पना की है, जहाँ अनेक सिद्धज्ञानी, योगी, देवी-देवता प्रभु की लीला का गान कर रहे हैं।

'अलाहिणयाँ' पंजाबी का शोकपरक लोकगीत की तरह ही है, जिसमें वैराग्य भाव की प्रधानता होते हुए भी निराशा और उदासीनता नहीं है। इसका छन्द विधान कुण्डलिया जैसे है, किन्तु मात्राएं कम-अधिक हैं। 'वडहंस' राग में पाँच अलाहिणयाँ लिखी गयी हैं। आरती 'धनासरी' राग में रचित है। कुचजी 16 पंक्तियों की रचना है जो 'सूही राग' में बद्ध है। इसमें प्रभु से वियुक्त जीवात्मा का बुरे आचरण वाली स्त्री के रूप में वर्णन किया गया है, जो द्वैत वृत्ति एवं अहंकार से ग्रस्त है। सुचजी में अच्छे आचरण वाली स्त्री का रूपक है, जो विषय भोग को त्याग कर परब्रह्म में लीन है। यह कृति सूही राग में निबद्ध है।

गुरु जी ने तीन वरकाव्य लिखे हैं- जिनके नाम रागों के आधार पर हैं- माझ राग की वार, आसा राग की वार और मलार राग की वार। डा. जग्गी ने वार काव्य को व्याख्यायित करते हुए लिखा है कि, 'वह काव्यबद्ध एवं उत्साहवर्द्धक वार्ता जिसमें किसी आक्रमण अथवा संघर्ष के प्रकरण में नायक का यशोगान किया गया हो। वीररस का इसमें प्राधान्य होता है और गायक और रचयिता भाट अथवा चारण (ढाढी) होता है।' गुरु नानक ने एक पउड़ी में स्वयं को ढाढी स्वीकार किया है-

हउ ा ी बेकारू कारै ल आ।
राती दिहैं के बार घुरहु फुरमा आ।।
ा ी करे पसाउ सबहु वजा या।
ननक सचू सालहि पूरा पा आ।।

ये तीनों वारें पंजाबी भाषा के छन्द 'पउड़ी' में रचित है, जो गुरु महिमा, नामस्मरण, रहस्यानुभूति, एकेश्वरवाद से सम्बद्ध हैं। फुटकल रचनाओं में ऐसे पद हैं, जो विभिन्न अवसरों पर विविध परिस्थितियों के अनुकूल रचे गये हैं। इसके अन्तर्गत चौपदे, अष्टपादियाँ, छन्द, सोलहे, और श्लोक समाहित हैं। इसमें युगीन परिस्थितियों के चित्रण के साथ-साथ धार्मिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों, कर्मकाण्डों की निन्दा का स्वर है।

अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए –

1. गुरूनानक.....शाखा के कवि माने जाते हैं।
2. गुरूनानक का जन्म पंजाब प्रांत के.....स्थान पर हुआ है।
3. गुरूनानक का जन्म.....ई. में हुआ है।
4. गुरूनानक की भाषा में.....भाषा के शब्द मिलते है।

(2) सत्य/असत्य बता ए –

1. जपुजी नानक की रचना है।
2. नानक की रचना का मुख्य रस शांत है।
3. नानक की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते है।
4. नानक की रचनाएँ गुरू ग्रंथ साहिब में संकलित हैं।

10.5 काव्यगत विशेषताएँ

गुरु नानक ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर काव्य रचना की है, किन्तु इनकी भक्ति में व्यक्तिगत मुक्ति नहीं, समूह मुक्ति की कामना है और समूह मुक्ति की इस कामना के कारण ही इनकी संवेदना का धरातल बहुआयामी है। इनके साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

(1) निर्गुण ब्रह्म में विश्वास - संभी संत कवियों की तरह ही गुरु नानक देव निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल देते हैं, किन्तु संत कवियों से इस अर्थ में वे भिन्न हैं कि निर्गुण में विश्वास करते हुए भी कबीर की तरह सगुण ब्रह्म की सत्ता को अस्वीकार नहीं करते हैं। उन्होंने उपासक की आन्तरिक वृत्ति के अनुसार ब्रह्म के स्वरूप- निर्गुण-सगुण दोनों का वर्णन किया है। निर्गुण ब्रह्म अनिवर्चनीय है, अतः गुरुनानक इस ब्रह्म का निरुपण निषेधात्मक शैली में करते हैं-

अरबद नरबद धूँधूकारा
बेद कतेब न सिंमृत सासत।
पाठ पुराण उदै नहीं आसत। (गुरु ग्रंथ साहिब, मारु सालहे 15)

निर्गुण ब्रह्म स्वयंभू है। यह न माया है, न छाया है, न सूर्य है, न चन्द्रमा और न अपार ज्योति ही-

जल थलु धरणि गगनु तह नाही आपे आपु कीआ करतार।।
ना तदि मा आ मगनु न छा आ न सूरज चन्द न जोति अपार

यहाँ उपनिषदों की निर्गुण प्रतिपादन शैली दिखाई देती है जबकि परमात्मा के सगुण स्वरूप का वर्णन दो प्रकार से किया गया है-

1. परमात्मा के विराट स्वरूप् के माध्यम द्वारा।
2. परमात्मा के गुणों के वर्णन द्वारा

विराट स्वरूप का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। एक उदाहरण देखिए-
गगन मै थालु रबि चन्दु दीपक बने तारिका मं ल जनक मोती।
धूपु मल आनलो, पवण चवरो करे, सगल बनराई फूलंत जोती।। (धनसरी, सबद, 9)

जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म अकथनीय है, उसी प्रकार सगुण ब्रह्म का विराट स्वरूप पर कथन से परे है गुरुदेव ने 'जपुजी' के पउड़ी 24 में कह दिया है-

अंत न जापै कीता आकारु। अंत न जपै पारावारु।।
अंत कारणि केते विललाहि। ता के अंत न पाए जाहि।।
एहु अंत न जाणे को । बहुत कहीए बहुता हो ।।

दरअसल गुरुनानक ऐसे संत कवि हैं जो निर्गुण-सगुण के उभय स्वरूप को स्वीकार करते हैं, किन्तु वे सगुणमार्गीयों की तरह अवतार व लीला में विश्वास नहीं करते और न ही निर्गुणमार्गियों की तरह सगुण की सत्ता का पूर्णतः निषेध ही करते हैं। दरअसल वे निर्गुण-सगुण मार्ग के बीच की कड़ी है। सिध गोसटि के पउड़ी 24 में उनका विचार है- अविगतो निरमाइलु उपजे निरगुण ते सरगुणु थीआ।।

(2) सदगुरु की महत्ता - गुरुनानक ने यह स्वीकार किया कि यह सृष्टि परम ब्रह्म की रचना है। परम ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है, किन्तु माया एवं अहंकार के कारण जीव ब्रह्म को नहीं पहचानता। आत्मज्ञान होने से ही वह ब्रह्म के विषय में जान सकता है, किन्तु यह आत्मज्ञान गुरु द्वारा ही सम्भव है- गुरु सरणाई छूटीए, मनमुख खोटी रास। गुरु की शरण में आने से ही मुक्ति सम्भव है, किन्तु यह गुरु भीतर ही विराजमान है। निरन्तर ध्यान एवं मनन से गुरुमुखी ज्ञान स्वयं गुरु-रूप हो जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'परमगुरु की असीम कृपा से नाम-रूपी रत्न प्राप्त होता है और मनुष्य मनमुख ज्ञान से निवृत्त होकर गुरुमुख ज्ञान प्राप्त करता है।' गुरुनानक देव का विचार है-

जिसनो क्रिपा करहिं तिनि नाम रतनु पा आ।
गुरुमुखि लाधा मनमुखि गवा या।।

गुरुनानक के साहित्य में गुरु एवं परमात्मा अभिन्न हैं-

ऐसा हमरा सखा सहाई
गुरु हरि मिलिआ भगति दृड़ाई। (आसा, सबद 24)

किन्तु नानक असद् गुरु की भर्त्सना भी करते हैं-

कूड़ बोलि मुरदारु खा ।
अवरी नो समझावणि जाई।
मुठा आपि मुहाए साथै।
नानक ऐसा आगू जापै।। (माझ की वार)

गुरुदेव की मान्यता है कि जो व्यक्ति गुरु के सबद में मरता है, वह ऐसा मरता है कि उसे फिर मरने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह मुक्त हो जाता है-

कहु नानक गुरि ब्रह्म दिखा आ।।
मरता जता नदरि न आ आ।। (गउ ी, सबद 4)

(3) भक्ति भावना - उपनिषद, श्रीमद भागवत, गीता, नारदभक्ति सूत्र आदि ग्रंथों का अनुशीलन करें, तो दो तरह की भक्ति दिखाई देती है- (1) वैधी भक्ति (2) रागानुगा भक्ति। गुरुनानक ने वैधी भक्ति के विविध विधि विधानों- तिलक माला आदि की निस्सारता का वर्णन

करते हुए रागानुगा भक्ति को स्वीकृति दी है, किन्तु कहीं-कहीं वैधी भक्ति को भी मान्यता दी है। दरअसल उनकी भक्ति प्रेमभक्ति है। नानक के अनुसार परमात्मा की विस्मृति बहुत बड़ा रोग है- **' कु तिलु पिआरा वीसरे रोग बड़ा मन माहि।'** गुरु नानक ने अपनी भक्ति को निम्नलिखित प्रतीकों द्वारा व्यक्त है-

- अपने को पुत्र एवं परमात्मा को पिता रूप मानकर - वत्सल भाव
- परमात्मा को अपना सखा मानकर - सख्य भाव
- अपने को सेवक एवं परमात्मा को स्वामी समझना - सेवक-सेव्य भाव
- अपने को भिखारी एवं परमात्मा को दाता समझना – दैन्यभाव
- अपने को स्त्री एवं परमात्मा को पति समझना- माधुर्यभाव

निर्गुण संतों की भक्ति संतभाव की भक्ति है और संतभाव यह है कि जो परमतत्व में लीन हो, जो अपना व्यक्तित्वांतरण करके तद्रूप हो गया हो-

गुरु परसादी दुरमति खोई। जह देखा तह एकौ सोई।।

और ऐसा भक्त ही निर्भय हो सकता है। एक ऐसे समय में जब चारों ओर आतंक, भय का साम्राज्य था। अविश्वास का वातावरण था, तब नानक जैसे भक्त कवियों ने निर्भय होकर निर्भय होने की शिक्षा अपने जीवन, कर्म एवं विचार के माध्यम से दिया था, क्यों कि उनके मन में पवित्र निष्ठा है, सहज भाव है, प्रभु के लिए व्याकुल पुकार है, आत्म समर्पण का तीव्र आवेश है', मधुर तन्मयता है और अपूर्व माधुर्य-

हरि बिन जीऊ जलि बलि जाउ।
मैं आपणा गुरु पूछि देखिआ, अवरू नाहीं थाउ।
धरती त हीरे लाल जड़ती पलंधि लाल जड़ाउ।
मोहणी मुखि मणी सोहै करै रंगि पसाउ।
मति देखि भूला बीसरै तेरा चिति न आवै ताउ।

किन्तु यह तभी सम्भव है, जब अहंकार का नाश हो जाये, क्योंकि गुरुनानक की दृष्टि में हउम या अहंकार भाव मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। उन्होंने ने कहा है कि-

मन रे हउमै छोड़ि गुमानु
हरि गुरु सरवरु सेवित् पावहिं दरगह मानु।।

गुरुनानक की भक्ति के विभिन्न रूप हैं, इन्हें विभिन्न अवस्थाएं भी मानी जा सकती हैं-

(1) सदगुरु की कृपा या प्राप्ति
(2) नाम स्मरण
(3) सत्संगति या साधु संगत

(4) परमात्मा का हुक्म या भय
(5) दृढ़ विश्वास
(6) आत्म समर्पण भाव या ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेम
(7) दैन्य भाव
(8) परमात्मा का कीर्तन एवं निरन्तर स्मरण
(9) भगवद् प्राप्ति या कृपा प्राप्ति

दरअसल नानक ने स्वयं को परमात्मा को समर्पित कर दिया था-

जेता देहि तेता हउ खाउ।
बिआ दरु नाहीं कै दरि जाउ।
नानकु एकु कहै अरदासि।
जीउ पिं सभु तेरै पासि।

और आत्म समर्पण के चरम उल्लास में नानक कह उठते हैं-

हम घरि साजन आए। साचै मेलि मिलाए।
सहजि मिलाए हरि मन भाए पंच मिले सुखु पा आ।

किन्तु यह तभी सम्भव है, जब अहंकार का विनाश हो जाय। अहंकार के त्याग के बिना ईश्वर प्राप्ति तो असम्भव है ही, मनुष्य की मनुष्यता के लिए भी यह जरूरी है।

(4) समानता का भाव - गुरुनानक की साधना वैयक्तिक और आध्यात्मिक होते हुए भी समष्टिपरक है, इसमें समूह मुक्ति की कामना है। निर्गुण संतों की तरह नानक की भी मान्यता है कि सारी सृष्टि ब्रह्ममय है, इसीलिए प्रत्येक प्रकार की भेद दृष्टि निरर्थक है। नानक ने समाज व्यवस्था को विकृत करने वाली रुढ़ियों, पाखण्ड, रीतिरिवाज और मिथ्या आडम्बरों का अस्वीकार कर दिया-

पड़ि पुसतक संधिआ बादं। शिल पूजसि बगुल समाधिं।
मुखि झूठ विमूखण सारं। त्रैपाल तिहाल बिचारं।
गलि माला तिलकु लिलाटं। दुई धोती वसत्र कपाटं।
जो जाणसि ब्रह्मं करमं। सभ फोकट निसचउ करमं।
कहु नानक निहचऊ धिआवै। विणु सतिगुरु वार न पावै।

किन्तु उनका मार्ग प्रेम और मैत्री का है, खंडन-मंडन में कहीं भी वे आक्रोश की भाषा नहीं बोलते, क्योंकि कबीर की तरह वे नीची कही जाने वाली जाति से नहीं आये थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि, 'उनका आदर्श निराकार, निरहंकार और निर्वैर सत्यपुरुष था, उनका बल कथनी और करनी के व्यवधान को पाटने पर था, उनका उपाय एकान्त भगवन्निष्ठा और अंकुठ शरणागति था, उनकी एक विशेष निष्ठा गुरु की शिक्षा पर थी।'दरअसल गुरुनानक ने एक ऐसे मानव-धर्म, विश्व धर्म का स्थापना की, जिसमें किसी प्रकार का भेदभाव

नहीं है। प्रेम ही सर्वोच्च मूल्य है और इस प्रेम की प्रधानता के कारण वे कहीं भी अन्य निर्गुण संतों की तरह आक्रामक नहीं हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है कि 'इनकी भाषा में किसी प्रकार का घुमाव या जटिलता नहीं है। बहुत ही सीधी-सादी भाषा और बहुत ही निर्मल प्रतिपादन शैली- यही नानक की रचनाओं की विशेषता है। इनकी निरीहता में कोई हीनता-ग्रथि नहीं, विरुद्ध पड़ने वाले विचारों के प्रति कोई हिंसा का भाव भी नहीं, और जो लोग सत्य मार्ग से विचलित हैं उनके लिए घृणा का भाव भी नहीं।' दरअसल गुरुनानक का रास्ता निर्वैर का रास्ता है, मृदुल स्वभाव और सत्यशील आचरण का राश्ता है। किसी ने ठीक ही कहा है-

नानक शाह फकीर, हिन्दू का गुरु मुसलमान का पीर।

(5) प्रज्ञा एवं शुद्ध बुद्धि पर बल - सम्पूर्ण निर्गुण संत साहित्य ज्ञान के महत्व पर सर्वाधिक बल देता है, किन्तु यह शास्त्र ज्ञान नहीं है, बल्कि आत्मज्ञान है। गुरुनानक कहते हैं –

मन वैरागी धरि वसै सच भै राता हो ।
गिआन महारसु भोगवै बाहुड़ि भूख न हो ।।

इस ज्ञान से सत्य तक पहुँचा जा सकता है और परमात्मा सत्य रूप ही है। वह त्रिकालातीत सत्य है-

आदि सचु, जुगादि सचु। है भी सचु नानक होसी सचु।

(6) समन्वयवाद - गुरुनानक लोकनायक संत है, क्योंकि उनकी वाणियों में लोक की पीड़ा समाई हुई है। एक ऐसे समय में जब धर्मान्धता एवं भेदभाव चरम पर था, तब उन्होंने अपने मुस्लिम साथी मरदाना की रबाब के साथ सामासिक संस्कृति की ज्योति प्रज्वलित की। उन्होंने एक ओर हिन्दुओं के अवतारवाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड की निन्दा की तो इस्लामी कट्टरता की भी निन्दा की। एक सच्चे मुसलमान की परिभाषा देते हुए कहते हैं-

मुसलमाणु कहावणु मुसलकुल, जो हो ता मुसलमाणु कहावै।
अवलि अंउलि दीनु करि मिठा मसंकल माना मालु मुसावै।
होई मुसलिमु दीन मुहाणै, मरण जीवन का भरमु चुकावै।

इसी प्रकार उनके साहित्य में पैराणिकता एवं ऐतिहासिकता, समकालीनता एवं नैतिक आदर्शों का भी अद्भुत समन्वय है।

(7) अभिव्यंजना पक्ष - गुरुनानक की बानी में हृदय के सहज, सरल अनुभूतिगम्य भावों के निर्भय, निर्द्वन्द्व उद्गार व्यक्त हुए हैं। इनकी वाणी में अनुभूति की प्रधानता होने के कारण अभिव्यंजना इनके लिए साधन मात्र है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन महत्वपूर्ण है- 'अद्भुत है गुरु की वाणी सहज बेधक शक्ति। कहीं कोई आडम्बर नहीं, कोई बनाव नहीं, सहज हृदय साधना है। सहज भाषा बड़ी बलवती आस्था है। सीधी लकीर खींचना टेढ़ा काम है।

गुरु का अनाडम्बर सहज धर्म ऐसी ही सहज वाणी से प्रचारित हो सकता था। कितनी अद्भुत निर्णयमान शैली है। कहीं भी पांडित्य का दुर्धर बोझ नहीं है।' जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, नानक ने अपने समय के समाज की आम भाषा को स्वीकार किया तथा इनकी काव्य-भाषा में देश की भाषिक विविधता भी दिखाई देती। पूर्वी एवं पश्चिमी पंजाबी के साथ ही खड़ी बोली, ब्रजभाषा, रेखता का भी प्रयोग मिलता है। सिन्धी, लहंदा के भी शब्द उनकी वाणियों में है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

(1) खड़ी बोली

(2) लहंदा

(क) हंभी वंण डुंमणी रोवा झीणी वानि (सिरी, रागु, सवद 24)

(ख) मेडा मनु रत आपनड़े पिर नालि (मारु काफी सबद 9)

(3) गुजराती - सजण मेरे रंगुले जाइ सुते जीराणि (सिरी रागु, सबद 24)

(4) ब्रजभाषा - (क) आपि तरै संगति कुल तारे (आसा, सवाद 14)

(ख) तुझ बिनु अवरु न कोई मेरे पिआरे तुझ बिनु अवरु न कोई हरे (आसा, सवद 22)

(5) पूर्वी हिन्दी - (क) भईले उदासो रहउ निरासो (आसा, सवद 26)

(ख) पंकजु मोह पशु नहीं चालै हम देखा तह डूबो अले।

गुरुनानक की भाषा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनकी भाषा में संयम, मर्यादा, शालीनता, शिष्टता के गुणों से युक्त है। प्रतीकों द्वारा इन्होंने अपनी भाषा को भावगर्भित, सजीव एवं व्यंजक बनाया है। दादुर, सिवार, काला हिरन, भँवर मछली, नहर, सरवरि आदि प्रतीक है। कुछ उदाहरण देखिए-

1 - भखसि सिवालु वससि निरमल जल अमृतु, न लखसि रे (रागु मारु, सवद 4)

इस पद में दादुर से अभिप्रेत है विषयासक्त मानव, सिवार विषयवासनाएँ हैं जिनमें वह अनुरक्त है।

2 - उतरि अवकटि सरवरि न्हावै (आसा, असटपदी-1)

यहाँ अवघटि विषयों की घाटी तथा 'सरवरि' सत्संग के सरोवर के प्रतीक हैं।

संगीतात्मकता - गुरुदेव की वाणियाँ संगीतात्मकता से ओत-प्रोत है। नाद सौन्दर्य उनकी वाणियों की मुख्य विशेषताएँ हैं। इतना ही नहीं उन्होंने विभिन्न राग रागिनियों की प्रधानता के आधार पर अपने ग्रंथ का नामकरण भी किया है। एक उदाहरण देखें-

अनहदो अनहदु बाजे रुण झुण कारे राम।।
मेरा मनो मेरा मनु राता लाल पिआरे राम।।

अनदिनु राता मन वैरागी सुनि मण लि घरु पा आ।
आदि पुरखु अपरंपरु पिआरा सतगुर अलख लखा आ।(रागु आसा, महला 1, छंत 2)

निश्चय ही संगीत की जो दिव्य एवं मोहक माधुर्य गुरु जी की वाणी में उपलब्ध है वह अन्यत्र दुर्लभ है एवं संत परम्परा की विशिष्ट पहचान है।

मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ - मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग से गुरु जी की भाषा सर्व जनप्रिय एवं व्यावहारिक हो गई है तथा उसमें लाक्षणिकता का समावेश हो गया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

(क) जिउ गूँगे मिठिआई (गूँगे का गुड़) (ख) सुआन पूछि जिउ रे (स्वान की पूँछ) (ग) कसि कसवटी लाइए (कसौटी पर कसना) (घ) मुँह काला, पति खोइ (प्रतिष्ठा खोना) (ङ) जो वीजै सो खावणा (जो बोना सो खाना)

विभिन्न रसों की योजना - ज्ञान, वैराग्य, भक्ति एवं योग की प्रधानता के कारण शान्त रस मुख्य अंगीरस है- एक उदाहरण देखिए-

मन रे अहिनिसि हरिगुण सारि।
जिन खिनु पलु नामु व वीसरे ते जन विरले संसारि 1/1 रहाउ
जोती-जोति मिलाईए सुरती सुरति संजोगु।
हिंसा हउमे तनु गए नाही सहसा सोगु।।
गुरुमुखि जिसु हरि मनि बसै तिसु मेले गुरु संजोगु ।।2।।20।।
(सिरी, रागु, सबद 20)

इसमें निर्वेद स्थायी भाव है। हर्ष, विषाद, स्मृति आदि संचारी भाव है। जगत की क्षण भंगुरता का आभास, प्रभु चिन्तन, हरिगुणगान आदि आलम्बन विभाव हैं। सत्संग गुरु उपदेश, जरा, व्याधि, मरण उद्दीपन विभाव है। रोमांच, विरक्ति आदि अनुभाव हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमा भक्ति के साधक होने के कारण उन्होंने शृंगार रस से ओत प्रोत रचनाएं भी लिखी हैं किन्तु यहाँ श्रृंगार अलौकिक है, लौकिक नहीं। एक उदाहरण देखिए-

तेरे वके लो ण, दंत रीसाला।
सोहणे नक, जिन लंमड़े बाला।।
कंचन का या, सु ने की ाला।।7।।
तेरी चाल सुहावी, मधुराणी वाणी।
कुहकनि कोकिला, तरल जुआणी।।8/2।। (रागु वहहंसु, छंत 2)

श्रृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों ही पक्ष यहाँ हैं वियोग शृंगार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है।

सावणि सरस मना घण बरसहि रुति आए।
मै मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए।।

पिरु घरि नही आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि राए।
सेज केली खरी दुहेली मरणु भ आ दुख माए।।
हरि बिनु नींद भूख कहु कैसी, कापड़ि तनि न सुखावा।
नानक सा सोहागणि कंती पिरकै अंकि समावए।।9।। (तुखरी, बारहमासा)

इसके अतिरिक्त गुरुनानक ने करुण, रौद्र, भयानक, अद्भुत रस, हास्य रस की भी योजना की है।

समग्रतः गुरुनानक का साहित्य मनुष्य को निर्वैर एवं निर्भय होने का सन्देश देता है। वह अहंकार, भय एवं लोभ से मुक्ति का दर्शन देने वाला साहित्य है, मनुष्य को नैतिक, सदाचारी, सहज एवं सरल बनाने वाला साहित्य है। यहाँ परमार्थ और व्यवहार अलग-अलग नहीं है, बल्कि एक ही है, दरअसल गुरुनानक का साहित्य मनुष्य की अन्तर्निहित शक्ति को जाग्रत करने वाला साहित्य है तथा प्रत्येक प्रकार की सत्ताओं से निर्भय करने वाला वाणी है। तभी तो गुरुनानक कह सके-

मरणै की चिन्ता नहीं जीवण की नाहीं आस।

भगवद् भक्ति एवं त्याग-परायण निर्भीक जीवन ही उनकी साधना का उद्देश्य है।

10.6 गुरुनानक : मूलपाठ

1.

सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरू
अकाल मूरति अजूनी सैमं गुरप्रसादि
आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु नानक होसी भी सचु।।
सोचे सोचि न होवई जे सोची लख वार
चुपै चुपि न होवई जे ला रहा लिवतार।।
मुखिआ मुख न उतरी जे बंना पुरीआ चार।।
सहस सियाणपालख होहि ते क न चलै नालि।।
किव रूचियारा होईरे कूड़े तुटे पालि।।
हुकमि सजाई चलणा नानक लिखिआ नालि।। (जपु जी)

2.

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति कर जैसी जल कमलेहि।
लहरी नालि पछाि ऐ भी विमसै असनेहि
जल महि जीअ उपाई कै कितु बिनु जल मरणु तिनेहि।।
(सिरि रामु-असटपदीआ)

3. विसमादु नाद विसमादु वेदा।। विसमादु जीउ विसमादु भदा।।
विसमादु रूप विसमादु रंगा।। विसमादु नामे किरहि जंतु।।
विसमादु उपण विसमादुपाणी।। विसमादु अगनी खेउहि वि ाणी।।
विसमादु धरती विसमादु खाणी।। विसमादु साहिल नहीं पराणी।।
विसमादु संजोग, विसमादु विजोणु, विसमादु मुख विसमादु भोगु।।
विसमादु सिफति विसमादु सालाह।। विसमादु उझड़ विसमादु राह।।
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि।। विसमादु देखै हाजरा हजूरि।।
देखि वि ाणु रहिआ विसमादु।। नानक बुसणु पूरै भागि।। (आसा दीवार)

4. सावणि सरस मना घण बरसहि रुति आए।
मैं मनि तनि सहु भावै पिर परदेसि सिधाए।
पिरु घरि नहीं आवै मरीऐ हावै दामनि चमकि राए।
सेज केली खरी दुहेली मरणु भ आ दुखु कमाए।
हरि बिनु नींद भूख कहु कैसी कापु तनि ने सुखावए।
नानक सा सोहागणि कंती पिर के अंकि समावए। (बारहमासा)

5. मुसलमाना सिफति सरीअति पड़ि पड़ि करहि बीचारु।
बंदे से जि पवहि विचि बंदी बेखणा कउ दीदारु।
हिंदू सालाही सालाहनि दरसनि रूपि अपारु।
तीरथ नावहि अरचा पूजा अगरवासु बहकारु।
जोगि सुनि धिआवन्हि जेते अलख नामु करतारु।
सूखम मूरति नामु निरंजन का आ का आकारु।
सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै के वीचारि।
देदे मंगहि सहसा गूणा लोभ करे संसारु।
चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा बेकारु।
कि होदा खा चलहि ऐथाऊ तिना भी काई कारु।
जलि थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकारु।
ओ जि आखहि सु तूं है जाणहि तिनाभि तेरी सारु।
नानक भगता भुख सालाहणु सचु नामु आधारु।
सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुणवंतिआ पाछारु।

नोट: नानक के पद मात्र पाठ के लिए दिए गए है परिक्षा मैं इन पदों से व्याख्या नहीं दी जायेगी

10.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप –

निर्गुण भक्ति संप्रदाय के महान दार्शनिक कवि एवं समाज सुधारक गुरूनानक देव जी के संपूर्ण जीवन एवं साहित्यिक अवदान से परिचित हो चुके होंगे। साथ ही आप निर्गुण भक्ति संप्रदाय के काव्य रूप की वैचारिक विशिष्टता का परिचय भी प्राप्त कर चुके होंगे। आपने इस इकाई में अध्ययन किया कि गुरूनानक जी की रचनाएँ भक्ति कालीन मानवतावादी दृष्टि के अनुकूल है। इनकी रचनाओं में समतावादी असाम्प्रदायिक समाज की रचना पर बल है। इनकी रचनाओं में कही भी कट्टरता या आक्रोश नहीं है बल्कि सीधे-साधे ढ़ंग से मानव और ईश्वर के बीच तादात्म की खोज है। इस दृष्टि से आप भक्तिकाल के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं।

10.8 शब्दावली

- निर्गुण - ईश्वर के निराकार रूप की कल्पना।
- असाम्प्रदायिकता - सभी धर्मों के प्रति सम्मान एवं आदर का भाव।
- सहजता - सहज जीवन पर बल।
- समता - समानपूर्ण दृष्टि।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. निर्गुण

2. तलवण्डी

3. 1469

4. कई

(2) 1. सत्य

2. सत्य

3. सत्य

4. सत्य

10.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

2. अनभै साँचा, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

4. पंजाब के हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा. हरमहेन्द सिंह बेदी, हरियाणा।

10.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. गुरु नानक के साहित्य की काव्यगत विशेषताओं को रेखांकित कीजिए तथा हिन्दी संत काव्य परम्परा में गुरू नानक के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

2. गुरु नानक के व्यक्तित्व एवं रचनाओं पर विस्तृत निबंध लिखिए।

इकई 11 रीतिकालः परिचय एव आलोचना

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 रीतिकाल परिचय
11.3.1 पृष्ठभूमि एव प्रवर्त्तक का प्रश्न
11.3.2 काल-विजान
11.3.3 नामकरण
11.3.4 वर्गीकरण
11.3.5 प्रवृत्तियाँ
11.4 रीतिकालः आलोचनात्मक संदर्भ
11.4.1 दरबारीपन
11.4.2 वर्ण्य- संकोच: नकल या मौलिकता
11.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान
11.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ
11.6 रीतिकाल: मूल्यांकन
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.11 सहायक उपयोगी पाठ सामग्री
11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर-मध्यकाल को 'रीतिकाल' की संज्ञा प्रदान की गई है। मध्यकालीन कविता के दो भाग है, जिसमें एक को भक्तिकाल कहा गया और दूसरे को रीतिकाल। भक्तिकाल अपनी विषय वस्तु एवं अभिव्यक्ति में अलग ढंग का काव्य है, तो रीतिकाल अलग ढंग का। कालगत मजबूरी न हो तो भक्तिकाल एवं रीतिकाल को एक साथ विवेचित करने का भी कोई औचित्य नहीं है। भक्तिकाल लोक संवेदना से युक्त काव्य है तो रीतिकाल राजाश्रय प्राप्त काव्य। एक भक्तित्व से युक्त है तो दूसरा श्रृंगारिक तत्व से। रीतिकालीन साहित्य के बारे में तटस्थ मूल्यांकन भी कम ही हुए हैं। एक वर्ग के आलोचक जहाँ इसे घोर सामंती छाया का काव्य मानते हैं तो दूसरा वर्ग इसे साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ काव्य कहता है। इन दो अतिवादों के बीच रीतिकालीन कविता के पुनर्मूल्यांकन के प्रयास भी समय-समय पर होते रहें हैं। इस इकाई के माध्यम से हम रीतिकालीन कविता की प्रवृत्तियों एवं उसके साहित्यिक मूल्यांकन का प्रयास करेंगे।

11.2 उद्देश्य

'मध्यकालीन कविता' शीर्षक प्रश्न पत्र का यह रीतिकाल संबंधित खण्ड की प्रथम इकाई है। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रीतिकाल के काल-सीता, नामकरण से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकालीन प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकालीन समाज, संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल के वर्गीकरण एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल के प्रमुख कवियों से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल की उपलब्धि एवं सीमा को जान सकेंगे।

11.3 रीतिकाल परिचय

'रीतिकाल' मध्यकाल का प्रमुख काव्यान्दोलन था। भक्ति काल के बाद रीतिकालीन साहित्य का आगमन और फिर रीतिकालीन साहित्य के बाद पुनर्जागरणकालीन चेतना का उदय, यह चक्र कई इतिहासकारों के लिए पहेली सा है। लेकिन जो इतिहासकार साहित्य के समाज शास्त्रीय पद्धति से उसका अध्ययन करता है, उसके लिए रीतिकालीन साहित्य सामंती समाज को समझने का एक प्रामाणिक माध्यम भी बन जाता है। इस दृष्टि से रीतिकालीन कविता का अपना अलग महत्व है। इस इकाई में हम रीतिकालीन कविता को उसकी संपूर्णता में समझने को प्रयास करेंगे। रीतिकालीन साहित्य की विशेषता से पूर्व आइए हम उसकी पृष्ठभूमि को समझने का प्रयास करें।

11.3.1 पृष्ठभूमि

भारतीय मध्यकाल में भक्तिकाल का साहित्य जहाँ अपने औदात्य में प्रसंशित काव्य रहा है, वहीं रीतिकाल विषय-वस्तु के स्तर पर हमें उतना संतुष्ट नहीं कर पाता। इसके कई कारण हैं, जिसका अध्ययन हम आगे करेंगे। कई आलोचकों ने यह प्रश्न उठाया है कि भक्तिकाल जैसे श्रेष्ठ साहित्यिक काल के बाद रीतिकाल का आगमन कैसे और क्यों हुआ? साहित्य में क्या इतिहास-संस्कृति या समाज में परिवर्तन अचानक नहीं होता। लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया के बाद कोई परिवर्तन होता है। इतिहास के राजनीतिक दृष्टिकोण से यदि हम देखें कि क्या कोई बड़ा (आधाभूत) परिवर्तन हुआ है तो इसका उत्तर हमें नहीं में मिलेगा। पूरे मध्यकाल की चेतना राजनीतिक दृष्टि से सामंती ही है, हाँ उसके स्वरूप में परविर्तन अवश्य हुआ है। रीतिकाल तक आते-आते सम्पूर्ण देश पर (प्रायः) मुगलकालीन सल्तनत स्थापित हो चुकी होती है। छोटे-छोटे हिन्दु राजा मुगल दरबार में 'कर' भेजकर भोग-विलीस में रत होते हैं। राजाश्रय प्राप्त कवियों का प्रधान ध्येय कामोद्दीप्त राजाओं के लिए उपभोग के चित्र खड़ा करना हो गया, कविता के मल्य पीछे चले गये। भक्तिकाल से रीतिकाल में रूपान्तरण पर टिप्पणी करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है.....''भक्ति की अनुभूति की सद्यनना को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र, और दाम्पत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया गया। ..... कालान्तर में राधा-कृष्ण के चरित्र अपने रूप में हट गए और वे महज़ दाम्पत्य जीवन के प्रतीक -रूप में अवशिष्ट रह गए। प्रेम और भक्ति की संपृक्त अनुभूति में से भक्ति क्रमशः क्षीण पड़ती गई, और प्रेम का श्रृंगारिक रूप केन्द्र में आ गया। भक्तिकाल के रीति- काल में रूपान्तरण की यही प्रक्रिया है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) राजनीतिक दृष्टि से मुगलसत्ता की प्रतिष्ठा और हिन्दु राजाओं का लडाई से अलग होना, मनोवैज्ञानिक रूप से श्रद्धा तत्व के अभाव में प्रेम का वासनामय होना, परम्परा की दृष्टि से प्राकृत-संस्कृत की श्रृंगारिक रचना इत्यादि वे कारण थे, जो रीतिकाल के उदय होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

11.3.2 काल-विभाजन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल का काल-विभाजन करते हुए इसे 1643 ई. से लेकर 1843 ई. तक स्थिर किया है। चिंतामणि त्रिपाठी से लेकर अन्तिम बड़े रीतिकालीन कवि पद्माकर के रचनाकर्म को यह काल- समेटे हुए है। मोटे तौर पर प्रमुख आलोचकों ने रीतिकाल का काल विभाजन इस प्रकार किया है-

समय सीमा	आलोचक
1643-1843 ई.	रामचन्द्र शुक्ल
1700- 1900 ई.	हजारी प्रसाद द्विवेदी
1700-1868 ई.	डा. नगेन्द्र
1650-1850 ई.	रामस्वरूप चतुर्वेदी
1650- 1850 ई.	रामविलास शर्मा/ बच्चन सिंह

1624- 1832 ई. मिश्रबंधु

काल-विभाजन संबंधी प्रमुख आलोचकों के मतों को देखने पर यह बात सहज ही ध्वनित होती है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का काल-विभाजन ही मोटे तौर पर स्वीकृत रहा है।

रीतिकाल के काल-विभाजन को संशोधित रूप में 1650 ई. से 1850 ई. के बीच मान लिया गया है। 1643 ई. से चिन्तामणि त्रिपाठी के माध्यम से रीतिकालीन प्रवृत्ति अखंड रूप से चली और पद्माकर की मृत्यु 1832 ई. के बाद समाप्त होती है। 1842- 43 ई. से राजा लक्षमण सिंह और राजा शिवप्रसाद सितारे 'हिन्द' का रचनाकाल प्रारंम्भ हो जाता है, अतः मोटे तौर पर 1850 ई. से रीतिकाल का समापन काल एवं आधुनिक काल का प्रारम्भ वर्ष मान लिया गया है।

रीतिकाल के प्रवर्त्तन के प्रश्न पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में मतैक्य नहीं है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी रीतिकाल के प्रवर्त्तन का श्रेय चिंतामणि त्रिपाठी को दिया है। उन्होंने लिखा है- '' इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने किया। पर हिन्दी में रीतिग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः 50 वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।'' केशवदास का समय 1590 से प्रारम्भ होता है, जो कविप्रिया, रसिकप्रिया का रचनाकाल भी है। आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त रीतिकाल के प्रवर्त्तक पर अन्य आचार्यों का मत इस प्रकार है-

केशव - जगदीश गुप्त, श्यामयुन्द दास, ा. नगेन्द्र
विद्यापति - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
कृपाराम - भगीरथ मिश्र

इन सभी मतों का समन्वय करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है- ''हिन्दी रीतिकाल परम्परा का आरंभ कहाँ से होता है, इस संबंध में कई दृष्टिकोण उपस्थित किए गए हैं। कालक्रम की दृष्टि से कृपाराम (रचनाकाल – 1541 ई.) का नाम पहले आता है, रचनाकार – व्यक्तित्व की समृद्ध की दृष्टि से केशव दास का (1555-1617 ई.) और आगे अखंड परम्परा चलने के विचार से चिंतामणि का (रचनाकाल - 1643 ई. के आस-पास)। रीतिकाव्यधारा अधिक सजग और व्यस्थित रूप से चलने के कारण यहाँ प्रवर्त्तन की बात कुछ अधिक स्पष्ट रूप से उठती है। कई काव्यशास्त्रीय पक्षों, और प्रबंध तथा मुक्तक शैलियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण भक्ति से रीतिकाव्यधारा में रूपान्तरण का श्रेय अधिकतर केशवदास को दिया जाता है। वे कालक्रम से भक्तिकाल में है, पर प्रवत्ति की दृष्टि से रीतिकाल में। "(हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास', पृष्ठ - 63) आधुनिक आलोचकों ने रीतिकाल का सम्यक् निरूपण करने के कारण केशवदास को ही रीतिकाल का प्रवर्त्तक मान है।

11.3.3 नामकरण

रीतिकाल के नामकरण के प्रश्न पर टिप्पणी करते हुए डा. बच्चन सिंह ने लिखा है '' इस काल का नाम रीतिकाल रखने का श्रेय रामचन्द्र शुक्ल को है। प्रवृत्ति की दृष्टि से इससे बेहतर नाम की कल्पना नहीं की जा सकती ।'' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' पृष्ठ 179) नामकरण के औचित्य पर चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 में टिप्पणी की गई है-" इस काल के काव्य की प्रभुत्व धारा का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। यह 'रीति' शब्द संस्कृत के काव्यशास्त्रीय 'रीति' शब्द से भिन्न अर्थ रखनेवाला है। .....संस्कृत की रीति संबंधी यह धारण हिन्दी काव्यशास्त्र के कुछ ही ग्रन्थों में ग्रहण की गई है। परन्तु रीति को काव्य - रचना की प्रणाली के रूप में ग्रहण करने की अपेक्षा प्रणाली के अनुसार काव्य- रचना करना, रीति का अर्थ मान्य हुआ। इस प्रकार रीतिकाल का अर्थ हुआ ऐसा काव्य जो अलंकार, रस, गुण, ध्वनि, नायिका भेद आदि की काव्यशास्त्रीय प्रणालियों के आधार पर रचा गया हो। इनके लक्षणों के साथ या स्वतंत्र रूप से इनके आधार पर काव्य लिखने की पद्धति ही 'रीति' नाम से विख्यात हुई। '' (पृष्ठ- 563) रीतिकालीन काव्य रचना की विशेष पद्धति क्या थी? इस प्रश्न को थोडा़ और अच्छे ढंग से समझ लेना चाहिए। रीतिकाल के अधिकांश कवि, आचार्य - कवि थे। वे राजकुमार- राजकुमारियों को शास्त्रीय ज्ञान देने के लिए शिक्षक नियुक्त किये गए थे। अतः पहले वे शास्त्रीय ढंग से किसी विषय के लक्षण बताया करते थे और फिर व्यावहारिक रूप से लक्षण को स्पष्ट रकने लिए उदाहरण के रूप में स्व-निर्मित कविता की रचना किया करते थे। इस प्रकार लक्षण- उदाहरण की यह विशेष पद्धति ही 'रीतिकाल' नामकरण का आधार बनी। 'रीतिकाल' का नामकरण इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। बावजूद इसके कई आलोचकों ने इस नामकरण से असहमति व्यक्त की है। उनका तर्क है कि 'रीतिकाल' नामकरण से इस युग की किसी प्रवृत्ति का बोध नहीं होता । रीतिकाल के अतिरिक्त इस युग का नामकरण अन्य आलोचकों ने अपने तर्की के अनुसार किया है , उसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

नामकरण	**आलोचक**
अलंकृत काल	मिश्रबंधु
कलाकाल	डा. रामाशंकर शुक्ल 'रसाल'
श्रृंगार काल	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
रीतिकाल	ग्रियर्सन
मुक्तक काल	नन्ददुलारे बाजपेयी
दरबारीकाल	राहुल सांस्कृत्यायन
रीतिकाल	रामचन्द्र शुक्ल, डा. नगेन्द्र, रामस्वरूप चतुर्वेदी, बच्चन सिंह

रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की प्रधानता रही, अलंकरण की वृत्ति के कारण अलंकारों का प्रयोग ज्यादा हुआ तथा दरबारी वृत्ति के प्रायः रचनाकार थे, अतः उपरोक्त

नामकरण भी अपनी सार्थकता अवश्य रखते हैं। किन्तु 'रीतिकाल; नामकरण अपनी वैज्ञानिकता एवं प्रसिद्धि के कारण बहुमान्य रहा है। अतः यहाँ हम भी इसी नामकरण को उचित मानते हैं।

11.3.4 वर्गीकरण

रीतिकाल का मूल स्वरूप दरबारीकाल और श्रृंगारिक रहा है, किन्तु उसके स्वरूप में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सर्वप्रथम रीतिकाल का विभाजन किया है। शुक्ल जी ने स्पष्ट ढंग से रीतिकाल को दो भागों में विभाजित किया है-

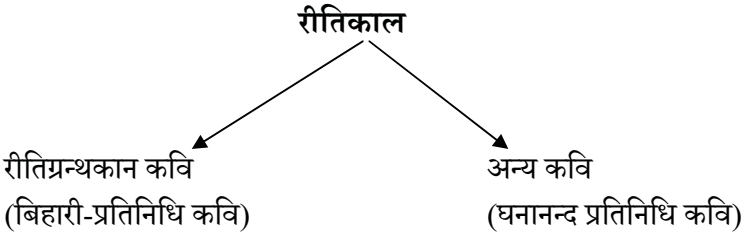

शुक्ल जी के अनुसार रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण की रही है। लेकिन कुछ कवियों ने रीति पद्धति का पालन नहीं किया है, इसलिए उन्होंने उन कवियों को 'अन्य कवि' कहा है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल का सबसे पूर्व, वैज्ञानिक विभाजन करने हुए इसे रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध इत्यादि कहा है। डा. नगेन्द्र ने इसे और स्पष्ट ढंग से विभक्त करते हुए रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त नाम दिया है। डा. बच्चन सिंह ने रीतिकालीन कविता का विभाजन करते हुए इसे रीतिचेतस और काव्य चेतस नाम दिया है। रीतिबद्ध कविता के साथ ही उन्होंने मुक्त रीति नामक विभाजन और किया है और उसे पुनः क्लासिकल (बिहारी) और स्वच्छन्द (घनानन्द) के उप-विभाजनों में बाँट दिया है। वस्तुतः रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन विभाजन ही सर्वमान्य रहे हैं, जिसे हम इस आरेख के माध्यम से देख सकते हैं-

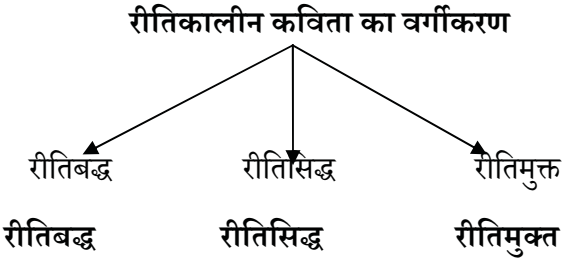

(चिन्तामणि त्रिपाठी, भूषण, केशव, देव, प्रतावसिंह, मतिराम,सूदन इत्यादि कवि)

(बिहारी मुख्यतः)

घनानन्द,आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव इत्यादि

रीतिकाल कविता संबंधी उपरोक्त विभाजन का आधार यह है कि जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना की है, वे रीतिबद्ध कहलाये। जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थों के आधार पर उदाहरणों की रचना की, वे रीतिसिद्ध कहलाये तथा जिन कवियों ने रीतिकालीन लक्षण-उदाहरण से इतर स्वच्छन्द रूप से प्रेमपरक कविताएँ लिखी है वे रीतिमुक्त कहलाये।

11.3.5 प्रवृत्तियाँ

जैसा कि हमने अध्ययन किया कि रीतिकालीन साहित्य राजश्रय प्राप्त साहित्य रहा है। राजश्रय प्राप्त साहित्य के निर्माण की पृष्ठभूमि में राजाओं की इच्छा, उनकी रूचि एवं उनके हित साधन की प्रवृत्ति प्रेरक रूप में रहती है। रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति भी सामंती कारणों से पचिचालित हुई है। संक्षेप में यहाँ हम रीतिकालीन साहित्य की प्रवृत्ति समझने की कोशिश करेंगे।

- **रीति-निरूपण की प्रवृत्ति :** रीतिकाल कविता की सबसे बडी़ पहचान यह है कि कविता करने की एक विशेष पद्धति का पालन अधिकांश कवियों ने किया है, उसी को रीति-निरूपण कहा गया है। पहली पंक्ति में लक्षण एवं द्वितीय पंक्ति में उदाहरण लिखना इसी पद्धति के अंतर्गत आते हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि वाग्धारा बँधी हुई नालियों में कहने लगी। कविता कहने की बँधी हुई रीति का पालन करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि कवियों द्वारा चुने गए वर्ण्य- विषयों में संकोच हो गया। रूप-विधान के चुनाव से साहित्य कैसे संकुचित होता है, इसका अच्छा उदाहरण है- रीतिकालीन कविता।
- **श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति -** रीतिकाल में रस की दृष्टि से श्रृंगार रस की ही अधिकता रही। इसी का लक्ष्य कर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'श्रृंगार काल' कहा था। अन्य रसों वीर रस की दृष्टि से भूषण का काव्य महत्वपूर्ण है, लेकिन वह उस युग की मूल प्रवृत्ति से मेल नहीं खाता है। श्रृंगार प्रवृत्ति के मूल में सामंतो की उपभोगपरक दृष्टि की मुख्य भूमिका रही है। इस काल के कवियों ने भी राजाओं को कामोद्दीप्त करना। अपनी कविता का प्रधान लक्ष्य मान लिया था। श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति के मुख्य वर्ण्य विषय बने-नायिका भेद, नखशिख एवं ऋतु-वर्णन। 'पानिप अमल की झलक झलकन लागी/काई-सी गइ है लरिकाई कढ़ि अंग ते ।।' जैसे वाक्य रीतिकालीन कविता में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है- ''नगर के बाहर के उनके उपवनों में भारतीय और पारसी पुष्पों की बहार थी। कमलो से सुशाभित और भ्रमरों से मुखरित स्वच्छ सरोवरों मै स्नान करती हुई सुन्दरियों के अनावृत्त सौन्दर्य को देखकर कवियों की सरस्वती फूट पड़ती थी''
- **सहजता बनाम अलंकरण-** भक्तिकालीन सहजता की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अलंकरण के रूपमें हुई । मिश्रबंन्धु जैसे इतिहासकारों ने इस काल की कविता में अलंकारों के आधिक्य को देखकर ही इसे 'अलंकृत' काल कहा है। केशवदास जैसे बड़े कवि की कविता अलंकारों के आधिक्य से दुरूह हो गई है। भूषण जैसे प्रतिभाशाली कवियों में भी अलंकार का निरर्थक प्रयोग हुआ है। कविता में अलंकार जहाँ सौन्दर्य की वृद्धि करे वहाँ तक तो ठीक है, लेकिन जहाँ वह केवल सजावट के लिए लाये गये हों, वहाँ कविता की आत्मा मर जाये तो आश्चर्य ही क्या? अलंकरण की इस प्रवृत्ति को आचार्य शुक्ल ने- हाथी-दाँत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे कहा है। भूषण का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शिवराजभूषण' अलंकार ग्रन्थ ही है। केशव की कविप्रिया और मतिराम की 'ललित

ललाम ' में अलंकार विवेचन ही है। अलंकार निरूपण की दृष्टि से जसवन्त सिंह का 'भाषा भूषण' रीतिकाल का आधार ग्रन्थ रहा है।

- **सामंती चित्र और दरबारीपन-** रीतिकालीन-कविता की प्रेरक शक्ति सामंतवाद और दरबारीपन रहे हैं। राहुल सांकृत्यायन, रामविलास शर्मा जैसे आलोचक रीतिकाल की मुख्य प्रवृत्ति 'दरबारीपन' मानते हैं। इसमें आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति पर बल होता है। भूषण का ग्रन्थ शिवराज भूषण, छत्रसालदशक राजप्रशस्ति और दरबारी मनोवृत्ति का अच्छा उदाहरण है। तुसली जहाँ इस बात के लिए सतर्क थे कि उनकी लेखनी से प्राकृत लोगों का गुनगान न हो जाये ('कीन्हे प्राकृतजन गुन गाना/सिर धुनि गिरा लागि पछताना') वहीं इस काल के कवियों ने गर्व से अपने को दरबारी कवि बताया है। सामंती उपभोग चित्रों पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है- ''सामंती दिनचर्या का वर्णन देव ने अपने अष्टयाम में किया है। ऋतु के अनुकूल मादक द्रव्य एकत्र करने में कोई चूक नहीं होती थी। वसंत और वर्षा अपने-आप उद्दीपन है। ग्रीष्म में बर्फ, शीतल पाटी, अंगूरी आसव, खस की टाटी, और ऊँचीहीं कुच है , तो शिशिर में गिलमैं, गुनीजन, गलीचा, सेज, सुराही , सुबाला आदि..... यह सब सामंती शान के आदर्श थे। जीवन-दर्शन के इस सोपान पर कवि अपनी कल्पना के बल पर पहुँच जाता था। इन आदर्शों से गाँव का कोई नाता नहीं था। इसलिए नागर संस्कृति में बिहारी ने गाँव की हँसी उड़ाने में कोई कसर नहीं की है। सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवन्त चित्रण कहीं नहीं मिलेगा।''

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थान पूर्ति कीजिए।

1. रीतिकाल का समय ..... ईसवीं के बीच है।
2. रीतिकालीन साहित्य पर..... ने सबसे पहले वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया।
3. रीतिकाल को श्रृंगार काल ..... ने कहा है।
4. चिन्तामणि त्रिपाठी से रीतिकाल का प्रवर्त्तन ..... ने माना है।
5. कृपाराम से रीतिकाल का प्रवर्त्तन..... ने माना है।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित शब्दों पर 8-10 पंक्तियों में टिप्पणी लिखिए।

1. रीतिकाल की पृष्ठ भूमि
2. रीतिकालः नामकरण की समस्या
3. रीतिकाल की प्रवृत्ति

11.4 रीतिकालः आलोचनात्क संदर्भ

रीतिकालीन काव्य प्रकृति पर चर्चा करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - '' रीतिकाल में कवि ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य रूप में चित्रण करता है (भक्तिकाल में ईश्वर की नर- लीला का चित्रण है।) यहाँ भक्तिकाल और (रीतिकाल की प्राथमिकता के बीच अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। भक्त तुलसीदास लिखते हैं-

''कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति अनुरूप राम गुन गावउँ।''

पर आचार्य भिखारीदास का कहना है-

आगे के सुकबि रीझिहें तों कविताई न तौ,
राधिका - कन्हाई सुमिरन को बहानें है।''

कहने का अर्थ यह है कि दोनों काव्य आन्दोलनों की प्रेरणा भूमि अलग है। आइए अब हम रीतिकालीन कविता को आलोचनात्मक संदर्भी में समझने का प्रयास करें।

11.4.1 दरबारीपन

दरबारीपन स्थिति नहीं प्रवृत्ति है। जब कोई कवि, लेखक आपने आश्रयदाता की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा अपने संकुचित स्वार्थ के लिए करता है, जब कोई कवि/ लेखक सामजिक गतिशीलता से विमुख होकर किसी आधिपत्यकारी ताकतों के हित में लिखता है तो उसे हम दरबारीपन कह सकते हैं। दरबारीपन के लिए जरूरी नहीं कि कवि/ लेखक राज दरबार में बैठकर ही लिखे। हाँलाकि रीतिकालीन कविता राजाश्रय और दरबार में ही लिखी गई है। रीतिकालीन साहित्य की उपयोगिता का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में लिखा गया है ''यह काव्य समाज को प्रगति प्रदान करने में समर्थ नहीं है। रीतिकाव्य और कुछ प्रबन्धकाव्यों में भी हमें व्यापक जीवन-दर्शन वहीं मिलता, इसमें कोई सन्देह नहीं। ..... आश्रयदाता की प्रशंसा में उठी हुई काव्य- स्फूर्ति का सामाजिक तो नहीं परन्तु ऐतिहासिक महत्व अवश्य है। आश्रयदाता की प्रशंसा कला और काव्य के संरक्षण और आश्रय के कारण भी थी और इसके लिए उनकी उदार भावना सराहनीय है। ये राजाश्रय, जिनमें रीतिकालीन कलाकृतियों का विकास हुआ , कवि- दूर से प्रति-भावों को अपने गुणों और कला-प्रेम के कारण खींच सके। अतः मध्ययुगीन राजाश्रय ने कला, काव्य के संरक्षण और प्रेरणा के लिए महत्तवपूर्ण कार्य किया है, यह हमें मानना पड़ेगा।''

11.4.2 वर्ण्य-संकोचः नकल या मौलिकता

रीतिकालीन कविता के वर्ण्य-संकोच पर प्रायः आलोचकों में आपत्ति की है। 200 वर्षों तक कविता श्रृंगार नायिका -भेद, अलंकरण एवं रीति-निरूपण के इर्द-गिर्द घूमती रही है। इस वर्ण्य-संकोच के कारण जहाँ यह कविता सामजिक गतिशीलता में अपना काम जोड़ने से रह गई, वहीं दूसरी ओर कविता के कुछ सुन्दर चित्र भी इकट्ठे हुए। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने

रीतिकालीन कविता पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- ''संस्कृत का काव्यशास्त्र, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और पुस्तक-परंपरा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य और उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित शास्त्रीय संगीत- इन सबका रचनात्मक संपर्क रीतिकाल में हुआ। तब यह स्वाभाविक था कि इन कवियों के लिए मौलिकता का एक ही क्षेत्र सूक्ष्म परिकल्पना का रह जाए। आश्रयदाता की प्रशंसा तथा श्रृंगार -वर्णन के समय बहुत बार यह परिकल्पना अतिरंजना के आवेश में ऊहा का रूप धारण कर लेती है।.....पर बहुत जगहों पर यह परिकल्पना आत्मीय अनुभूति में डूब कर अनुपम काव्य- लय की सृष्टि करती है जो रीतिकाव्य की श्रेष्ठतम् उपलब्धि है। पंडितों के अलावा ऐसे छंन्द ग्रामीण अंचलों तक के मध्य-वित्त परिवार में लोगों को कंठस्थ रहे हैं, 'हजारा' जैसे संकलन इसके कारण और प्रमाण है। '' आगे रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि - ''इनकी मौलिकता काव्य- पक्ष में है, आचार्यत्व में नहीं। और हिन्दी कविता के इतिहास के लिए यह अच्छा ही है। क्योंकि यदि आचार्यत्व की मौलिकता होती तो फिर इन्हें हिन्दी आलोचना और काव्यशास्त्र के संदर्भ में देखा- परखा जाता। कविता के संदर्भ में नहीं। "रीतिकालीन कविता -सिद्धान्त की मौलिकता पर टिप्पणी करतेहुए रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन या पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग एक ही दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म में प्रवृत्ति हो जाते थे। काव्यागां का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खंडन-मंडन, नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ। "रीतिकालीन आचार्यों ने किसी मौलिक सिद्धान्त की रचना नहीं की लेकिन क्या इनकी कविता का कोई मूल्य नहीं है? इस पर टिप्पणी करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं- ''इन रीतिग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः श्रृंगाररस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षणों से चुनकर इक्ट्ठा करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।''

11.4.3 काव्यात्मक प्रतिमान

रीतिकाल पर आचार्य रामचन्द्र ने सर्वप्रथम वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार किया। शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकाल के समानान्तर भक्तिकालीन साहित्य था, इसलिए वे भक्तिकालीन काव्यात्मक (नैतिकता एवं लोकबद्धता) प्रतिमान के धरातल पर रीतिकाल का मूल्यांकन करते हैं, जिसका परिणाम यह रहा कि वे रीतिकालीन साहित्य को सहानुभूति न दे सके। इसका असर यह हुआ कि रीतिकालीन साहित्य के प्रति वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन का अभाव ही रहा। जैसा कि हिन्दी साहित्य कोश भाग एक में लिखा गया है- '' रीतिकालीन काव्य के सम्बन्ध में सामान्यतः दो प्रकार के मत हैं- एक उसे नितान्त हेय और पतनोन्मुख काव्य कहकर उसके प्रति घृणा और द्वेष का भाव जगाता है और दूसरा उस पर अत्यधिक रीझकर केवल उसे ही काव्य मानता है और अन्य रचनाओं, जैसे भक्ति और आधुनिक युग की कृतियों को उत्तम काव्य में परिगणित नहीं करता। वस्तुतः ये दोनों ही दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण है। रीतिकालीन काव्य पर जो दोष लगाये जाते

हैं, वे ये हैं- अश्लीलता, समाज को प्रगति प्रदान करने की अक्षमता, आश्रयदाता की प्रशंसा, विलासप्रियता और रूढ़िवादिता। रीतिकालीन समस्त काव्य को दृष्टि में रखकर जब हम इन दोषों पर विचार करते हैं तो हम कह सकते हैं कि ये समस्त दोष उस युग के काव्य या समस्त रीतिकाव्य पर लागू नहीं किये जा सकते हैं। साथ ही, इन दोषों में से अधिकांश प्रत्येक युग के काव्य में किसी-न-किसी अंश में पाये जाते हैं।'' (पृष्ठ - 564) पीछे हमने पढ़ा कि रीतिकालीन कविता को दो स्वरूप हैं। एक, सैद्धान्तिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने लक्षण देकर काव्य की सैद्धान्तिक विवेचना की हैं दूसरे, व्यावहारिक स्वरूप, जिसमें कवियों ने कविताओं की रचना की है। लक्षण-मुक्त कविता ही रीतिकालीन साहित्य का प्राणतत्व है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, ''रीतिकालीन काव्य की विशिष्टता इस बात में है कि उसकी मूल प्रेरणा ऐहिक है।" ('हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 56) डा. नगेन्द्र ने भी काव्यात्मक प्रतिमान के आधार पर रीतिकालीन कविता को महत्तवपूर्ण माना है। श्रृंगारिक चित्रों की सरसता जैसी रीतिकालीन साहित्य में देखने को मिलता है, वैसी अन्य किसी साहित्य में नहीं। एक -दो उदाहरण देखें-

कुन्दन को रँगु फीको लगै झलकै अति अंगन चारू गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौनि में मंजु विलासन की सरसाई।।
को बिनु मोल बिकात नहीं मतिराम लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों -ज्यों निहारियों नेरे है नैननि त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई।।

फाग की भीर अभीरन तें गहि गोविन्दैं लैगई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर नाय अबीर की झोरी।।
छीन पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचा , कह्यो मुसक्या , लला, फिर आ यो खेलन होरी।।

11.5 रीतिकालीन कविताः भाषाई संदर्भ

रीतिकालीन कविता की भाषा प्रधानतः ब्रजभाषा ही रही है। ब्रजभाषा श्रृंगार एवं नीति के सर्वथा अनुकूल पड़ती है। समरसता की दृष्टि से तो रीतिकालीन कविता की प्रशंसा अधिकांश आलोचकों ने की है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से यह कविता हमें बहुत संतुष्ट नहीं कर पाती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा हैः '' रीतिकाल में एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर वह नहीं हुई। भाषा जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा परिमार्जित होकर प्रौढ़ता को पहुँची उसी समय व्याकरण द्वारा उसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि जिससे उस च्युतसंस्कृति दोष का निराकरण होता जो ब्रजभाषा काव्य में थोडा़ बहुत सर्वत्र पाया जाता है। और नहीं तो वाक्य दोषों का पूर्ण रूप से निरूपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 169) शुक्ल जी ने भाषा अव्यवस्था का कारण ब्रज और अवधी इन दोनों काव्यभाषाओं का कवि इच्छानुसार सम्मिश्रण भी था। इस सम्बन्ध में बच्चन सिंह ने टिप्पणी की हैः ''पर रीतिकाल में हिन्दी का भौगौलिक क्षेत्र पहले से व्यापक हो गया। .....

अतः उनकी बोलियों में स्थानीय बोलियों का भी सन्निवेश हो गया। इससे ब्रजभाषा और भी समृद्ध हुई। '' (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ 186) यानी शुक्ल जी की दृष्टि में रीतिकालीन भाषा में व्याकरणिक दोष है वहीं बच्चन सिंह ने भाषाई विस्तार को रीतिकालीन कविता का गुण कहा है। इन सबसे अलग रामस्वरूप चतुर्वेदी ने रीतिकालीन भाषा की तुलना भक्ति काल की भाषा से की है। एक ओर भक्ति कवि भाखा (लोकभाषा) में रचना करने पर गर्व करते हैं **(भाखाबद्ध करवि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होई - तुलसी)** तो दूसरी ओर केशवदास भाखा में रचना करने के कारण लज्जित है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की इस संदर्भ में टिप्पणी है ''रीतिकालीन काव्य भाषा का सामान्य रूप क्रमशः अधिकाधिक स्थिर और शास्त्रीय होता गया। रीतिकालीन भाषा के क्रमशः जड़ होने के पीछे एक कारण यह भी था कि जहाँ अन्य युगों में काव्यभाषा के कई आधार कवियों को विकल्प रूप में सुलभ थे- खडी़ बोली - ब्रजभाषा - अवधी-वहाँ रीतिकाल में आकर काव्यभाषा का एक ही आधार प्रतिष्ठित हो गया- ब्रजभाषा। स्वभावतः कबीर और सूर के समय से लेकर भिखारीदास तक ब्रजभाषा के पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया कितनी बार संभव हो सकती थी?'' (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, पृष्ठ - 57)

अभ्यास प्रश्न 3

सत्य/असत्य बता ए -

1. रीतिकालीन कविता राजाश्रय में लिखी गई है।
2. रीतिकालीन को अलंकृत काल मिश्रबधुओं ने कहा है।
3. लक्षण ग्रन्थों का सम्यक समावेश हिन्दी कविता में आचार्य केशव ने किया है।
4. कृपाराम की 'हिततरंगिणी' रीतिकाल की पहली रचना मानी जाती है।
5. रीतिकाला की कविता का समय मुगल काल का समय है।

11.6 रीतिकालः मूल्यांकन

आपने अध्ययन किया कि रीतिकालीन कविता का लक्ष्य सामजिक जागरण करना या समाज को गतिशील करना नहीं था, बल्कि इसका लक्ष्य सामंतों का मनोरंजन करना या राजकुमार/राजकुमारियों को शिक्षा देना था या जीवकोपार्जन करना । इस दृष्टि से नैतिकता की तुला पर कोई चाहे तो इस काव्य को ख़ारिज कर सकता है, जैसा कि रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। लेकिन यह देखने पर यह काव्य उतना हेय नहीं है, बल्कि कहीं-कहीं यह हमारी मदद भी करता है। डा. बच्चन सिंह ने रीतिकाल का मूल्यांकन करते हुए लिखा हैः '' मुगल शैली के मिनिएचर चित्रों की भाँति रीतिकालीन काव्यों- विशेषतः श्रृंगारिक काव्यों की बिंब चेतना अनेक मुद्राओं में अभिव्यक्त हुई है। मुद्राओं का इतना वैविध्य भक्तिकालीन काव्य में नहीं मिलेगा। "रीतिकाल का समय मोटे तौर पर भारतीय इतिहास में मुगलकाल का समय है। हम जानते हैं कि मुगलकाल में चित्रकला, वास्तुकला एवं संगीत का प्रचुर विकास हुआ था। रीतिकाल के काव्यों में

मूर्तिमता, चित्र , बिंब, ध्वनि इल्यादि पर मुलकालीन ललित कलाओं का पर्याप्त प्रभाव है। सामंती जीवन के चित्र उकेरने की दृष्टि से रीतिकाल जैसे परिचायक मिलना कठिन है। डा. बच्चन सिंह ने लिखा है कि सारे इतिहास ग्रन्थों को निचोड़ने पर भी सामंती परिवेश का इतना यर्थाथ एवं जीवंत चित्रण कहीं नहीं मिलेगा। इस प्रकार का मन्तव्य इतिहासकार हरिशचन्द्र वर्मा ने व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि मुगलकाल की सभ्यता - संस्कृति को समझने के लिए रीतिकालीन साहित्य से अच्छा परिचायक दूसरा कोई नहीं है। रीतिकालीन काव्य के मूल्यांकन के प्रश्न पर विचार करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है '' रीतिकालीन काव्य का आकर्षण समाज में क्यों बना रहा? इस प्रश्न से आलोचक और इतिहासकार बार-बार उलझते हैं और घूम फिरकर एक ही सामधान उभरता है इस काव्य की श्रृंगारिकता को गाढ़े रेखांकित करके। .....एक सामान्यतः धर्म-भीरू समाज को काव्यास्वाद की यह बहुत बड़ी सहूलियत मिल गई। रीतिकालीन श्रृंगार-चित्रण की यह अपने में विशिष्टता है। .....आकर्षण का एक दूसरा कारण यह है कि रीतिकालीन काव्य भले राजाश्रय में लिखा गया हो, ये ग्रन्थ आश्रयदाताओं को समर्पित हों या उनका नामकरण इन कृपालु शासकों के नाम पर हुआ है और वे उनकी साहित्य-शिक्षा के लिए रचे गए हों, पर इन मुक्तकों में अंकित जीवन प्रायः शत्-प्रतिशत् सामान्य ग्रहस्थ घरों का है। ये नायक- नायिकाएँ राजा-रानियाँ-राजकुमारियाँ नहीं है, वरन् साधारण गोप- गोपियाँ या खाते-पीते घरों की युवतियाँ हैं, जिन्हें उस युग का मध्य वर्ग कहा जा सकता है। '' (हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास, पृष्ठ - 58)

11.7 सारांश

मध्यकालीन कविता की 'रीतिकालः परिचय एवं आलोचना' शीर्षक यह 11 वीं इकाई है। इस इकाई के माध्यम से अब तक आप रीतिकालीन कविता के स्वरूप एवं प्रवृत्ति से परिचित हो चुके हैं। इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आपने जाना कि-

- हिन्दी साहित्य का 'उत्तर रमध्यकाल' (1650- 1850 ई.) रीतिकाल कहलाता है।
- इस काल की कविता का विकास कविता की रीति के आधार पर हुआ। काव्य-रचना की प्रणाली के रूप में रीति को ग्रहण किया गया है। कवि अपनी कविता में पहले काव्य के लक्षण लिखता था और फिर उसको स्पष्ट करने के लिए उदाहरण की रचना करता था। लक्षण-उदाहरण की यह विशिष्ट पद्धति ही 'रीति' है। और इसी कारण इस काव्य धारा को 'रीतिकाल' कहा गया है।
- रीतिकाल के विकास में कई तत्वों का योगदान है। संस्कृत काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, प्राकृत-अपभ्रंश की श्रृंगारी और मुक्तक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य, उत्तर भारत के मंदिरों तथा दरबारों में विकसित संगीत, तत्कालीन राजनीतिक वातावरण, जिसमें हिन्दु राजा युद्ध से अलग होकर उपभोग की ओर मुड़े, भक्तिकाल के भक्ति-आस्था की श्रृंगार में प्रतिक्रिया इत्यादि तत्वों का प्रभाव एवं प्रेरणा रीतिकालीन कविता पर देखा जा सकता है।

- रीतिकालीन कविता राजदरबार में लिखा गया है। अतः इसका उद्देश्य राजाओं की रूचि से जुड़ा रहा है। श्रृंगारिक चित्र, अलंकरण की वृत्ति, दरबारीपन एवं रीति-निरूपण रीतिकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।
- रीतिकालीन कविता के मुख्यतः तीन भेद किए गये हैं। रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध एवं रीतिमुक्त
- रीतिकालीन साहित्य नैतिकता की दृष्टि से या मानवीय मूल्यों के औदात्य की दृष्टि से हमें भले ही सन्तुष्ट न कर पाये, लेकिन मुगलकालीन सामंती क्रियाकलापों का यह प्रामाणिक दस्तावेज है।

11.8 शब्दावली

रीतिबद्ध - काव्य रचना की बँधी हुई परिपाटी पर काव्य रचना करना।

दरबारीपन - सामंत/ राजा को प्रसन्न करने के लिए लिखा गया काव्य।

अखण्ड - बिना अवरोध के चलने वाली प्रवृत्तियाँ

प्रशस्ति - किसी की प्रशंसा बढ़ा-चढ़ा करना।

पुनर्जागरण - नवीन चेतना का उदय

रूपान्तरण - स्वरूप बदलने की प्रक्रिया।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. 1650- 1850 ई. 2. रामचन्द्र शुक्ल 3. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
4. रामचन्द्र शुक्ल 5. भगीरथ मिश्र

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम- (सं) ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी।

11.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- सं. डा. नगेन्द्र, मयूर पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
2. रीतिकाल की भूमिका - डा. नगेन्द्र

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रीतिकालीन कविता के नामकरण की समस्या पर विस्तार से विचार कीजिए?
2. रीतिकालीन कविता का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 12 बिहारी : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 जीवन परिचय
12.3.1 युग परिवेश और समाज
12.3.2 रचनाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व
12.3.3 रीतिसिद्ध कवि
12.3.4 मुक्तक काव्य परम्परा या सतसई परम्परा और बिहारी सतसई
12.4 श्रृंगारिक काव्य
12.4.1 संयोग श्रृंगार
12.4.2 वियोग श्रृंगार
12.5 भक्ति एवं नीति काव्य
12.6 संरचना शिल्प
12.6.1 काव्य रूप
12.6.2 काव्य भाषा
12.6.3 अलंकार
12.6.4 छंद
12.7 संदर्भ सहित व्याख्या
12.8 सारांश
12.9 शब्दावली
12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.13 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाइयों के अध्ययन से आप जान चुके हैं कि रीतिकाव्य के तीन प्रमुख भेद हैं- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। बिहारी रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी एकमात्र प्रसिद्ध रचना 'बिहारी सतसई' है, जो बिहारी की अक्षय कीर्ति का आधार है। अधिकांश रीति कवि दरबारी थे। बिहारी रीतिकाव्यधारा के एक प्रतिनिधि रचनाकार हैं। इस इकाई में हम बिहारी के काव्य पर चर्चा करेंगे। इनके काव्य में श्रृंगार की अतिशयता, विलासी वातावरण की उपज थी। बिहारी ने भी इसी दरबारी काव्य परम्परा को अपनाते हुए अपने काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्षों को अत्यधिक महत्व दिया है।

रीतिकालीन कवियों ने राधा-कृष्ण 'सुमिरन को बहानों' कहके श्रृंगार के साथ भक्ति को स्थान दिया है। बिहारी ने भी भक्ति के साथ नीतिमूलक दोहों की रचना की है। इस इकाई में आप देखेंगे कि कैसे उनकी कृष्ण भक्ति पर भी सामंती व्यवहार की छाप है और नीति से परिपूर्ण दोहों में जीवन का ठोस अनुभव बिखरा पड़ा है।

'बिहारी सतसई' श्रृंगारपरक सतसई परम्परा में तो सर्वश्रेष्ठ है, मुक्तक काव्य परम्परा भी एक अपूर्व मिसाल है। जिसमें नपे-तुले शब्दों में भावों को व्यक्त करने की अनूठी क्षमता है, जिसे पढ़कर आप स्वयं समझ जायेंगे कि बिहारी के दोहों के लिए 'नावक के तीर' क्यों कहा जाता है। बिहारी की इस समास शैली, व्यवस्थित भाषा, वाक्य रचना को देख-पढ़कर आप कवि के अभिव्यक्ति पक्ष की कलात्मक विशिष्टताओं को समझ पायेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बिहारी का जीवन परिचय से परिचित हो सकेंगे।
- बिहारी सतसई की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- रीति काव्य परंपरा को समझ सकेंगे।
- रीति सिद्ध परंपरा क्या है? और बिहारी को रीति सिद्ध कवि क्यों कहा जाता है ? यह जान सकेंगे।
- बिहारी के काव्य के आधार पर रीतिकाव्य की विशेषताएँ स्पष्ट तौर पर समझ सकेंगे।
- बिहारी के काव्य में श्रृंगार के दोनों पक्षों को रेखांकित कर सकेंगे।
- बिहारी काव्य की भक्ति व नीति काव्य सम्बन्धी विशेषताएँ समझ सकेंगे।
- बिहारी के काव्य के कला पक्षीय महत्वपूर्ण घटकों को रेखांकित कर सकेंगे।

12.3 जीवन परिचय

रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारी का जन्म सन् 1595 में ग्वालियर के पास बसुवा गोविन्दपुर गाँव में हुआ। इनके पिता का नाम केशवराय था। इनकी शिक्षा-दीक्षा पितृगुरु महन्त नरहरिदास की देखरेख में हुई। इनका बाल्यकाल बुन्देलखण्ड में बीता। मथुरा में किसी ब्राह्मण परिवार में विवाह होने के पश्चात् ये यहीं बस गए। इन्होंने फारसी काव्य का भी अभ्यास किया और शाहजहाँ के सम्पर्क में आने पर शीघ्र ही उनके कृपापात्र बन गए। सम्राट के कृपापात्र बनते ही बिहारी वृत्ति हेतु अनेक राज्यों में आने-जाने लगे, वृत्ति का दायरा बढ़ता गया। सन् 1645 के आसपास बिहारी वृत्ति लेने जयपुर पहुँचे। कहा जाता है कि उस समय जयपुर के मिर्जा राजा जयसाह (महाराजा जयसिंह) अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम में इतने आसक्त थे कि उन्हें राजकाज से कोई मतलब न था। प्रजा और सामन्तों की सलाह से बिहारी ने निम्न दोहा लिखकर महाराज जयसिंह को पहुँचाया -

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सों बिंध्यों, आगे कौन हलाल।।

इस दोहे का आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। राजा और रानी दोनों प्रसन्न हुए। उन्होंने बिहारी को केवल सम्मानित ही नहीं किया अपितु प्रत्येक दोहे पर एक अशरफी देने का भी संकल्प किया। तभी से बिहारी का मान अधिक बढ़ गया। तदुपरान्त बिहारी राजकवि के रूप में जयपुर में रहने लगे और यहीं रहकर उन्होंने अपनी 'बिहारी सतसई' की रचना की। सतसई की ख्याति के पश्चात् ये पुनः मथुरा लौट आए और सन् 1664 ई. में यहीं इनका निधन हुआ।

12.3.1 युग परिवेश और समाज

युग विशेष के साहित्य के अध्ययन के लिए तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझना बहुत आवश्यक है क्योंकि जहाँ किसी युग का वातावरण राजनीति, समाज, संस्कृति, साहित्य और कला के मूल्यों द्वारा निर्मित होता है वहीं दूसरी ओर वह इनके निर्माण में भी योगदान देता है। बिहारी के रचना-कर्म को समझने के लिए तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक आधारों को दृष्टिपथ पर रखना जरूरी होगा क्योंकि इसी परिवेश ने बिहारी की रचनात्मकता को गति दी है। रीतिकाल मुगल शासन के वैभव के चरमोत्कर्ष और उसके पश्चात् क्रमशः ह्रास-पतन तथा विनाश का काल भी है। बिहारी का समय अकबर के शासन काल का उत्तरार्द्ध और औरंगजेब के राज्याभिषेक के कुछ प्रारम्भिक वर्षों तक का है। उन्होंने जहाँगीर-शाहजहाँ और औरंगजेब तीन मुगल शासकों के शासन और उनकी नीतियों को देखा था। जहाँगीर-शाहजहाँ का काल उनके राज्य विस्तार और शांति और सम्पन्नता वैभव-विलास का काल था। शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल वैभव अपने चरम उत्कर्ष पर था। उच्च वर्ग जहाँ आमोद-प्रमोद में मस्त था वहीं सामान्य जनता उपेक्षित और शोषित थी।

बिहारी को फारसी काव्य का अच्छा अभ्यास था जिससे शाहजहाँ के सम्पर्क में आने पर वे शीघ्र ही उसके कृपा पात्र बन गए। बिहारी सन् 1645 के आसपास जयपुर के महाराजा जयसिंह के दरबार में राजकवि के रूप में रहते थे। महाराज जयसिंह मुगल सम्राट औरंगजेब से मित्रता का हाथ बढ़ा लिये जाने के पश्चात् भोग-विलास में रत हो गया था। उत्तराधिकार का प्रश्न हो, चाहे राजपूतों के विरुद्ध युद्ध करके उन्हें मुगलों की अधीनता स्वीकार करने हेतु विवश करने का, महाराज जयसिंह ने सदैव औरंगजेब का साथ दिया। बिहारी इस बात से दुखी थे, अतः उन्होंने एक दोहे में अन्योक्ति द्वारा राजा की भर्त्सना की -

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि तू पच्छीन न मारि।।

सम्राट और उसके द्वारा नियुक्त अधिकारियों के दोहरे शासन से सामान्य जनता त्रस्त थी। इस गलत प्रशासनिक नीति की ओर संकेत करने से भी बिहारी नहीं चूके –

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढ़ै दुःख द्वन्द्व।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि पावस रवि चन्द।।

सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक ओर इत्र-फुलेल में डूबा शासक और शहरी वर्ग था तो दूसरी ओर दयनीय स्थिति में गुजर-बसर कर रहा भोला ग्रामीण शोषित वर्ग। इन दोनों वर्गों का सजीव चित्रण बिहारी के दोहों में देखने को मिलता है।

12.3.2 रचनाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व

बिहारी जन्मजात प्रतिभा के धनी थे। वे काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे। इसके साथ-साथ उन्हें कामशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, दर्शनशास्त्र, राजधर्म, युद्धविद्या, गणित व कर्मकाण्ड आदि शास्त्र विषयों का भी ज्ञान था। मुगलकाल का सामाजिक जीवन सामंतवाद पर आधारित था, जिसका पूरा-पूरा प्रभाव इनके व्यक्तित्व पर भी पड़ा। विलास और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन ने इन्हें रसिक बनाया जिससे इन्होंने जीवन में भी भोग पक्ष को स्वीकृति दी। बिहारी के निर्द्वन्द्व व्यक्तित्व से शंका, वेदना, अनिश्चीतता, लघुता, आत्महीनता, विवशता आदि संकुचित भावनाएँ बहुत दूर थीं। इसके विपरीत आस्था, विश्वास, उत्साह, साहस और संकल्प जैसे आशावादी गुण उनमें विद्यमान थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह के अनुचित कार्यों पर कटु आक्षेप करने में भी संकोच नहीं किया। (बिहारी अनुशीलन, पृष्ठ 267) इस प्रकार बिहारी के पास एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व था।

कृतित्व - बिहारी की एकमात्र रचना 'बिहारी सतसई' है। इसे 'सतसई' या 'सतसैया' नाम से भी जाना जाता है। इस रचना में बिहारी के 713 मुक्तक परम्परा के दोहे तथा सोरठे संगृहीत हैं। हिन्दी में सतसई परम्परा के प्रारम्भ का श्रेय 'बिहारी सतसई' को प्राप्त है। इसके अनुकरण पर सात सौ दोहों के संग्रह को 'सतसई' के रूप में प्रकाशित करने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया और एक समृद्ध सतसई परम्परा सामने आई। आधुनिक काल से पूर्व तक सतसई शब्द केवल बिहारी

सतसई और उसकी लोकप्रियता का आभास कराता है वहीं दोहों में निहित गूढ़ार्थ और उसके प्रभाव को भी स्पष्ट करता है -

सतसैया के दोहरे ज्यों नाविक के तीर। देखन में छोटे लगैं घाव करें गंभीर।।

बिहारी के दोहों के लिए 'गागर में सागर भरने' की उक्ति प्रसिद्ध है। मुक्तक रचनाओं की उत्कृष्टता हेतु रामचन्द्र शुक्ल कल्पना की समाहारशक्ति और भाषा की समास शक्ति को आवश्यक मानते हैं। इन दोनों विशेषताओं का समावेश इस रचना में देखने को मिलता है। बिहारी सतसई श्रृंगार प्रधान रचना है जिसमें श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की अनूठी व्यंजना हुई है, तथापि भक्ति नीति आदि अन्यान्य विषयों की अभिव्यक्ति भी इसमें बखूबी देखी जा सकती है।

12.3.3 रीतिसिद्ध कवि

रीतिकालीन साहित्य के रचयिता कवि तीन प्रकार के थे- रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध व रीतिमुक्त। बिहारी मुख्यतः रीतिसिद्ध धारा के कवि हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से काव्य तत्वों का निरूपण नहीं किया और नहीं लक्षण ग्रन्थ की शैली को अपनाया। इस प्रकार विशुद्ध काव्य का सर्जन करने वाले कलाकार सच्चे अर्थों में रीतिसिद्ध कवि हैं और उनका काव्य रीतिसिद्ध काव्य है। ऐसा नहीं है कि बिहारी रीतिशास्त्र की परम्परा से अनभिज्ञ हैं, काव्य का शास्त्रीय आधार उन्हें ज्ञात नहीं वरन् रीति शास्त्र की परम्परा में वे पूरी तरह सिद्ध हैं और रचनाकर्म में प्रवृत्त होने पर उनकी दृष्टि रस अलंकार, ध्वनि तथा नायिका भेद आदि लक्षणों पर पूरी तरह केन्द्रित रही है। यद्यपि बिहारी ने 'सतसई' की रचना लक्षण गंथ के रूप में नहीं तथापि दोहा बनाते समय बिहारी का ध्यान काव्य लक्षणों पर अवश्य केन्द्रित था। शुक्ल जी का भी मत है कि 'बिहारी ने यद्यपि लक्षण ग्रन्थ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है पर 'नखशिख' 'नायिका भेद' षट् ऋतु वर्णन के अन्तर्गत उनके सभी श्रृंगारी दोहे आ जाते हैं।' इस प्रकार वे रीतिशास्त्र की एक बँधी बधाई लीक पर न चलते हुए भी उससे कहीं आगे निकल जाते हैं। बिहारी की इसी विशेषता पर आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं- 'शास्त्र स्थिति संपादन मात्र इनका लक्ष्य नहीं था। कहीं तो चमत्कारातिशय के लिए ये उक्तियाँ बाँधते थे और कहीं रसाभिव्यक्ति के लिए। कही इन्होंने रीतिशास्त्रों में गिनाई सामग्री का त्याग करके अपने अनुभव और निरीक्षण से प्राप्त उपलब्धि, सामग्री या नूतनता का सन्निवेश करते थे। किसी विशेष नायिका या नायक के स्वरूप के लिए जो शर्तें शास्त्रों में कही हुई हैं वे उप लक्षण मात्र हैं, अर्थात् वे मार्ग निर्देश के लिए हैं। उनके सहारे नई-नई कल्पनाएँ स्वयं कवि कर सकता है और भी बातें वह ला सकता है' (बिहारी की वाग्विभूति पृष्ठ 22)। इस प्रकार बिहारी रीतिसिद्ध काव्य धारा के एक अन्यतम कवि हैं।

इस समय फारसी राजभाषा थी और फारसी कवियों को भी दरबार में राज्याश्रय प्राप्त था। अतः तत्कालीन सामाजिक व साहित्यिक परिस्थितियों के वशीभूत होकर बिहारी ने चमत्कारिक उक्तियों का नवीन प्रयोग अपने दोहों में किया है -**करी विरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़त नीचु। दीने हूँ चसमा चखनु चाहे लहै न मीचु।।**

विरह की तीव्रता ने नायिका को इतना क्षीणकाय कर दिया है कि मृत्यु चश्मा लगाकर भी उसे नहीं ढूँढ पा रही है। ऐसा अस्वाभाविक किन्तु रोमांचक चित्रण फारसी में ऊहात्मक वर्णन कहा जाता है, जिसका प्रयोग बिहारी ने स्थान-स्थान पर किया है क्योंकि बिहारी को फारसी कवियों का साहचर्य तो प्राप्त था ही साथ ही यह दरबारी परिवेश की माँग भी थी। बिहारी ने अलंकार, रस, भाव, नायिका- भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि का ध्यान रखकर सुन्दर दोहों की रचना कर एक चमत्कारिक स्वतंत्र काव्य सौन्दर्य की सृष्टि की है। इस काव्य की प्रेरणा का आधार अंतःकरण की स्फूर्ति के प्रभाव से न होकर दरबारी है। जिसके कारण इसकी बराबरी घनानन्द, देव आदि रीतिमुक्त कवियों से नहीं की जा सकती।

12.3.4 मुक्तक काव्य परम्परा या सतसई परम्परा और बिहारी सतसई

रचना शैली की दृष्टि से काव्य दो प्रकार का होता है- प्रबन्ध काव्य व मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य में जहाँ सर्गों की कथावस्तु का परस्पर सम्बन्ध रहता है वहीं मुक्तक काव्य का प्रत्येक पद्य स्वयं में स्वतंत्र होता है। (बिहारी ने प्रबन्ध काव्यों की रचना न कर मुक्तकों द्वारा काव्य-शास्त्र का बोध कराना प्रारम्भ किया।) रस की पूर्णता का बोध कराने के लिए जितना अवकाश प्रबन्ध काव्य में होता है उतना मुक्तक काव्य में नहीं। मुक्तक तथा प्रबन्ध काव्य का भेद स्पष्ट करने के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथन को उद्धृत किया जा सकता है ''मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 168) इसी से यह सभा समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। इसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संगठित पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि कोई एक रमणीय खंडदृश्य इस प्रकार सहसा सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मंत्रमुग्ध सा हो जाता है। इसके लिए कवि को मनोरम वस्तुओं और व्यापारों का एक छोटा सा स्तवक कल्पित करके उन्हें अत्यन्त संक्षिप्त और सशक्त भाषा में प्रदर्शित करना पड़ता है। बिहारी में कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समाहार शक्ति पूर्णरूपेण विद्यमान थी, जिसकी आवश्यकता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मुक्तक रचनाकार की सफलता के लिए आवश्यक मानते हैं। यही कारण है कि बिहारी एक सफल मुक्तक कार साबित हुए। कल्पना की समाहार शक्ति का एक उदाहरण देखिये-

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाय।।
सी प्रकार भाषा की समाहार शक्ति का उदाहरण देखिये-
कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौंन में करत है, नैननु ही सों बात।।

भारतीय साहित्य में मुक्तक पद्यों के संग्रहों को प्रारम्भ में शतक, सप्तशती तथा हजारा के नाम से अभिहीत किया गया है। हिन्दी के रचनाकारों ने 'सतसई' शब्द का प्रयोग अधिक किया। सतसई शब्द संस्कृत के 'सप्तशती' शब्द का विकृत रूप है। हिन्दी में संस्कृत-प्राकृत को ही आदर्श मानकर 'सतसई' लिखने की परम्परा विद्यमान रही। संस्कृत में भक्ति एवं स्तोत्र सम्बन्धी साहित्य के लिए 'सप्तशती' का प्रयोग होता था। दुर्गाशप्तसती, वैराग्य-शतक, विष्णु सहस्रनाम आदि इस प्रकार के ग्रन्थ हैं किन्तु ये मुक्तक रूप में नहीं हैं। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मानना है कि भारत में आभीर जाति के आगमन के साथ ही उनके स्वच्छन्द और ऐहिकतामूलक जीवन का प्रभाव भारतीयों पर पड़ा और साधारण जीवन में व्याप्त प्रेम-भावनाओं, श्रृंगगार सम्बन्धी चेष्टाओं एवं दैनिक हास-परिहासपूर्ण क्रिया-व्यापारों का वर्णन ही इन 'सप्तशती' का विषय बनने लगा- इसका पहला प्रयास हाल कविकृत 'गाथा सप्तशती' के अन्तर्गत दिखाई देता है। यह प्राकृत भाषा में लिखित 700 आर्या छन्दों का संग्रह है। इसमें प्रणय के मार्मिक चित्र हैं। इसके पश्चात् सतसई साहित्य की परम्परा में भर्तृहरि कृत 'श्रृंगार शतक', अमरूक कृत 'अमरूक शतक', तदन्तर गोवर्द्धनाचार्य कृत 'आर्या सप्तशती' आती हैं। 'आर्या सप्तशती' में श्रृंगार के संयोग-वियोग के चित्र संस्कृत के आर्या छन्द में लिखे गये हैं। संस्कृत साहित्य में सप्तशती ग्रन्थों में श्रृंगार रस की मार्मिक व्यंजना मिलती है। हिन्दी में लिखी गयी 'सतसई' को सूक्ति सतसई और श्रृंगार सतसई दो श्रेणियों में बाँटा जाता है। 'बिहारी सतसई' श्रृंगार सतसई श्रृंखला की महत्वपूर्ण कड़ी है। इसकी प्रेरणा से हिन्दी में अनेक 'सतसई' और 'हजारा' शीर्षक ग्रन्थ रचे गये। बिहारी सतसई की लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि रामचरित मानस को छोड़कर इसपर सबसे अधिक टीकाएँ लिखी गयी हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि बिहारी सतसई एक लक्ष्य ग्रन्थ है, लक्षण नहीं। इसका समस्त रचना विधान रीतिबद्ध है। इसमें लगभग सभी प्रमुख अलंकार सहज रूप से समाविष्ट हैं। ध्वन्यात्मकता इसका प्रमुख गुण है। किसी भी दशा, मनोभाव या परिस्थिति का चित्रण करने में बिहारी सिद्धहस्त हैं। प्रत्येक शब्द का रूप, गुण, क्रिया के आधार पर अपना विशिष्ट अर्थ सौन्दर्य होता है। बिहारी शब्दों की इस अर्थवत्ता के प्रति बहुत जागरूक हैं। शब्दों के अनेक पर्याय होते हुए भी वस्तु विशेष के लिए प्रयुक्त वह पर्याय शब्द अत्यन्त सटीक होने से विवक्षित वस्तु को जिस प्रकार से प्रकट करता है उसे वहाँ कोई अन्य शब्द प्रकट नहीं कर सकता। बिहारी ने ऐसे कई शब्दों का प्रयोग किया है, जिससे भाव वस्तु का बोध आसानी से होता है और भाषा की सामर्थ्य बढ़ जाती है, ऐसे शब्द अपने किसी पर्याय से नहीं बदले जा सकते। उदाहरणार्थ-

पूस-मास सुनि सखिनु पैं साई चलत सवारू।
गहि कर बीन-प्रबीन तिय राग्यौ रागु मलारू।।

पूस मास में नायक के विदेश जाने की बात सुनकर नायिका बीणा लेकर मल्हार राग गाना प्रारम्भ कर देती है ताकि वर्षा हो जाए और नायक का विदेश गमन स्थगित हो जाए। बीणा बजाने में कुशल नायिका के लिए 'प्रवीण' विशेषण महत्वपूर्ण है। इसके स्थान पर कुशल, चतुर

आदि शब्दों का प्रयोग सटीक नहीं बैठता। नायिका के भाव, अनुभाव और सौन्दर्य वर्णन में बिहारी अद्वितीय हैं। शुक्ल जी के शब्दों में 'बिहारी की रसव्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों के विधान में दिखाई पड़ता है। जिसका उदाहरण द्रष्टव्य है-'

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय
सौंह करै भौंहनि हँसै, देन कहे नारि जाय

यहाँ पर 'सौंह करना', भौंहों में हँसना, देने के लिए कहना, नट जाना आदि सभी कार्य-व्यापार किसी विशेष उद्देश्य से चेष्टापूर्वक किए गए हैं।

बिहारी सतसई में आए अनेक दोहे 'गाथा सप्तशती', 'अमरूक शतक', 'आर्या सप्तशती' तथा अन्य पूर्ववर्ती कवियों के काव्य पर आधारित हैं, इस प्रकार के दोहों के आधार पर डॉ. गुप्त इन दोहों को अनुवाद कला का प्रमाण मानते हैं न कि काव्य कला का। बिहारी सतसई के आधार पर मतिराम ने 'मतिराम सतसई' बनाई किन्तु अध्ययन की गम्भीरता, चिन्तन की प्रौढ़ता एवं भाषाई अधिकार के क्षेत्र में 'मतिराम सतसई' की बिहारी सतसई से कोई तुलना नहीं। 'बिहारी सतसई' में मानव-मनोवृत्तियों के सहज, मनोरम चित्रों के अंकन के साथ-साथ तत्कालीन जन-जीवन का जीता-जागता चित्र भी उपस्थित है। निःसन्देह 'बिहारी सतसई' को सम्पूर्ण सतसई साहित्य में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रीति सिद्ध कवि किसे कहते हैं? उत्तर दीजिये।

.....
.....
.....

2. उचित शब्दों द्वारा रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए।

क. बिहारी की रचना को .....कहा जाता है- (बिहारी रत्नाकर, बिहारी सतसई)

ख. बिहारी .....काव्य धारा के कवि हैं- (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध)

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित रचनाओं में से सतसई परम्परा की सबसे पहली रचना कौन-सी है ? सही विकल्प का चुनाव करें -

(क) आर्या सप्तशती (ख) अमरूक शतक
(ग) गाथा सप्तशती (घ) भर्तृहरि शतक

12.4 श्रृंगारिक काव्य

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'श्रृंगार काल' नाम देते हैं। इस नाम के पीछे उनका आधार यही था कि इस काल में श्रृंगार रस से परिपूर्ण कविताओं की रचना ही अधिक हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी संकेत किया है कि 'वास्तव में श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगार काल कहे तो कह सकता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 223) किन्तु 'श्रृंगार काल' नामकरण में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि इस युग में सिर्फ श्रृंगार रस की ही रचनाएँ नहीं हुई, बल्कि वीर, भक्ति, नीति, हास्य आदि विभिन्न विषयों पर भी काव्य रचनाएँ हुई।

रीतिकालीन साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति श्रृंगार का प्राधान्य है। इस युग में श्रृंगारिकता का जो प्रबल वेग दिखाई देता है, इसके लिए तद्युगीन परिस्थितियाँ तो बहुत हद तक जिम्मेदार हैं, साथ ही संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं से चली आ रही मुक्तक काव्यों की एक ऐसी परम्परा का भी प्रभाव है जिसमें श्रृंगार रस का निर्बाध और स्वच्छन्द चित्रण विद्यमान है। राधा-कृष्ण आदि देवी-देवताओं की प्रणय-लीलाओं के माध्यम से श्रृंगार का खुलकर वर्णन हो रहा था। इस काल के कवियों ने राधा कन्हाई के सुमिरन के बहाने श्रृंगार रस का भरपूर चित्रण किया। बिहारी के अतिरिक्त देव, पद्माकर, भिखारीदास आदि कवियों ने श्रृंगार को समृद्धि दी। सामंतकालीन वातावरण में वैभव विलास की अधिकता थी। सर्वत्र रसिकता विद्यमान.....। ऐसे सामन्ती परिवेश में पालन-पोषण होने के कारण सौन्दर्य के वर्णन में कवियों की दृष्टि 'श्रृंगार को सार किशोर-किशोरी' पर अटक गई। शील एवं सौन्दर्य से सम्पन्न अलौकिक सत्ता रूप-गुण सम्पन्न नारी की काम चेष्टाओं आदि में सिमट गई। बिहारी रचित यह दोहा इस प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है-

तजि तीरथ हरि राधिका, तन दृति करि अनुराग।
जेहि ब्रज केलि निकुंज मग, पग-पग होत प्रयागु ।।

अर्थात् तीर्थ व्यर्थ है। श्रीकृष्ण और राधा के शरीर की आभा केलि-क्रीड़ाओं में ही प्रयाग है।

तत्कालीन परिवेश और दरबारी संस्कृति से बिहारी गहरे जुड़े हुए थे। श्रृंगार कामुकता का पर्याय बन गया था। ऐसे में विलासी जनों के योग्य कामोद्दीपक एवं मनोरंजक उन कलित, ललित एवं कुसुमित मालती कुंजों का वर्णन कर बिहारी ने तत्कालीन जीवन में व्याप्त विलासिता का जीता-जागता चित्र अंकित किया है-

घाम घरीक निवारियै कलित-ललित अलि-पुंज।
जमुना-तीर-तमाल-तरु, मिलित मालती कुंज ।।

फारसी संस्कृति और साहित्य की श्रृंगारिकता का प्रभाव भी बिहारी पर पड़ा। ऊहात्मक शैली में लिखे गए दोहे इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। बिहारी के प्रेम वर्णन का मुख्य आधार शारीरिक

सौन्दर्य है। उनके लिए प्रेम जीवन-मरण का प्रश्न नहीं है, क्रीड़ा मात्र है, जो श्रृंगार के बाहरी पक्ष पर अधिक केन्द्रित है।

12.4.1 संयोग श्रृंगार

साहित्य में श्रृंगार रस को रसराज कहा जाता है। इसका स्थायी भाव रति है। श्रृंगार के दो भेद माने गये हैं- संयोग श्रृंगार और विप्रलंभ श्रृंगार या वियोग श्रृंगार बिहारी ने श्रृंगार के संयोग पक्ष का वर्णन करते हुए नायिका का नखशिख वर्णन, प्रेम की विभिन्न स्थितियाँ, विभिन्न क्रीड़ा-व्यापारों, काम-चेष्टाओं, अठखेलियों, विभिन्न प्रकार की रति-क्रीड़ाओं आदि का मनोयोग से वर्णन किया है। बिहारी ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत नायिकाओं के अभिसार का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। शुक्ल पक्ष की रात्रि में अपने प्रेमी से मिलने जाती नायिका शुक्लाभिसारिका और कृष्णपक्ष की रात्रि में प्रेमी के समीप अभिसार हेतु जाती नायिका कृष्णाभिसारिका कहलाती है। शुक्ल पक्ष की रात्रि में प्रिय मिलन को जाती नायिका का सुन्दर वर्णन बिहारी ने किया है -

जुवति जोन्ह में मिलि गईं नैंकु न होति लखा ।
सौंधे कैं ौरैं लगी अली चली संग जा ।।

गौरवर्ण की नायिका चाँदनी के प्रकाश में एकाकार हो गई, किसी को दिखाई नहीं पड़ी, साथ चलने वाली सखी भी उसकी सुगन्ध के सहारे चल रही है। अभिसार के उपरान्त लौटते हुए मार्ग में चन्द्रमा के प्रकाश से उत्पन्न उसकी घबराहट, भयभीत होने, छिपने आदि का बड़ा सुन्दर वर्णन निम्नांकित दोहे में देखा जा सकता है-

अरी खरी सरपट परी, बिधु आधे मग हेरि। संग लगे मधुपनि लई भागनु गली अंधेरि।।

बिहारी ने संयोग वर्णन में उन बाहरी व्यापारों का भी सुदर वर्णन किया है, जिससे नायक-नायिका परस्पर आनन्दानुभूति पाते हैं। प्रिय की सभी वस्तुएँ व सभी कार्य प्रियतमा के लिए सुखद हैं। प्रिय द्वारा पतंग उड़ाये जाने पर प्रिया पतंग की परछाई छूती हुई, आँगन में पगली-सी दौड़ती-फिरती है-

उड़ति गुड़ी लखी ललन की, अँगना अँगना माँह ।
बौरि लौं दौरति फिरति, हुवति छबीली छाँह ।।

इस प्रकार बिहारी ने संयोग श्रृंगार का बड़ा ही भावोत्तेजक, मनोरंजक एवं वासनात्मक रूप प्रकट किया है।

12.4.2 विप्रलभ या वियोग श्रृंगार

बिहारी ने वियोग के विभिन्न भेदों एवं विभिन्न काम- दशाओं की बड़ी ही आकर्षक व सजीव अभिव्यक्ति दी है। इनके वियोग वर्णन में फारसी की उहात्मक शैली और सूफी ढंग की प्रेम दशाओं का पूरा-पूरा प्रभाव है। वियोग की सामान्यतः चार दशाएँ मानी गयी हैं-

1. पूर्व राग 2. मान 3. प्रवास और 4. करुण

वियोग से तात्पर्य है- दो प्रेमियों का विछोह। बिहारी ने वियोग की इन सभी दशाओं का चित्रण बड़ी कुशलता से किया है। 'पूर्व राग' से तात्पर्य है- प्रिय मिलन से पहले उसके गुणों को सुनकर या उसका रूप सौन्दर्य देखकर उसके प्रति हृदय में जो प्रेम व आकर्षण होता है परन्तु किसी कारणवश मिलन सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में नायिका की जो स्थिति होती है वह पूर्व राग है। उसका सजीव चित्रण बिहारी द्वारा निम्न रूप में किया गया है -

हरि-छवि-जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरैंन।
भरत, रत, बूढ़त, तरत, रहत घरी लौं नैन ।।

अर्थात जब से नायिका के नेत्र प्रिय की छवि रूपी जल में बड़े हैं तब से क्षणभर भी उससे नहीं बिछुड़ते। समय-सूचक कशेरी की भाँति निरन्तर भरते-ढरते, डूबते-उतराते रहते हैं। वियोग के दूसरे भेद 'मान' को दो भागों में बाँटा गया है- प्रणय मान और ईर्ष्या मान। 'प्रणय मान' में नायक-नायिका छोटी-सी बात पर एक-दूसरे से रूठकर विरह की आग में जलते हैं। जबकि 'ईर्ष्या मान' में प्रिय को अन्य सुन्दरियों के प्रति आशक्त देख नायिका के हृदय में नायक के प्रति क्रोध होता है। बिहारी द्वारा अंकित 'प्रणय मान' का सुदर उदाहरण द्रष्टव्य है- जिसमें नायक व नायिका दोनों ही रूप सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं और गर्वित हैं। दोनों ही यह ठान लेते हैं कि देखें पहले कौन मनाता है, कौन मान छोड़ता है और कौन पहले मानता है -

दोऊ अधिकाई भरे एकै गौं गहराई।
कौनु मनावै, को मनै, माने मन ठहराई ।।

'प्रवास' सम्बन्धी विरह का वर्णन बिहारी सत्सई में प्रचुर मात्रा में मिलता है। इस तरह के वर्णन में बिहारी कुशल हैं। जाड़े की रात में नायिका प्रवासी प्रियतम की विरहाग्नि में जल रही है, उसकी सखियाँ स्नेहवश उसके समीप जाने के लिए गीले कपड़ों की ओट लेती हैं, उदाहरण द्रष्टव्य है-

आड़े दै आलै बसन, जाड़े हूँ की राति।
साहसु ककै सनेह-बस, सखी सबै ि ग जाति।।

बिहारी ने नायक के प्रवास से उत्पन्न नायिका के विरह का वर्णन करते हुए उसके अतिशय कष्ट का चित्रण करने के लिए अतिशयोक्तियों का सहारा लिया है। कहीं नायिका विरह में इतनी कृशकाय हो गई है कि मृत्यु चश्मा लगाकर भी उसे नहीं ढूंढ पा रही है तो कहीं विरहाग्नि में जलती नायिका के ऊपर गुलाब जल की शीशी उड़ेली जाती है किन्तु वह नायिका के शरीर में गिरने से पहले ही उसकी विरहाग्नि की लपटों से सूख जाता है; उदाहरणार्थ –

करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़तु नीचु।
दीने हूँ चसमा चखनु चहै लहै ना मीचु ।।

इसी प्रकार –

औंधाई सीसी सु लखि बिरह-बरति बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ, छीटौं छुई न गात।।

बिहारी का विरह-जन्य काम दशाओं का वर्णन भी अत्यन्त मार्मिक है। साधारणतया दस काम दशाएँ मानी गई हैं- जिन्हें चिंता, अभिलाषा, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण नाम दिए गए हैं। इन सभी दशाओं का वर्णन बिहारी ने अपने काव्य में किया है।

12.5 भक्ति एवं नीति काव्य

बिहारी का संबंध न किसी भक्ति सम्प्रदाय से था न किसी मतवाद से। फिर भी कुछ विद्वानों द्वारा उन्हें विभिन्न मत-मतान्तरों से जोड़ा गया है; उदाहरणार्थ डॉ. रामसागर त्रिपाठी ने इन्हें हरिदासी सम्प्रदाय से प्रभावित व निम्बार्क मत का अनुयायी बताया है। हरिदासी सम्प्रदाय में युगलोपासना का भाव बड़ा महत्वपूर्ण है। बिहारी के इस दोहे में यह भाव निरूपित है-

नितप्रति एकत ही रहत वैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक।।

बिहारी ने कृष्ण की अपेक्षा राधा को अधिक महत्व दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में यह विशेषता देखने को मिलती है; उदाहरणार्थ -

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।

और निम्नलिखित दोहे के आधार पर बिहारी को अद्वैतवादी समझा जाता है -

मैं समुझयौ निराधार यह जग काचों काँच सौं।

इस प्रकार बिहारी पर अनेक मतों का प्रभाव दिखाया जाता है जो उनके किसी एक मत विशेष के अनुयायी न होने को ही बल देता है। वस्तुतः बिहारी को राम-कृष्ण, सगुण-निर्गुण आदि सभी स्वीकार्य थे। बिहारी ने इन सभी को सामान्य भाव में ग्रहण किया है। भक्ति संबंधी दोहों में कहीं बिहारी ने 'मैं समुझयौ निराधार यह जग काँचो काँच सौ' कहकर संसार को कच्चे काँच के समान क्षणभंगुर कहा है, तो ''एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ'' कहकर इस संसार के प्रत्येक पदार्थ में उसी अलौकिक रूप की आभा को प्रतिम्बित पाया है। जिस प्रकार सूरदास 'प्रभु हौं सब पतितन को टीको' कहकर स्वयं को महापापी बताकर श्री कृष्ण भक्ति की चाह रखते हैं। उसी प्रकार बिहारी भी कहते हैं कि हे मुरारि! अब देखना है कि आपका विरद किस प्रकार कायम रहता है क्योंकि आप एक सामान्य पापी गिद्ध को तारकर, मुझ महापापी से आकर उलझे हो। उदाहरणार्थ - **कौन भाँति रहिहै विरदु, अब देखिबी मुरारि।**
बीधे मोसों आ कै गीधे गीधहिं तारि।।

तुलसी की भाँति दैन्य का अपार सागर भी बिहारी के हृदय में हिलोरें भरता है, जिसका उदाहरण द्रष्टव्य है –

हरि कीजत विनती यहै तुमसौ बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति यौं रहयौ पर्यौ यही दरबार।।

बिहारी का ध्यान भक्ति भावना से अधिक उक्ति वैचित्र्य और वाणी कौशल पर दिखाई देता है। भक्ति के साथ मनोरम कवित्व का उदाहरण द्रष्टव्य है –

करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगीलाल।।

अर्थात् संसार चाहे मेरी कितनी निन्दा करे किन्तु हे दीनदयाल मैं अपनी बुराइयाँ न छोड़ूंगा क्योंकि आप त्रिभंगी हैं। मेरे सीधे-सरल चित्त में निवास करने में आपको कष्ट होगा, अतः मेरा टेढ़ा (बुरा) रहना ही श्रेयस्कर है। बिहारी सहित सभी रीतिकालीन कवियों के लिए कहावत है-

काल्हि के सुकवि जो पै रीझि है तो कविताई।
न तू राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानौ है।

बिहारी की श्रृंगारपूर्ण भक्ति के विषय में भी डॉ. नगेन्द्र द्वारा रीतिकालीन कवियों के लिए कही गई ये बात बिहारी पर पूर्णतः चरितार्थ होती है - ''वास्तव में यह भक्ति भी उनकी श्रृंगारिकता का ही एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठे होंगे तो राधाकृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरू मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक ओर तो सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरणभूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी।'' बिहारी द्वारा भक्तिपरक दोहों के साथ नीति विषयक दोहों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

बिहारी सुख-दुख को समान रूप से ग्रहण करने के लिए कहते हैं। सामान्यतः व्यक्ति दुख में गहरी साँसें लेता है और सुख में ईश्वर को भूल जाता है -

दीरघ साँस न लेई दुःख, सुख साईंहि न भूल। दई-दई क्यों करत है, दई-दई सु कबूलि।।

बिहारी ऐसे स्वर्ण धन की अधिकता को मनुष्य के लिए हानिकारक मानते हैं, जो उसे घमण्ड से परिपूर्ण करने या पागल बना देने में सहायक होता है -

कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।

या खाये बौराय जग, या पाये बौराय।।

बिहारी के काव्य में सामान्य व्यवहार सम्बन्धी अनेक दोहे विद्यमान हैं। जो नीति के साथ-साथ चमत्कारपूर्ण भी हैं, और उनमें जीवनानुभव की एक विशाल अमूल्य राशि संचित है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बिहारी के काव्य में मुख्य रूप से .....का वर्णन हुआ है।

2. वियोग श्रृंगार के मुख्य भेद कौन-कौन से हैं ? उचित शब्द छाँटकर लिखिए -

(क) .....(ख) .....

(ग) .....(घ) .....

12.6 संरचना शिल्प

भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने की कला में बिहारी सिद्धहस्त हैं। तत्कालीन परिवेशानुकूल बिहारी साहित्य का शिल्प पक्ष बेजोड़ बन पड़ा है। ब्रज भाषा पर असाधारण अधिकार, लघु कलेवर युक्त छंद, शब्दों का सटीक प्रयोग, भाषा की समाहार शक्ति, रसों की अनूठी व्यंजना, भाषा में चमत्कार प्रदर्शन, उक्ति वैचित्र्य ये सब विशेषताएँ बिहारी की कलागत उत्कृष्टता को ही दर्शाती हैं। इन्हीं सब आधारों पर बात करते हुए आप बिहारी के संरचना शिल्प को निम्नांकित रूप में समझ सकते हैं -

12.6.1 काव्य रूप

बिहारी अपने सरस मुक्तकों के कारण प्रसिद्ध हैं। अपने वक्तव्य को अत्यधिक प्रभावशाली बनाने के लिए बिहारी ने तत्कालीन दरबारी परिवेश में प्रबन्ध रूप में रचना न कर मुक्तक शैली को अपनाया। आचार्य शुक्ल ने भी मुक्तकों को सभा-समाज में लिए अधिक उपयुक्त बताया है। सवैय्या, घनाक्षरी छंद का प्रयोग न करके बिहारी ने दोहा छंद का प्रयोग अपनी रचना में किया है। दोहा, छंद को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि दोहा अर्द्ध सम छंद है। इसके पहले और तीसरे चरण में ग्यारह-ग्यारह और दूसरे तथा चौथे चरण में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके चारों चरणों में अड़तालीस मात्राएँ होती हैं।

मुक्तक में पूर्वापर किसी छंद से लगाव न होकर भी वह पूर्ण रूपेण स्वतंत्र होकर अपना अर्थ व्यक्त करने में समर्थ होता है। इसीलिए बिहारी ने श्रृंगार रस की जितनी भी अवस्थाएँ हो सकती हैं उनका वर्णन दोहों के माध्यम से किया है। जिनके द्वारा अनुभावों की चमत्कृत कर देने वाली योजना दृष्टव्य है -

भौंहनि त्रासति, मुँह नरति, आँखिनु सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करू कूँची आगैं आवति जाति।।

यहाँ पर अनुभावों की सुन्दर व्यंजना है। बिहारी के मुक्तक काव्य की कुछ और विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं -

1. मुक्तक काव्य में बिहारी ने भाषा और कल्पना की समाहार शक्ति के प्रयोग से बड़े भावों को उत्कर्ष प्रदान किया गया है -

घर घर ोलत दीन हैं, जन-जन जाचतु जा ।
दियै लोभ-चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखा ।।

लोभ रूपी चश्मे की कल्पना से इस दोहे में भावों की उत्कृष्टता द्रष्टव्य है।

2. बिहारी के मुक्तक काव्य में पग-पग पर काव्य सौन्दर्य परिलक्षित होता है। बिहारी की वाणी अलंकारमय और वक्रता से मंडित है।

3. यथा स्थान सूक्तियों का अनुपम प्रयोग बिहारी मुक्तक काव्य की विशेषता है –

'मुनि गुनि सबकें कहें निगुनि गुनी न होतु ।'

क. वह चितवनी कहु और जिहि बस होतु सुजान ।

ख. बड़े न दूजै गुननू बिनु बिरद-बड़ाई पाइ

ग. संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध

4. ऊहात्मक शैली में लिखे गये मुक्तक काव्य ने अत्यधिक लोकप्रिय बनाया है –

आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ कि राति,
त आवत चली जात उत चली छसातक हाथ,

5. सामन्ती समाज और उसकी विलासप्रियता तथा तत्कालीन जन जीवन को बिहारी के मुक्तकों द्वारा भली भाँति समझा जा सकता है –

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहिं काल ।
अली कली ही सों बिन्ध्यो,आगे कौन हवाल ।।

इसी प्रकार -

दुसह दुराज प्रजानु को, क्यों न बढ़ै दुख-द्वंद्व।
अधिक अधेरो जग करत, मिलु पावस रवि चन्दु।।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि छोटे-छोटे मुक्तक छंद में बिहारी ने जितने भाव भरे हैं वैसी भाव संयोजना अन्यत्र दुर्लभ है।

12.6.2 काव्य भाषा

बिहारी ने काव्य भाषा के रूप में ब्रज भाषा को अपनाया है। यह इस काल की प्रमुख साहित्यिक भाषा है। ब्रज भाषा पर बिहारी का असाधारण अधिकार था। बिहारी की काव्य भाषा के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, 'उनको शब्द और वर्ण के स्वभाव की परख थी। शब्द और

वर्ण उनके दोहों में नगों के समान जड़े हैं और रत्नों की आभा बिखेरते हैं। शब्द को माँजने, चमकाने, मोड़ने और सँवारने की कला में बिहारी सिद्धहस्त हैं। उनकी रचना में ब्रजभाषा अपनी प्रौढ़ता और भाव सम्पन्नता में इठलाती हुई चलती है। वह लय और गति, संगीत और नर्तन की विशेषताओं से युक्त है। उनकी भाषा प्रांजल, प्रौढ़, मधुर और सरस है।' इसका उदाहरण निम्नांकित दोहों में देखा जा सकता है-

अंग-अंग नग जगगति, दीप सिखा-सी देह।
दीया बुझाए हूँ रहै, बड़ो उजेरो गेय ।।

इसी प्रकार

रस सिंगार मंजन किये, कंजन मंजन दैन।
अंजन रंजन हूँ बिना, खंजन, गंजन नैन ।।

उपर्युक्त दोहों से स्पष्ट है कि भाव, अनुभूति और चेतना को बिहारी किस प्रकार मार्मिक शब्दों और प्रभावशाली बिम्बों में प्रकट करने की क्षमता रखते हैं।बिहारी ध्वनि के मर्मज्ञ थे, इसलिए उनकी भाषा में व्यंजना के एक से एक उदाहरण मिलते हैं। लक्षणा व्यंजना का एक सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है -

कत सकुचत निधरक फिरौ, रतियौ खोरि तुम्हैन।
कहा करौ जो जाय ये, लगैं लगौंहैं नैन ।।

प्रस्तुत दोहे का लक्ष्यार्थ यह है कि तुम स्वयं दोषी हो तुम्हें न भय है, न संकोच। नेत्रों का कुछ भी दोष नहीं अर्थात् तुम बड़े बेहया हो।बिहारी की रचनाओं में कई भाषाओं और बोलियों के शब्द पाए जाते हैं। शब्दों का यह वैविध्य उनकी भाषा समृद्धि और गतिशीलता का परिचायक है ही, उनके विस्तृत भौगोलिक ज्ञान का भी सूचक है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के अतिरिक्त उनमें हिन्दी की अनेक बोलियों, कई प्रादेशिक भाषाओं और अरबी, फारसी के असंख्य शब्द स्वाभाविकता के साथ समाहित हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग ने उनकी भाषा को अधिक गरिमा प्रदान की है।

12.6.3 अलंकार विधान

बिहारी काव्य की अलंकार योजना अनुपम है। उन्होंने अलंकारों का खुलकर प्रयोग किया है। 'भूषण बिनु न बिराजहिं, कविता बनिता मित्त' सिर्फ सिद्धान्त वाक्य न होकर प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों द्वारा व्यवहार में लाया गया। चमत्कार-प्रदर्शन एवं वाणी कौशल दिखाने की प्रबल प्रवृत्ति के वशीभूत बिहारी ने भी अलंकारों का अत्यधिक प्रयोग कर प्रस्तुत-अप्रस्तुत भावों की अनूठी व्यंजना की है। श्लेष बिहारी का प्रिय अलंकार है। काव्य में जहाँ पर शब्द के दो या दो से अधिक अर्थ निकलते हैं, वहाँ श्लेष अलंकार होता है, किन्तु कवि प्रयुक्त शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर अर्थ का चमत्कार समाप्त हो जाता है। निम्नांकित दोहे में झाँई, स्यामु, हरित दुति शब्दों के तीन-तीन अर्थ निकलते हैं, सिर्फ 'स्याम'

शब्द के स्थान पर भी यदि कृष्ण या मुरारी शब्द रख दें तो पूरे दोहे का चमत्कार खत्म हो जाता है-

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरिक सोई ।
जा तन की झाँई परै स्यामु हरित-दुति होई ।।

शब्दालंकारों का प्रयोग बिहारी ने खूब किया है। उनके दोहों में अनुप्रास, यमक, श्लेष, वीप्सा आदि अलंकारों के प्रसंगानुकूल सुन्दर चित्रण से काव्य सौन्दर्य में अत्यधिक वृद्धि हुई है। विरह वेदना के अधिक्य के वर्णन में बिहारी ने अतिशयोक्ति अलंकार की सुन्दर व्यंजना की है। जैसे- विरह-विदग्ध नायिका के ऊपर गुलाब-जल की शीशी उड़ेलने पर उसके बीच में ही सूख जाने से नायिका के ऊपर न पड़ने या ऐसी ही अन्य विरहिणियों के शीत में भी गरमी का अनुभव करने को बिहारी ने अतिशयमूलक अलंकारों के प्रयोग से काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है।

जैसे-

औंधाई सीसी सु लाखि बिरह-बरति बिललात ।
बिच ही सूखि गुलाब गौ छीटौं हुई न गात ।।

बिहारी का प्रत्येक दोहा अलंकारों के अप्रतिम विधान से ओत-प्रोत है। नायिका के अंग-प्रत्यंग के सादृश्य पर अलंकारों की व्यापक योजना की है। कहीं नायिका के नेत्रों से हिरनी के नेत्रों की समता की है। फिर हिरनी के नेत्रों से नायिका के नेत्रों को श्रेष्ठ कहकर व्यतिरेक अलंकार की सृष्टि कर डाली है-

वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न ।
हरिनी के नैनान तें, हरि नीके ए नैन ।।

उत्प्रेक्षा अलंकार के सहारे भी बिहारी ने बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति दी है। नायिका की सफेद साड़ी से ढका उसके कानों में हिलता हुआ कर्णभूषण उत्प्रेक्षा की है कि मानो प्रभात में सूर्य का प्रतिबिम्ब गंगा जी के हिलते हुए जल में पड़ रहा हो-

लसतु सेत सारी- प्यौ, तरह तर्यौना कान ।
पर्यौ मनौ सुरसरि-सलिल, रवि प्रतिबिंबु विहान ।।

इस प्रकार अनेक दोहे ऐसे हैं जिनसे बिहारी की गूढ़ दृष्टि और कल्पना की ऊँचाइयों का परिचय मिलता है। अलंकार योजना में कहीं-कहीं बिहारी की चमत्कारप्रियता व कल्पनाधिक्य अवश्य देखने को मिलता है किन्तु वास्तव में बिहारी की अलंकार शास्त्र पर गहरी पैठ है, जिससे अलंकारों का प्रयोग अतिशयोक्तिपूर्ण होने पर भी भावाभिव्यंजना में पूर्णतः सफल है और काव्य में सरसता और प्रभावोत्पादकता बराबर बनी रहती है।

12.6.4 छंद विधान

छन्द भावों को आच्छादित कर उन्हें समष्टि रूप प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है- जिसमें अक्षरों की संख्या में वर्णों की सत्ता निहित होती है, वह छन्द कहलाता है। यह काव्य में गति और लय की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। बिहारी का सम्पूर्ण काव्य दरबारी मनोवृत्ति पर आधारित है। मुक्तक काव्य शैली में प्रत्येक पद्य अपने में एक स्वतंत्र इकाई होता है। बिहारी ने कवित्त, सवैया, सोरठा, रोला आदि में से दोहा छंद को काव्याभिव्यक्ति के लिए चुना। यद्यपि इसमें सवैया, कुंडलिया आदि छंदों के समान विषय-विस्तार की संभावना नहीं होती तथापि अपनी भाषा की सामासिकता और कल्पना की समाहार शक्ति तथा उक्ति वैचित्र्य की क्षमता को परख कर बिहारी ने दोहा छंद चुना जो थोड़े शब्दों में भावों की सूक्ष्मता को व्यक्त करने व शीघ्र प्रभाव डालने की क्षमता रखता है।

अभ्यास प्रश्न 4

1. बिहारी ने अपनी रचना में कौन-सा काव्य रूप अपनाया है ?

(क) प्रबंध (ख) मुक्तक

(ग) कथा (घ) चम्पू

2. 'दोहा' छंद की दो विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

12.7 संदर्भ सहित व्याख्या

मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय ।।

शब्दार्थ- भवबाधा = सांसारिक बाधाएँ। सोय = वही। झाईं = 1. परछाई 2. झलक 3. ध्यान 4. चर्मरोग। स्याम = 1. कृष्ण 2. ताप, बुराई, दुःख आदि। 3. साँवला। हरित दुति = 1. हरा रंग या कांति 2. हरा-भरा अर्थात् प्रसन्न 3. तेज - रहित।

प्रसंग- सतसई की निर्विघ्न समाप्ति के लिए बिहारी ने राधा का स्मरण मंगलाचरण में किया है। इस दोहे से बिहारी के राधाबल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने का संकेत मिलता है।

व्याख्या प्रथम: जिसके शरीर की छाया पड़ने से कृष्ण हरी कांति वाले हो जाते हैं, वही चतुर राधा; मेरी संसार की अड़चनों को अर्थात् शारीरिक, दैवी और धनादि सम्बन्धी विघ्नों को दूर

करें। राधा का रंग गौर वर्ण है, जो काले (श्याम) वर्ण वाले कृष्ण के शरीर के रंग से मिलकर हरा रंग होने का (पीला+नीला= हरा रंग) आभास देता है।

द्वितीय: वह नागरी राधा, जिसके शरीर की झलक पड़ने से कृष्ण तेजरहित हो जाते हैं, मेरी दरिद्रता, दीनता, हीनता आदि का निवारण करें। यहाँ पर कवि का आशय राधा की अपार महिमा बताना है। राधा के सामने कृष्ण की प्रतिभा फीकी पड़ जाती है।

तृतीय: वह राधा नागरी, जिसके शरीर का ध्यान करने से पाप, बुराई, दुःख आदि समस्त क्लेश दूर होकर पुण्य, अच्छाई, सुख इत्यादि उदय होते हैं, मेरी सांसारिक कठिनाइयों को समाप्त करें। भाव यह है कि काव्य-परिपाटी के अनुसार पाप, बुराई आदि का रंग काला और पुण्य आदि का रंग उज्ज्वल माना गया है।

विशेष: 1. अलंकार- 'झाईं', 'स्यामु' और 'हरित' शब्द अनेक अर्थ देते हैं, अतः श्लेष अलंकार है। 'हरित-दुति' में 'हरी है द्युति जिसकी' अर्थ लेने पर युक्ति द्वारा अर्थ का समर्थन होने के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

2. 'हरित दुति' (हरा होना) मुहावरे का सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है।

3. बिहारी की काव्य-प्रतिभा एवं भाषा और भाषाधिकार का परिचय इस दोहे में मिल जाता है। समग्र रूप में यह दोहा कविवर बिहारीलाल की उत्कृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है।

अजौं तरौना ही रह्यौ, स्रुति सेवत क अंग।
नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकतन के संग॥

शब्दार्थ: अजौं = आज भी। तरौना = कान का आभूषण, इसे कर्णफूल भी कहते हैं। (अथवा तरौ नाही = तरा नहीं, संसार के कष्टों से छूटकर मुक्ति प्राप्त नहीं की) स्रुति = कान, वेद। सेवत = वेद पाठ करते हुए, कानों के पास रहते हुए। इक अंग = निरन्तर, एकरस होकर। नाक = नासिका, स्वर्ण। बेसरि = साधारण पुरुष, नाक का आभूषण बुलाक, जिसमें मोती लगा रहता है। लह्यौ = –प्राप्त कर लिया। मुकतन = मोतियों का, मुक्त पुरुषों का।

प्रसंग: निरन्तर वेद-पाठ करने की अपेक्षा सत्संग करना कहीं अधिक अच्छा है। इस तथ्य को तरौना (त्रयौना) तथा बेसर (बुलाक) के उदाहरण द्वारा समझाते हुए रीति सिद्ध कवि बिहारीलाल कहते हैं -

व्याख्या: इस दोहे में अत्यन्त सुन्दर श्लेष चमत्कार होने से इसकी दो व्याख्याएँ हैं-

प्रथम (तरौना, कर्ण-आभूषण): तरौना अथवा तर्यौना (कान का आभूषण- कर्णफूल या तरकी) कान का निरन्तर सेवन करने पर आज भी तर्यौना ही रहा। कानों में नीचे ही पड़ा रहा, ऊपर नहीं आ सका। नाक आगे और कान पीछे हैं। किन्तु बेसरि (नाक का आभूषण बुलाक

जिसमें मोती लटका रहता है) ने मोतियों के साथ रहने से आगे का स्थान प्राप्त कर लिया अर्थात् उन्नति कर ली, आगे आ गया।

द्वितीय (सत्संग के पक्ष में): एकरस होकर निरन्तर वेद का पाठ करने वाला व्यक्ति संसार सागर से अपना उद्धार नहीं कर सका अथवा स्वर्ग प्राप्त करने में असफल रहा, किन्तु साधारण मनुष्य ने मुक्त (जीवन-मुक्त, जो जीवित रहते हुए भी संसार के आकर्षण से मुक्त रहते हैं) पुरुषों का सत्संग प्राप्त करके स्वर्ग का निवास प्राप्त कर लिया।

विशेष: 1. अलंकार: 'स्रुति-सेवत, वास-बेसरि-बसि' में अनुप्रास तथा 'तरौना ही, स्रुति, नाक, मुकतन' में श्लेष अलंकार है।

2. वेद-पाठ की अपेक्षा सत्संग करना कहीं अधिक लाभदायक है। वेद-पाठ चाहे जीवन-पर्यन्त करता रहे, तब भी मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता और सत्संग चाहे थोड़े समय का ही हो, वह भी अत्यधिक लाभदायक है।

3. इस दोहे से प्रतीत होता है कि वैष्णव-काल के अन्य कवियों की तरह बिहारीलाल सत्संगति के प्रभाव को सर्वोच्च मानते हैं। तुलसीदासजी लिखते हैं-

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधातु सुहाई ।।

4. बेसरि: नाक का आभूषण विशेष, जैसे लोंग, बुलाक, नथ आदि। दूसरा अर्थ है- महाअधम मनुष्य।

5. तरौना: कान का आभूषण विशेष, जैसे- कर्णफूल, कुण्डल, बुन्दे आदि। दूसरा अर्थ है- उद्धार नहीं हुआ।

कहत, नटत, रीझत, मिलत खिझत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात।।

शब्दार्थ: कहत = कहते हैं। नटत = मना करते हैं। रीझत = प्रसन्न होते हैं। खीझत = रुष्ट होते हैं। मिलत = मिलते हैं। खिलत = हर्षोत्फुल्ल होते हैं। लजियात = लज्जा का अनुभव करते हैं। भरे = गुरुजन या पूज्य नर-नारियों से भरे। भौन = भवन।

प्रसंग: किसी समारोह के अवसर पर घर में स्त्री-पुरुषों की भीड़ होने पर भी नायक-नायिका परस्पर बातें कर रहे हैं। परन्तु ये बातें वचन से नहीं, नयनों के संकेतों से हो रही है। हृदय के सब भावों को परस्पर प्रकट कराने का वर्णन इस दोहे में सुन्दरता के साथ व्यक्त हुआ है -

व्याख्या: नायक कहता है अर्थात् अभिसार के लिए नायिका से प्रस्ताव करता है। यह प्रस्ताव आँख के इशारे से होता है। नयन के संकेत से ही नायिका इसे ठुकरा देती है। नायिका की यह अस्वीकृत मुद्रा भी नायक के मन को भा गयी है और वह रीझ उठता है। उसके इस भाव पर नायिका खीझती है। परन्तु जब दोनों के नेत्र मिलते हैं तो वे हर्ष से खिल उठते हैं। पुनः गुरुजन की

उपस्थिति का स्मरण होने पर उन्हें लाज आती है कि यदि किसी ने उनकी यह सांकेतिक प्रेम-लीला देख ली होगी तो वे लोग क्या सोचेंगे? इस प्रकार नायक नायक और नायिका भीड़ भरे घर में भी आँखों ही आँखों में सारी बातें कर लेते हैं!

विशेष: 1. अलंकार- 'नैनों से बात करने' में विभावना तथा 'भरे-भौन' में अनुप्रास अलंकार है।

2. ऐसे ही दोहों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बिहारी ने 'गागर में सागर' भर दिया है। एक साथ सारी क्रियाओं- कहना, अस्वीकार कर देना, रीझना, खीझना, नेत्र मिलना, हर्षित होना तथा लजाना आदि का समावेश सचमुच ही बिहारी के कौशल का द्योतक है।

3. व्यंजना शब्द-शक्ति का समावेश है। अनुभाव दृष्टव्य हैं।

4. भावसाम्य:

''व्रतो निषेध तश्चैव कुप्यतस्था।''
नयनैरेव कुरुतो वार्ता तौ दम्पती रसात्।। (यशवन्तराय- यशोभूषण)

जब-जब वै सुधि कीजियै, तब-तब सब सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहै, आँखों लागति नाहिं।।

शब्दार्थ: वै = वे, नायक (श्रीकृष्ण), सुधि कीजियै = स्मरण किये जाते हैं, उनकी स्मृति होती है। सुधि = चेतना, होश, बुद्धि। जाहिं = चली जाती हैं, खो जाती हैं। आँखिन = उनके नेत्रों के ध्यान में। आँखि लगी रहै = मेरी आँखें तल्लीन रहती हैं। मन में उनका ही ध्यान लगा रहता है। आँखों लागति नाहिं = आँखें भी नहीं लगतीं, नींद भी नहीं आती।

प्रसंग: राधा कृष्ण के वियोग में उनके सुन्दर नेत्रों का स्मरण किया करती हैं। अपनी स्मृति दशा का वर्णन करती हुई राधा सखी से कहती है-

व्याख्या: जब-जब उनकी (श्रीकृष्ण) की या उनकी आँखों की सुधि आती है तब-तब (स्मरण-शक्तिजनित तन्मयता के कारण) हृदय की सुध-बुध (चेतना) जाती रहती है। उनकी आँखों के ध्यान में मेरे हृदय की आँखें भी लगी रहती हैं, अर्थात् नींद नहीं आती, किन्तु वे बाहरी आखें नहीं लगती।

भाव यह है कि हे सखि। जब-जब मैं प्यारे के सुन्दर नेत्रों का स्मरण करती हूँ, तब-तब मेरी स्मृति जाती रहती है। मेरी आँखें उन्हीं आँखों से लगकर रह जाती हैं, ऐसी दशा हो जाती है कि नींद भी नहीं आती।

विशेष: 1. अलंकार- 'सब-सुधि' में अनुप्रास, 'जब-जब, तब-तब' में वीप्सा, 'आँखिन-आँखि' में सभंगपदयमक तथा 'आँखिन नाहिं' में विरोधाभास अलंकार है। 'जब-जब, तब-तब' में ध्वनिसाम्य है।

कब कौ टेरत दीन रट, होत न स्याम सहा ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नायक जग-बा ।।

शब्दार्थ: टेरत = पुकार रहा हूँ। सहाइ = सहायक। जग बाइ = संसार की हवा।

प्रसंग: प्रस्तुत दोहे में भगवान को उलाहना या उपालम्भ देते हुए भक्त कहता है-

व्याख्या: मैं कब से (बहुत समय से) दीन होकर आपकी विनती कर रहा हूँ, किन्तु हे स्याम! आप मेरी सहायता नहीं करते (यह बात आपके प्रचलित चरित्र के विरुद्ध है। आप तो भक्त की पुकार पर तुरन्त नंगे पैर दौड़ आते थे)। ऐसा लगता है कि हे जगत के स्वामी और जगत के गुरु, भगवान कृष्ण ! तुम्हें भी संसार की हवा लग गयी है अर्थात् बदलते हुए समय के साथ तुमने भी अपना आचरण बदल लिया है।

विशेष: 1. अलंकार: द्वितीय पंक्ति में उत्प्रेक्षा एवं 'स्याम-सहाय' 'जगत-जग' में अनुप्रास तथा 'तुमहूँ लागी'.... जग-बाइ' में लोकोक्ति अलंकार है।

2. यह दोहा बिहारी के समसामयिक राजा-रईसों और नवाब-बादशाहों के चरित्र पर प्रकाश डालता है। उस समय दीन-दरिद्र आज के समान ही सहायता के लिए पुकारते होंगे, पर वे बिलकुल ध्यान नहीं देते होंगे।

तन्त्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग।

शब्दार्थ- तन्त्रीनाद = वीणा आदि के मधुर स्वर, संगीत से आनन्द की अनुभूति। कवित्त-रस = काव्य रस। सरस राग = रस युक्त अनुराग। अनबूड़े = बहुत कम ज्ञान रखने वाले। जे बूड़े सब अंग = पूरी तरह डूब गये अर्थात् पूर्ण ज्ञान रखने वाले।

प्रसंग: प्रस्तुत दोहे में काव्य आदि ललित कलाओं के प्रति कवि की निष्ठा का कथन है।

व्याख्या: वीणा की झनकार, कविता का रस, मधुर राग और प्रीति के रस में जो सर्वांग डूब गये वे ही सफल हुए। जो पूर्णरूप से मग्न नहीं हुए वे असफल रहे।

कहने का भाव यह है कि जो इसमें डूब गये, रस लेने लगे अर्थात् जिनको आनन्द आने लगा वे तो ठीक हैं, नही तो इनके पास नहीं आना चाहिए, इनमें यत्किंचित प्रवृत्त होते हैं, वे असफल रहते हैं, किन्तु जो पूर्णतः मग्न होते हैं, वे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

विशेष: 1. अलंकार- 'राग-रति-रंग' में अनुप्रास, 'अनबूड़े-बूड़े', 'रस-सरस' में सभंगपद यमक, 'अनबूड़े..... सब अंग' में विरोधाभास तथा 'बड़े-बूड़े' में वीप्सा अलंकार है। बिना डूबने वाला डूब गया और सब अंग से डूबने वाला पार हो गया- यह अर्थ करने पर विरोध है। वास्तविक अर्थ है जो पूर्ण रूप से तन्मय नहीं हुए, वे असफल हो गये। जो सम्पूर्ण रूप से तन्मय हुए, उन्हें सफलता मिली। यह अर्थ होने पर विरोध का परिहार हो जाता है।

2. भावसाम्य: ललित कलाओं से हीन व्यक्ति का जीवन पशु समान है। एक संस्कृत विद्वान ने लिखा है-

साहित्य-संगीत-कला विहीनाः।
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनाः।।

अभ्यास प्रश्न 5

1. बिहारी के वियोग श्रृंगार वर्णन की विशेषताएँ 5-6 पंक्तियों में लिखिए।

.....
.....
.....
.....

2. बिहारी के नीतिपरक दोहों में व्यक्त विचारों को अपने शब्दों में लिखिए।

.....
.....
.....
.....

12.8 सारांश

बिहारी रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि और रीतिसिद्ध परम्परा के अग्रगण्य रचनाकाल हैं। बिहारी की प्रसिद्धि का आधार उनका एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' है, जो 'गाथा सप्तशती', 'आर्या शप्तशती' व 'अमरूक शप्तशती' आदि ग्रंथों की प्रेरणा से हिन्दी में निर्मित एक उत्कृष्ट मुक्तक काव्य है। बिहारी सतसई को विश्व में एक अद्वितीय ग्रंथ मानते हुए ग्रियर्सन ने कहा है, 'यूरोप की किसी भी भाषा में 'बिहारी सतसई' के समकक्ष कोई रचना नहीं है।'

'दोहा' छंद अपनाकर बिहारी ने कल्पना की समाहार शक्ति व भाषा की सामासिकता अर्थात् मुक्तक काव्य की विशेषताओं को कुशलता से अपने काव्य का विषय बनाया है। 'बिहारी सतसई' श्रृंगार रस का अपूर्व ग्रंथ है। संयोग-वियोग के सभी पक्षों पर बिहारी की नजर है। संयोग के अन्तर्गत जहाँ आलम्बन के रूप, उसकी चेष्टाओं तथा हावों के सुंदर चित्र उकेरे गए हैं, वहीं वियोग के अन्तर्गत उसकी सभी स्थितियों का ऊहात्मक एवं संवेदनात्मक दोनों शैलियों में चित्रण हुआ है।

अर्थ-रमणीयता के साथ-साथ भाव-रमणीयता में बिहारी सिद्धहस्त हैं। 'गागर में सागर' व 'नावक के तीर' विशेषणों से युक्त उनके दोहे अर्थगाम्भीय व उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से उत्कृष्ट

हैं। बिहारी की रचना का कलापक्षीय सौन्दर्य अनुपम है। प्रस्तुत के साथ-साथ अप्रस्तुत विधान, ब्रजभाषा के परिनिष्ठत - परिष्कृत रूप, भाषा में व्यंजना, शब्दों के वैविध्य तथा मुहावरों - लोकोक्तियों के प्रयोग ने ब्रजभाषा को अधिक गरिमा प्रदान की है।

12.9 शब्दावली

अनुप्रास - यह एक शब्दालंकार है। जब काव्य की किसी एक पंक्ति में एक ही वर्ण दो या दो से अधिक बार प्रयुक्त होता है तो उसे अनुप्रास कहते हैं।

उक्ति वैचित्र्य- जब किसी कथन में विचित्रता होती है, उसे उक्ति वैचित्र्य कहते हैं।

काव्य भाषा- कवि अपने भावों और विचारों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करने हेतु जिस भाषा का प्रयोग करता है, वह काव्यभाषा होती है।

दोहा - यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं। इसके पहले व तीसरे चरण में 13-13 और दूसरे तथा चौथे चरण में 11-11 मात्राएं होती हैं।

सोरठा - यह अर्द्धसम मात्रिक छंद है। इसके चार चरण होते हैं। इसके प्रथम व तीसरे चरण में 11-11 और दूसरे तथा चौथे चरण में 11-13 मात्राएं होती हैं।

अनुभाव - आश्रय की चेष्टाएं अनुभाव कहलाती हैं। अनुभाव दो प्रकार का होता है- 1. सात्विक या अयत्नज अनुभाव, 2. कायिक या यत्नज अनुभाव।

श्रृंगार रस- श्रृंगार रस का स्थाई भाव रति है। विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व अवस्था में पहुँचा हुआ 'रति' नामक स्थाई भाव श्रृंगार रस को जन्म देता है। यह दो प्रकार का होता है- 1. संयोग श्रृंगार 2. वियोग श्रृंगार।

श्रृंगारिक - श्रृंगार से परिपूर्ण, अर्थात् कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्धि से पूर्ण।

सतसई - सात सौ दोहे के समूह को दर्शाने वाली रचना।

12.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. जो कवि लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखते पर इन ग्रन्थों से प्रेरणा लेते हैं वे रीतिसिद्ध कवि कहलाते हैं।

2. (क) बिहारी सतसई

(ख) रीतिसिद्ध

अभ्यास प्रश्न 2

(क) समाहार शक्ति, समास शक्ति (ख) श्रृंगारिकता

अभ्यास प्रश्न 3

1. श्रृंगार

2. (क) पूर्व राग (ख) मान (ग) प्रवास (घ) करुणा

अभ्यास प्रश्न 4

1. (ख)

2. (क) थोड़े शब्दों में भावों की सूक्ष्मता को व्यक्त करने की क्षमता

   (ख) शीघ्र प्रभाव डालने की क्षमता

अभ्यास प्रश्न 5

1. बिहारी ने वियोग श्रृंगार वर्णन में मानव मन की सूक्ष्म दशाओं का सजीव चित्रण किया है। विरहजन्य कामदशाओं के अन्तर्गत बिहारी ने मुख्यतः व्याधि, मरण, जड़ता का वर्णन अधिक किया है। नायिका के अतिशय विरह का चित्रण करने के लिए बिहारी ने अतिशयोक्ति का सहारा लिया है। बिहारी की नायिकाएँ वियोग में इतनी दुर्बल हो गई हैं कि उन्हें देखने के लिए प्रत्यक्ष मृत्यु को चश्मा लगाना पड़ता है, वह साँस लेने पर सात हाथ आगे और साँस छोड़ने पर सात हाथ पीछे आती है। इस वियोग वर्णन पर फारसी परम्परा के विरह का प्रभाव दृष्टव्य है।

2. बिहारी ने नीतिपरक दोहों में जीवन में आने वाले सुख दुख को समान भाव से ग्रहण करने की बात कही है। साथ ही मानव की विभिन्न स्वभावगत विशेषताओं का वर्णन भी किया है। मनुष्य से स्वर्ण अथवा धन का लालच कभी न करने को कहा है क्योंकि उससे मनुष्य का नाश हो सकता है। वे कुसंगति से बचने को कहते हैं। बिहारी के ये विचार लोकानुभव पर आधारित हैं।

12.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नगेन्द्र, डा.; रीतिकाव्य की भूमिका; (1983); नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. सक्सेना, द्वारिका प्रसाद; (85-86); हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि; विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
3. शुक्ल, रामचन्द्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास (2010); लोकभारती प्रकाशनद्ध इलाहाबाद।
4. गुप्त, गणपति चन्द्र;हिन्दी साहित्य का इतिहास (2010); लोकभारती प्रकाशनद्ध इलाहाबाद।

12.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
2. रत्नाकर,जगन्नाथदास, बिहारी रत्नाकर साहित्यागार, जयपुर।
3. मिश्र, विश्वनाथ प्रसाद, बिहारी की वाग्विभूति, वितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी।
4. त्रिपाठी, रामसागर, मुक्तक परंपरा और बिहारी, अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली।
5. सिंह,बच्चन, बिहारी का नया मूल्यांकन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. सिद्ध कीजिये की बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं तथा बिहारी सतसई की भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।
2. 'एक सफल मुक्तकार के मुक्तक रचना करने में कल्पना की समाहार शक्ति व भाषा की समास शक्ति वांछनीय है।' इस आधार पर बिहारी के काव्य की समीक्षा कीजिये।

इकाई- 13 केशवदास : परिचय, पाठ एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 केशव व्यक्तित्व और कृतित्व
13.3.1 केशव का महाकाव्यत्व
13.3.2 केशव का आचार्यत्व
13.4 केशव की काव्यगत विशेषताएं
13.4.1 भाव पक्ष
13.4.2. संरचना शिल्प
13.5 संदर्भ सहित व्याख्या
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम केशव के काव्य पर चर्चा करेंगे। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से आप रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवि के अन्तर को समझ गए होंगे। आपने पढ़ा कि जिन कवियों ने अपनी रचनाओं में रस, छन्द, अलंकार आदि काव्यांगों के लक्षण-उदाहरण लिखे, वे रीतिबद्ध कवि कहलाए। केशव भी रीतिबद्ध परम्परा के कवि हैं। केशव से पूर्व कई आचार्य कवियों ने हिन्दी में काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया परन्तु शास्त्रीय पद्धति पर गम्भीर तथा परिपक्व विवेचन प्रस्तुत करने का प्रथम श्रेय केशवदास को है, जिससे वे रीतिकाव्य के प्रवर्तक आचार्य कहलाते हैं। केशव ने समय-समय पर भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न विषयवस्तु से पूर्ण रचनाएं की हैं। आप देखेंगे कि दरबारी परिवेश और पांडित्य प्रदर्शन की आन्तरिक इच्छा होने से केशव की कविता में कथ्य की अपेक्षा शिल्प पक्ष अधिक प्रबल है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि केशव के काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इसके साथ-साथ केशव का परिचय, काव्य-वाचन और संदर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत की जाएगी। इस इकाई को आद्योपरान्त पढ़ने के पश्चात् आप-

- रीतिकालीन साहित्य में केशव के काव्य का महत्व समझ पायेंगे।
- केशव प्रथम प्रवर्तक आचार्य क्यों है यह आप जान सकेंगे।
- केशव को कठिन काव्य का प्रेत क्यों कहा जाता है, जान पायेंगे।
- केशव के संवाद-सौष्ठव के महत्व को समझ पायेंगे।
- केशव के काव्य की कलापक्षीय एवं भावपक्षीय विशेषताएँ जान पायेंगे।

13.3 केशव व्यक्तित्व और कृतित्व

केशव के जन्म के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। केशव की रचनाओं के आधार पर उनकी जन्मतिथि सं. 1612 मानी गई है। पं0 रामचन्द्र शुक्ल, डा. रामकुमार वर्मा आदि उच्चकोटि के साहित्यकारों ने केशव का जन्म वि. सम्वत् 1612 ही माना है। केशव की रचना 'रसिक प्रिया' के आधार पर उनका जन्म ओरछा राज्य में बेतवा के तट पर ओरछा नगर में हुआ था। 'रामचन्द्रिका' के आधार पर उनका जन्म एक सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम काशीनाथ तथा मामा का नाम कृष्णदत्त शुक्ल था। केशव के पितामह कृष्णदत्त मिश्र गहरबार महाराज प्रताप रूद्र के आश्रित थे। उनके एक पुत्र काशीनाथ हुए जो प्रकाण्ड विद्वान थे। महाराजा प्रताप रुद्र के पुत्र मधुकर शाह उनका बड़ा आदर करते थे। काशीनाथ के तीन पुत्र- बलभद्र, केशवदास और कल्याण हुए। केशवदास मधुकर साह के पुत्र इंद्रजीत के

आश्रित थे। इन्द्रजीतसिंह स्वयं एक अच्छे कवि थे और केशव का बहुत मान करते थे। केशवदास इन्द्रजीतसिंह के पश्चात् वीरसिंह देव राजा के आश्रय में भी रहे।

कृतित्व -

केशवदास ने निम्नांकित ग्रन्थों की रचनाएं की-

1. रसिक प्रिया, 2. नखशिख, 3. कविप्रिया, 4. रामचन्द्रिका, 5. वीरसिंह देव चरित, 6. रतन बावनी, 7. विज्ञान गीता, 8. जहांगीर-जस चंद्रिका, 9. बारहमासा, 10. छन्दमाला।

उपर्युक्त रचनाओं में से रसिकप्रिया, नखशिख, कविप्रिया, बारहमासा और छन्दमाला ग्रथों में काव्य शास्त्र अथवा लक्षण ग्रन्थों की चर्चा है। 'रामचन्द्रिका' भक्तिपरक कम पाण्डित्य प्रदर्शन का काव्य अधिक है। 'विज्ञान-गीता' भक्तिपरक रचना है, वहीं 'वीरसिंह देव चरित', 'रतन बावनी' और 'जहांगीर-जस-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लिखे गये प्रशस्ति काव्य हैं। विषय वैविध्यपूर्ण इन रचनाओं को पढ़कर आप देखेंगे कि केशव ने तद्युगीन सभी काव्य-प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया है। केशव दास द्वारा अधिकांश ग्रन्थों में उसके रचनाकाल का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है।

13.3.1 केशव का महाकाव्यत्व

धार्मिक महापुरुषों के चरित्र को लेकर प्रबन्धकाव्य लिखने की परम्परा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश काव्य से ही प्रारम्भ हो चुकी थी। संस्कृत में बाल्मीकि कृत 'रामायण', अश्वघोष विरचित 'बुद्धचरित' और फिर प्राकृत-अपभ्रंश में रचित 'पउम चरिउ' (विमल सूरि) स्वयंभू कृत 'पउम चरिउ' आदि उल्लेखनीय हैं। जैन कवियों द्वारा रचित यही धार्मिक चरित परम्परा धीरे-धीरे हिन्दी तक पहुँची।

प्रबन्ध काव्य के दो भेद होते हैं- महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्य शब्द महत् और काव्य दो शब्दों के योग से बना है। महत् का अर्थ है- उत्कृष्ट, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि महाकाव्य जीवन के महत् का विवेचन होता है। भारतीय आचार्यों में भामह पहले आचार्य हैं, जिन्होंने महाकाव्य के लक्षणों पर विचार किया। केशवदास ने दो प्रबन्धकाव्यों की रचना की- 1. वीरसिंह देव चरित और 2. रामचन्द्रिका। 'वीरसिंह देव चरित' एक स्तुति काव्य है, जिसमें केशव ने महाराज वीरसिंह के चरित्र पर प्रकाश डालने के बाद उनके दान, लोभ आदि से सम्बन्धित संवाद लिखे हैं। दूसरी रचना 'रामचन्द्रिका' है, जो संस्कृत साहित्य शास्त्र में वर्णित महाकाव्यात्मक लक्षणों की दृष्टि से लिखी गयी है। रामचन्द्रिका में 39 सर्ग हैं, जिन्हें 'प्रकाश' नाम दिया गया है। रामचन्द्रिका में केशव ने रामकथा को लेकर 'रामचन्द्रिका' की रचना की है जिससे इसकी गणना राम सम्बन्धी प्रबन्धकाव्यों की परम्परा में होती है। इस काव्य के नायक क्षत्रिय कुल में उत्पन्न मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। जो अत्यन्त धैर्यवान और उदात्त हैं। इसके पूर्वार्द्ध में रामजन्म से रावणवध तक की और उत्तरार्द्ध में राम के वन से वापस आने से लेकर सीता

वनवास और अश्वमेध यज्ञ तक की कथा का वर्णन है। इसकी कथा में महाकाव्य का विस्तार है। जिसमें जनक आदि अनेक राजाओं का वर्णन है। विभिन्न स्थलों का चित्रोपम वर्णन हुआ है। 'रामचन्द्रिका' में श्रृंगार रस के साथ-साथ वीर एवं शान्त रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। विविध छन्दों के सुन्दर प्रयोग ने जहां काव्य को चारुता प्रदान की है वहीं चमत्कारपूर्ण एवं अलंकृत रचना शैली के माध्यम से काव्य को भव्यता प्राप्त हुई है। उपर्युक्त सभी विशेषताओं के आधार पर 'रामचन्द्रिका' की गणना महाकाव्यों में होती है। कुछ विद्वान इसे महाकाव्य नहीं मानते। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं- 'संबंध निर्वाह की क्षमता केशव में न थी। उनकी 'रामचन्द्रिका' अलग-अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह सी जान पड़ती है। उस कथा के अन्दर जो मार्मिक स्थल हैं उनकी ओर केशव का ध्यान बहुत कम गया है। दृश्यों की स्थानगत विशेषता केशव की रचनाओं में ढूंढ़ना व्यर्थ है।' (हि.सा.का. इतिहास, पृ. 142)।

यह सही है कि केशव की रामचन्द्रिका में 'बाल्मिकि रामायण' और 'रामचरितमानस' जैसी श्रेष्ठ रचनाओं की तरह का कथा-प्रवाह नहीं है। इसमें गणेश और सरस्वती की वन्दना से काव्य का आरम्भ कर राम की वन्दना की गई है। राम के बाल्यावस्था के वर्णन को छोड़कर राम के विश्वामित्र के साथ वन गमन, ताड़कावध, धनुष यज्ञ, राम विवाह तक तथा राम के वन-गमन से लेकर रावण वध-सीता मिलन तत्पश्चात् अयोध्या आगमन के पश्चात् राम-भरत मिलाप, राजतिलक, राम-राज्य वर्णन, सीता-वनवास पुन: राम-सीता मिलन तक का वर्णन राम-कथा से ही सम्बद्ध है। जहां तक मार्मिक प्रसंगों की ओर केशव की दृष्टि नहीं जाने का आरोप है, यह जरुर है कि 'रामचरित मानस' में जिन मार्मिक स्थलों का वर्णन तुलसी ने किया है, उनका वर्णन केशव ने नहीं किया। दृश्यों की स्थानगत विशेषताओं की नगण्यता के संबंध में कहा जा सकता है कि केशव ने रामचंद्रिका में वर्षा ऋतु, शरद ऋतु, सरोवर आदि के वर्णन में प्रकृति का कहीं आलम्बन तो कहीं उद्दीपन रूप में चित्रण किया है। प्रात:कालीन सूर्य की आभा हो या चन्द्रमा की शोभा दोनों का सुंदर वर्णन रामचंद्रिका में मिलता है। इतना अवश्य है कि कहीं-कहीं इस वर्णन में पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण चमत्कारप्रियता के दर्शन भी होते हैं।

केशव के संबंध में डा. विजयपाल सिंह लिखते हैं, "केशव तुलसी के समान ही धार्मिक समन्वयवाद के पोषक थे और केशव की चिन्तनभूमि भी अद्वैतवाद की है और तुलसी की अपेक्षा वह बहुत स्पष्ट है।" (केशव और उनका साहित्य, पृ. 119)। रामचंद्रिका में लोक पक्ष समन्वित भक्ति-भावना के साथ-साथ लोककल्याण विषयक भावना के दर्शन भी होते हैं। रामचरितमानस का सा जीवन वैविध्य भले ही केशव की रचना में न हो किन्तु केशव जीवन की अन्त:-बाह्य स्थितियों से सर्वथा परिचित थे। रसवत्ता व भावाभिव्यंजना की दृष्टि से भी वीर, श्रृंगार व शान्त रस का सुंदर चित्रण रामचंद्रिका में दिखाई देता है। इस प्रकार रामचंद्रिका केशव की एक महाकाव्यात्मक रचना है।

13.3.2. केशव का आचार्यत्व

इससे पूर्व की इकाई में आपने पढ़ा होगा कि संस्कृत में लक्षण ग्रन्थ लिखे गये अर्थात् ऐसे ग्रन्थ जिनमें रस, अलंकार, नायिका भेद, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि काव्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाता है। संस्कृत साहित्य में ऐसे ग्रन्थों को साहित्य शास्त्र या अलंकार शास्त्र नाम से जाना जाता है। यही परंपरा हिन्दी में रीतिकाव्य धारा कहलाई। हिन्दी की इस काव्य धारा और संस्कृत के साहित्यशास्त्र का मूल अंतर यही है कि इनके प्रणेताओं ने लक्षण और उदाहरणों को स्वयं लिखा जबकि संस्कृत में काव्यशास्त्र के रचनाकारों ने लक्षण स्वयं लिखे और उदाहरण अन्य प्रसिद्ध कवियों की रचनाओं से दिए। केशव से पूर्व हिन्दी में आचार्य-कवि सम्बन्धी रीतिकाव्य धारा में प्रथम कवि 'पुष्य' को माना जाता है, किन्तु इनका अलंकार ग्रन्थ अप्राप्य है। इस धारा में पहला प्राप्त ग्रन्थ कृपाराम रचित 'हिततरंगिणी' है। जिसमें काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसी पद्धति पर लिखे गये गोप कवि के 'राम भूषण', मोहन लाल की 'रामचन्द्रिका' आदि ग्रन्थ अप्राप्य हैं। अन्य कई कवियों ने रीतिग्रन्थ लिखे किन्तु शास्त्रीय पद्धति पर गम्भीर तथा परिपक्व विवेचन प्रस्तुत करने का श्रेय सर्वप्रथम केशवदास को ही प्राप्त है। इस आधार पर केशव को हिन्दी में रीतिकाव्य के प्रथम प्रतिनिधि आचार्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है।

केशव को आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले उनके दो ग्रन्थ निम्नांकित हैं- 1. रसिक प्रिया 2. कविप्रिया। 'रसिक प्रिया' की रचना काव्य प्रेमियों को दृष्टि में रखकर हुई है। इसमें मुख्यत: श्रृंगार और उसके विभिन्न अंगों के अतिरिक्त काव्य-दोषों का वर्णन है, अन्य रसों का वर्णन संक्षिप्त है। 'रसिकप्रिया' की रचना का आधार संस्कृत के विविध ग्रन्थ हैं। इसमें नायिका-भेद का वर्णन मुख्यत: संस्कृत के लक्षण ग्रन्थों के आधार पर ही है। परन्तु यत्र-तत्र कवि की मौलिकता भी दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ- जाति के आधार पर नायिकाओं का विभाजन तथा नायक-नायिका के मिलन स्थलों या अवसरों पर नवीन प्रसंगों की योजना। 'कविप्रिया' रचना का उद्देश्य पाठकों को काव्यशास्त्र की शिक्षा देना है। इसमें सोलह प्रभाव हैं। जिनमें कवि शिक्षा, काव्य दोष और अलंकार निरूपण पर विशेष ध्यान दिया गया है। अलंकार निरूपण के अन्तर्गत उनका वर्गीकरण और लक्षण-निरूपण हुआ है। 'छन्दमाला' नामक ग्रन्थ में कवि ने विभिन्न मात्रिक व वर्णिक छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। केशव के आचार्यत्व पर प्रो. वासुदेव सिंह कहते हैं, "जहां तक उनके आचार्य पक्ष का सम्बन्ध है, उसमें एक शिक्षक और रीति निरूपक के गुण विद्यमान हैं। साम्प्रदायिक दृष्टि से वह अलंकारवादी थे, रस की दृष्टि से वे श्रृंगार के समर्थक थे और समग्रत: वह सर्वांग निरूपक आचार्य हैं।" (हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृष्ठ 216)।

केशव ने विभिन्न काव्यांगों का निरूपण करते हुए भाषा का कार्य, कवि योग्यता, कविता का स्वरूप, कविता का उद्देश्य, कवियों के भेद, काव्य रचना के ढंग, काव्य विषय, काव्य दोष, अलंकार, रस, छंद, विविध वृत्तियों आदि पर सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से लिखा है। आचार्य श्यामसुन्दर दास ने केशव को ही रीतिकाव्य धारा का संस्थापक कवि माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल केशव के स्थान पर चिन्तामणि को प्रथम सर्वांग निरूपक आचार्य मानते हैं।

उनका मानना है कि रीति-ग्रन्थों की अविछिन्न परम्परा 'कविप्रिया' के लगभग पचास वर्ष बाद चली और इस परम्परा के कवियों ने केशव को अपना आदर्श भी नहीं माना। कुछ भी हो शास्त्रीय परिपाटी को जन्म देने तथा अन्य कवियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने वाले केशव आचार्य रूप में ही हिन्दी जगत में सम्मानित हैं। वस्तुत: केशव ही रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

सही विकल्प का चुनाव कीजिए -

1. केशव दास द्वारा रचित 'रामचन्द्रिका' है-
   अ. खण्डकाव्य
   ब. महाकाव्य
   स. मुक्तक काव्य
2. रामचन्द्रिका में .....सर्ग हैं, जिन्हें.....नाम दिया गया है।
3. 'रामचन्द्रिका' अलग-अलग लिखे हुए वर्णनों का संग्रह जान पड़ती है। किसने कहा-
   अ. डॉ. श्यामसुन्दर दास ने
   ब. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने
   स. डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने
   द. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने

अभ्यास प्रश्न 2

1. लक्षण ग्रन्थ किसे कहते हैं? (उत्तर निम्नांकित तीन पंक्तियों में दीजिये)।
   .....
   .....
   .....
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी रीति ग्रन्थों में सर्वांग निरूपक प्रथम आचार्य किसे मानते हैं-
   अ. केशव दास को
   ब. चिन्तामणि को
   स. कृपाराम को
   द. पुष्य को
3. 'कविप्रिया' अलंकार निरूपक ग्रन्थ है या रस विवेचक?

13.4 केशव की काव्यगत विशेषताएँ

इस शीर्षक के अन्तर्गत हम केशव की काव्यगत विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इससे पूर्व हम यह बताना आवश्यक समझते हैं कि काव्य के दो पक्ष होते हैं। 1. **भाव पक्ष**, जिसे कथ्य या विषय वस्तु भी कहा जाता है। (अर्थात् कवि जो कहता है, वह भाव पक्ष है) 2. **कला पक्ष**, जिसे संरचना शिल्प या शैली भी कहा जाता है। (अर्थात् जिस ढंग से कहा जाता है या कहने का तरीका)। चलिए केशव की कविता के इन दोनों पक्षों पर विचार करते हैं।

13.4.1 भाव पक्ष

भावाभिव्यंजना हेतु कवि का सहृदय होना आवश्यक है। तभी वह सरस काव्य का सफल रचनाकार हो सकता है। केशव रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य हैं। केशव दरबारी कवि थे। जिस परम्परा में वे पले-बढ़े वह पूरी तरह रीतिकालीन श्रृंगारिकता से परिपूर्ण थी। केशव को पांडित्य और आचार्यत्व को प्रदर्शित व प्रमाणित करने में भी विशेष रुचि थी। अलंकार उन्हें अत्यधिक प्रिय थे। केशव के 'रसिक प्रिया' में रस विवेचन व 'कविप्रिया' नामक ग्रन्थों में अलंकारों का विशद वर्णन है, इन्हें अलंकारवादी कवि भी कहा जाता है। 'भूषन बिनु न बिराजहिं कविता बनिता मित्त" कहने वाले केशव अपने अधिकांश वर्णनों में अलंकारों के प्रयोग से चमत्कार की सृष्टि करना चाहते हैं, जिससे उनके काव्य में अलंकार साधन न रहकर साध्य बन गये। जिससे काव्य का क्लिष्ट हो जाना स्वाभाविक है। इससे केशव पर कठिन काव्य का प्रेत या हृदयहीनता के आक्षेप लगते हैं किन्तु उनके काव्य का आद्योपान्त अध्ययन करने पर अनेक स्थलों पर उनकी सरसता व सहृदयता का परिचय मिलता है।

'रामचन्द्रिका' में केशव ने श्रृंगार के विविध चित्र उपस्थित किये हैं। साथ ही अन्य कारुणिक प्रसंगों का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। श्रृंगारपरक अनुभावों का कवि ने सहज स्वाभाविक और उत्कृष्ट वर्णन किया है। श्रीराम व सीता के संयोग के विभिन्न अवसरों पर केशव की सहृदयता दृष्टव्य है-

संयोग पक्ष

चंचल न हूजै नाथ अंचल न खेंचो हाथ।

इसी प्रकार वियोग पक्ष-

फूल न दिखाउ सूल फूलत है हरि बिनु।
दूरि करि माला ब्याल सी लगती है।।

केशव कृत भक्ति वर्णन में भी सहृदयता देखने को मिलती है। गणेश स्तुति का एक वर्णन दृष्टव्य है-

बालक मृनालनि ज्यों तोरि रै सब काल ।

कठिन कराल त्यों अकाल दीह दुख को ।।

वीर गाथात्मक काव्य के अन्तर्गत केशव की तीन रचनाएं मिलती हैं। रतनबावनी, वीरसिंह देवचरित, जहांगीर-जस-चन्द्रिका। **'रतन बावनी'** बावन छंदों की लघु रचना है। इसमें इन्द्रजीत सिंह के बड़े भाई रतन सिंह के शौर्य का वर्णन किया गया है। वे अकबर की ओर से बंगाल के विद्रोहियों का दमन करने गये थे, वहीं वीरगति को प्राप्त हुए। कवि ने उनके पराक्रम का ओजपूर्ण शैली में वर्णन किया है। **वीर सिंह देव चरित** में केशव ने वीरसिंह बुन्दोला का जीवन चरित लिखा है। उनके शौर्य-पराक्रम और राज्य प्राप्ति का वर्णन विशेष रूप से किया है। *संवाद सौष्ठव* केशव के काव्य का प्राण है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत केशव संवादों के लिए प्रसिद्ध हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जहाँ उनके आचार्यत्व और कवित्व पर आक्षेप किए है। वहीं रामचंन्द्रिका में संवादों की सुन्दर योजना पर मुक्तकंठ से केशव की प्रशंसा भी की है- 'रामचंन्द्रिका में केशव को सबसे अधिक सफलता मिली है संवादों में।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास) किसी भी काव्य में संवादों की योजना के निम्नांकित तीन महत उद्देश्य होते हैं-

1. कथानक को आगे बढ़ाने के लिए।
2. चरित्र-चित्रण को प्रभावशाली बनाने के लिए।
3. काव्य में रोचकता उत्पन्न करने के लिए।

केशव के काव्य संवादों द्वारा ये सभी उद्देश्य पूर्ण होते हैं। कहना न होगा कि जहाँ संवादों ने उनके काव्य को गति प्रदान की है, वहीं चरित्र-चित्रण हेतु अभिनयात्मक प्रणाली में संवाद ही मुख्य भूमिका निभाते हैं, जो केशव के काव्य के संवादों ने निभाई है और काव्य को पढ़ते-पढ़ते ऊब जाने की स्थिति से बचने के लिए संवादों ने रोचकता उत्पन्न कर रामचन्द्रिका को सरस बनाया है।

'रामचंद्रिका' में नौ संवाद मिलते हैं- सुमति-विमति संवाद, राम-जानकी संवाद, राम-लक्ष्मण संवाद, सीता-हनुमान संवाद, राम-परशुराम संवाद, राम-सूर्पणखा संवाद, सीता-रावण संवाद, रावण-अंगद संवाद, रावण-बाणासुर संवाद। इनमें राम-सूर्पणखा संवाद, सीता-रावण संवाद और सीता-हनुमान संवाद छोटे होते हुए भी प्रभावशाली और सुन्दर हैं किन्तु रावण-बाणासुर संवाद, राम-परशुराम संवाद, रावण-अंगद संवाद अपेक्षाकृत बड़े होते हुए भी कम रोचक नहीं हैं। इन संवादों की विशेषताओं को आप निम्नांकित रूप में देख सकते हैं- इन संवादों में **पात्रानुकूलता** देखने को मिलती है। रावण और बाणासुर दोनों ही अत्यन्त शक्ति सम्पन्न हैं, दोनों को स्वयं पर गर्व है, दोनों एक-दूसरे से अपने पराक्रम का वर्णन करने के लिए व्यंग्य का सहारा लेते हैं। रंगशाला में रखे हुए धनुष को तोड़ने के लिये प्रवेश करते ही रावण कहता है-

शंभु कोदण दै राजपुत्री कितै ।
टूक द्वै तीन कै, जाहुँ लंकाहि लै ।।

उपर्युक्त संवाद रावण की शक्ति और उसको अपनी शक्ति पर होने वाले अहंकार को दर्शा रहा है। इसके प्रत्युत्तर में बाणासुर का व्यंग्य देखिये-

जुपै जिय जोर, तजौ सब सोर।
सरासन तोरि, लहौ सुख-कोरि ।।

तब रावण अपने शौर्य, पराक्रम की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हुए कहता है-

केशव कोदण विषदं ऐसो खंै अब।
तेरे भुजदं की बड़ी है वि म्बना ।।

वाणासुर चुटकी लेता है-

बहुत बदन जाके, विविध वचन ताके ।।

उपर्युक्त संवाद अत्यन्त पराक्रमी योद्धाओं रावण और बाणासुर के सर्वथा अनुकूल हैं। पात्रानुकूलता अन्य सभी संवादों में दर्शनीय है। केशव के संवादों में **शिष्टाचार** दर्शनीय है, इनमें सामाजिक मर्यादा का पूर्णत: ध्यान रखा गया है, सभी पात्रों के संवाद शिष्टाचारपूर्ण हैं। 'हनुमान-सीता' संवाद को ही लें तो उसमें हनुमान ने सीता के लिये 'जननि', राम के लिए 'दशरथ-नन्दन' या रघुनाथ, दशरथ के लिए अज-तनय-चन्द आदि शब्दों का प्रयोग कर संवादों की गरिमा को बनाए रखा है। केशव के संवाद **कूटनीति** से पूर्ण है, उनमें राजनीति में प्रयोग होने वाले सभी उपायों को भी सम्मिलित किया गया है। कूटनीति, भेद नीति आदि का सहारा लेकर केशव ने संवादों को जीवन्त व प्रभावशाली बना दिया है, रामचन्द्रिका का अंगद-रावण संवाद इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। इस प्रकार ये सभी संवाद राजनीति के सभी दांवपेचों से युक्त हैं।

केशव के संवाद **नाटकीय** सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं। पात्रों द्वारा बोले गए संवादों के आगे उनका नाम उल्लिखित है, जिससे काव्य में नाटकीयता आ जाने से रोचकता बढ़ गई है, जैसे-

रावण- कौन हो पठये सो, कौने, हयाँ तुम्हें कहा काम है ?
अंगद- जाति वानर, लंक नायक दूत, अंगद नाम है।

केशव के संवादों में सामान्यत: **बोलचाल की भाषा** का ही प्रयोग हुआ है। जिससे स्वाभाविकता और सरलता में वृद्धि हुई है। मुहावरे और लोकोक्तियों के साथ-साथ व्यंग्यात्मकता भी इन संवादों की विशिष्टता है। छोटे-छोटे वाक्य गंभीर अर्थ से परिपूर्ण हैं। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि रामचंद्रिका के संवादों में संक्षिप्तता, सरलता, काव्य में नाटकीय सौन्दर्य, भाषा की व्यावहारिकता, पात्रानुकूलता, शिष्टता आदि अनेक ऐसी विशेषताएँ मौजूद हैं जो पल-पल कौतूहल को बढ़ाती हैं, रामचन्द्रिका का संवाद सौष्ठव निश्चय ही अप्रतिम है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. कथ्य किसे कहते हैं ? निम्नांकित दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

   .....

   .....

2. केशव की दो वीरगाथात्मक रचनाओं के नाम लिखिए।
3. केशव के संवादों की तीन विशेषताएं लिखिए।

केशव का प्राकृतिक चित्रण

केशवदास काव्य और प्रकृति के बीच अटूट संबंध मानते हैं। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति वर्णन हेतु अतिरिक्त अवसर जुटाने के प्रयास भी किए हैं। प्रकृति वर्णन हेतु केशव ने परम्परागत सभी विधियों को अपनाया है, जिसमें प्रकृति के उद्दीपन रूप का वर्णन सर्वाधिक है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में प्रकृति का आलंबन, आलंकारिक, बिम्ब-प्रतिबिम्ब और परिगणनात्मक रूप में भी वर्णन मिलता है।

सीता से वियुक्त होने के पश्चात् राम की विरहावस्था का वर्णन करते हुए केशव ने प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण किया है, जो द्रष्टव्य है-

हिमांसु सूर सो लगै सो बात वज्र-सी बहै।
दिसा लगै कृसानु ज्यों, बिलेप अंग को दहै।।
विसेस कालराति सों, करालराति मानिये।
वियोग सीय को न, काल लोकहार जानिए।

विरही राम को इस समय शीतल चन्द्रमा सूर्य के समान दाहक, मलय वायु वज्र के समान कठोर लगती है, सारी दिशाएँ जलाने लगती हैं, चंदन आदि उबटन भी शरीर को जला रहे हैं। साधारण रात्रि कालरात्रि के समान प्रतीत हो रही है। प्रकृति के ये सभी उपादान विरही राम के दुख को और बढ़ा रहे हैं।

केशव ने प्रकृति को **आलम्बन** रूप में भी चित्रित किया है। आलम्बन रूप में प्रकृति को निम्नांकित दो रूपों में चित्रित किया जाता है— प्रकृति के विविध पदार्थों के नामों की गणना करके, इसे नाम परिगणन प्रणाली कहा जाता है। दूसरा, प्रकृति के संश्लिष्ट चित्रों का अंकन करके बिम्ब प्रस्तुत करना, इसे 'बिम्ब ग्रहण प्रणाली' कहा जाता है। केशव ने नाम परिगणन प्रणाली का प्रयोग अधिक किया है। जैसे-

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर।
मंजुल वंजुल तिलक लकुच कुल नारिकेरवर।।

केशव कहीं-कहीं बिम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा करते हुए भी दिखते हैं, जो केशव की प्रकृति का शाब्दिक चित्र खींचने की क्षमता दर्शाता है किन्तु यत्र-तत्र चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति से प्रकृति वर्णन थोड़ा दबा-दबा सा प्रतीत होता है। केशव ने प्रकृति के **मानवीकृत** रूप में सुन्दर चित्र खींचे हैं। उनकी प्रकृति मानवीय क्रिया-व्यापारों में लिप्त-सी दिखाई देती है। यही कारण है कि कहीं केशव को अयोध्या के भवनों पर सुशोभित पताकाएँ दण्डधारण करने वाली संन्यासिनी के समान जान पड़ती हैं, कहीं वर्षा ऋतु अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया के समान कार्य करती हुई जान पड़ती है तो कभी महाकाली के समान किलकारी भरती-सी दृष्टिगत होती है। केशव के काव्य में वर्षा ऋतु के मानवीकरण का सुन्दर रूप दृष्टव्य है —

तरूनी यह अत्रि रिषीस्वर की-सी ,
उर में हिम चन्द्रप्रभा सम दीसी ।
वरषा न सुनो किलकै किल काली ,
सब जानत हैं महिमा अहिमाली ।

इस प्रकार आप देखेंगे कि केशव के काव्य में यत्र-तत्र प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोपण किया गया है। इस प्रकार केशव की रचनाओं में प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया गया है। कहीं वह समाज के लिए एक उपदेशक के रूप में कार्य करती चित्रित है तो मानवीय सुख-दुख की स्थितियों में **संवेदनात्मक** हो जाती है अर्थात् मनुष्य के सुख-दुखानुसार स्वयं भी परिवर्तित हो जाती है। केशव के प्रकृति चित्रण पर पं. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. श्यामसुन्दर दास आदि कई विद्वानों ने आक्षेप किए हैं। डॉ. श्यामसुन्दर दास का कहना है कि "प्रकृति के सन्तुलित सौन्दर्य से प्रभावित होने के लिए जिस भावुकता की आवश्यकता होती है, उसका केशव में सर्वथा अभाव है।" (हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 255)।

केशव अपनी अलंकार-प्रियता और चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों के वशीभूत प्रकृति चित्रण में कहीं-कहीं वे शब्दों से खेल करते से जान पड़ते हैं। प्रात:काल राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के जनकपुरी पहुँचने पर सूर्य के लाल गोले को समय रूपी कापालिक के हाथ लगा रक्त रंजित कपाल बताना, अत्यन्त घृणास्पद प्रतीत होता है —

कै शोणित कलित कपाल यह किलकापालिक काल को,
यह ललित लाल कैसो लसत् दिग् भामिनि के भाल को ।

इसी प्रकार एक दूसरे स्थान पर विश्वामित्र द्वारा सूर्य का वर्णन करते हुए 'चढ़्यो गगन तरुधाम, दिनकर बानर अरुण मुख' कहकर उसे बंदर रूप में चित्रित करना आदि अनेक ऐसे वर्णन हैं जहाँ केशव अलंकारों के जाल में फँसे हास्यास्पद नजर आने लगते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. मानवीकरण किसे कहते हैं। निम्नांकित दो पंक्तियों में उत्तर दीजिये।

.....

.....

2. व्यंग्यार्थ क्या है ?

13.4.2 संरचना शिल्प

केशव के काव्य की भाषा **ब्रज** है, जिसमें बुंदेलखंडी भाषा का प्रभाव भी विद्यमान है, इसलिए अधिकांश विद्वानों ने उनकी भाषा को बुंदेलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा कहा है। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। केशव ने अपनी कविता का माध्यम जनभाषा को बनाया, जिसके लिए स्वयं उन्होंने लिखा है-

भाषा बोलि न जानहीं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति, तेहि कुल केशवदास ।।

केशव की भाषा पर संस्कृत का प्रभाव अधिक है। इसके अतिरिक्त अवधी, अरबी-फारसी के शब्द भी उनकी कविताओं में यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं। केशव की भाषा में अभिधा की प्रधानता होते हुए भी चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया गया है। संस्कृत के श्लोकों का प्रयोग कवि ने खूब किया है और कहीं-कहीं ब्रजभाषा को ही संस्कृतमय बना दिया गया है, जैसे-

शिरचन्द्र की चन्द्रिका छारु हाशे।
महापात की ध्वांत धाम प्रणाशे ।।

सृजति, शस्ययुक्ता, समुद्रावधि, स्वलीलया, पतन्ति, चलन्ति आदि कई संस्कृत शब्दों का प्रयोग केशव के काव्य में हुआ है। केशव की भाषा में **बुंदेलखं ी** शब्दों का आधिक्य मिलता है, जैसे- गलसुई, स्यों, छन्दी, मानिबी, जानिबी, चोली, ओली, कीबी, छीवै आदि। **अवधी** शब्दों के अन्तर्गत इहाँ, उहाँ, दिखाउ, दीन, कीन आदि शब्द द्रष्टव्य हैं। केशव दरबारी कवि थे। दरबारों में **अरबी-फारसी** भाषाओं का बोलबाला था, अत: इन भाषाओं की शब्दावली का पूरा-पूरा प्रयोग केशव ने किया है। केशव के काव्य में बकसीस, सिरताज, सतरंज, बाजी, कसम, शोर, तेग, फरमान, दरबार, महल, गरीब आदि अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। **शैली** की दृष्टि से केशव ने दो प्रकार की शैली अपनाई है - 1. प्रबंध शैली 2. मुक्तक शैली। केशव ने रामचंद्रिका, रतनबावनी, वीरसिंहदेव चरित में प्रबंध शैली अपनाई है तो कविप्रिया, रसिकप्रिया और नख-शिख में मुक्तक शैली को अपनाया है। केशव की शैली में **ओज, माधुर्य** और **प्रसाद** तीनों गुण विद्यमान हैं। इसी गुण के कारण उनके काव्य के विभिन्न वीर-रसात्मक स्थल एवं वाद-विवाद सम्बन्धी प्रसंग सरस और मार्मिक बन पड़े हैं। 'रामचन्द्रिका' में राम-परशुराम संवाद, रावण-अंगद संवाद, रावण-बाणासुर आदि संवाद दपोक्तियों से भरे हैं। बाणासुर की उक्ति को आप उदाहरणार्थ देख सकते हैं –

हौं जब ही जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रणासी।
देखि फिरौं तब ही तब रावण सातों रसातल के जे विलासी।।
लै अपने भुजदं अखं करौं छिति मं ल छत्र प्रभासी।
जानै को केशव केतिक बार में सेस के सीसन दीन्ह उसासी।।

केशव की **रसिकप्रिया** में **माधुर्य गुण** की प्रधानता देखने को मिलती है। उनके श्रृंगार-पूरित छंदों में माधुर्य गुण का प्रवाह देखिए-

एक रदन गज वदन सदन बुद्धि मदन-करन-सुत।
गौरि-नंद, आनंद-कंद जगवंद चंद-युत।।
सुखदायक दायक सुकीर्ति जगनायक नायक।
खलघायक घायक दरिद्र सब लायक लायक।।

केशव के काव्य में अलंकाराधिक्य के कारण सामान्यत: क्लिष्टता नजर आती है, किन्तु ऐसे पद भी है जो प्रसाद गुण से सम्पन्न हैं-

सोभित मंचन की अवली गजदंतमयी छवि उज्ज्वल छाई।
ईश मनो वसुधा में सुधारि, सुधाधर मं ल मं जोन्हाई।।

केशव का शब्द भंडार अनंत था। केशव संस्कृत के प्रकांड पंडित तो थे ही, ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी, अरबी-फारसी शब्दों का भी विशाल भंडार उनके पास विद्यमान था।

केशव के काव्य में **विविध छंदों** का प्रयोग देखने को मिलता है। केशव ने 'रामचंद्रिका' के प्रारंभ में ही छन्दों के संबंध में अपना मन्तव्य स्पष्ट किया है-

रामचंद्र की चंद्रिका बरनत हौं बहुछन्द।

केशव ने रामचंद्रिका में 24 मात्रिक व 56 वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है। अपने काव्य में भावानुसार छंदों का प्रयोग करने में केशव कुशल हैं। यशोगान में जहाँ उन्होंने कवित्त व सवैया छंद का प्रयोग किया है, वहीं वीर रस परिपूर्ण भाव के लिए छप्पय छंद का प्रयोग किया है। कतिपय विद्वानों ने छंदों के प्रयोगाधिक्य के लिए केशव की रचनाओं पर आक्षेप भी लगाए हैं। पद-पद पर छंदों के परिवर्तन से रचना का प्रबंधत्व बाधित हुआ है, ऐसा केशव की रचना के विषय में डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त मानते हैं।

केशव ने अपने काव्य में श्रृंगार, वीर, करुण और शांत रसों का प्रयोग अधिक किया है। केशव रसिक प्रवृत्ति के थे, अत: उन्हें श्रृंगार रस ने ज्यादा आकृष्ट किया है। कृष्ण प्रेम में लीन राधा का चित्रण द्रष्टव्य है —**केशव चौंकति-सी चितवै, छतिया धरकै तरकै तकि छाँही।**

इसी प्रकार राम-रावण युद्ध और लव-कुश युद्ध में वीर रस का उत्कृष्ट चित्रण देखा जा सकता है —

राघव को दल मत करीश्वर अंकुश दै कुश केसव फेर~यौ।

'रामचन्द्रिका' में वीर रस पूर्ण ऐसे अनेक प्रसंग देखे जा सकते हैं। करूणापूरित प्रसंगों का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। लव की मूर्च्छा का समाचार सुनकर सीता की व्याकुल स्थिति का चित्रण द्रष्टव्य है —

सीता गति पुत्र की सुनि कै भई अचेत ।
मनो चित्र की पुत्तिका, मन क्रम वचन समेत ।।

इस प्रकार केशव ने अनेकानेक रसों के सुन्दर दृश्यों को अपने काव्य में वर्णित किया है।

केशव के काव्य में अलंकारों का प्रयोगाधिक्य देखने को मिलता है। उनका मानना था कि 'भूषन बिनु न बिराजति, कविता बनिता मित्त' अर्थात् आभूषणों के अभाव में कविता और स्त्री शोभायमान नहीं होती। उनके काव्य में अनुप्रास, श्लेष, यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास आदि अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग देखने को मिलता है। श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि ऐसे अलंकारों का प्रयोग भी केशव ने किया है, जिनके कारण केशव का काव्य सर्वसाधारण के लिए कठिन और दुरूह हो गया है। ऐसे स्थलों पर केशव की हृदयहीनता ही दिखाई देती है। केशव के वर्षा-वर्णन में प्रयुक्त—

भौहें सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूषन जरा जोति तड़ित रलाई है ।

आदि कवित्त जिनमें दो-दो अर्थ निकलते हैं। जिन्हें समझने में सामान्यत: सभी को कठिनाई महसूस होती है, उदाहरणार्थ लिए जा सकते हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। संस्कृत शब्दों के प्रयोगाधिक्य के कारण जहाँ केशव के काव्य में दुरूहता आयी वहीं हिन्दी भाषा की समृद्धि एवं शब्द भण्डार की पूर्ति में योगदान भी रहा। हिन्दी भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति आयी और हिन्दी को गौरव प्राप्त हुआ। नि:सन्देह केशव की भाषा शास्त्रीयता से परिपूर्ण और अभिव्यंजना-शक्ति सम्पन्न है।

अभ्यास प्रश्न 5

1. केशव की रचना में प्रयुक्त हुए अरबी-फारसी शब्दों से पाँच शब्द नीचे लिखिये -

कोष्ठक में दिये गये शब्दों में से उपयुक्त शब्द लेकर रिक्त स्थान भरिए -

2. शैली की दृष्टि से केशव ने 'रामचन्द्रिका' में..... व 'रसिकप्रिया' में ..... को अपनाया है। (मुक्तक शैली, प्रबन्ध शैली)

13.5 संदर्भ सहित व्याख्या

इससे पूर्व आपने केशव के काव्य की भावपक्षीय एवं कलापक्षीय विशेषताओं को जाना। अब हम केशव की 'रामचन्द्रिका' से कुछ पद्य खंडों की व्याख्या करेंगे।

बालक मृणालिनी ज्यों तोरि रै सबै काल, कठिन कराल ज्यों अकाल दीह दुख कों।
विपति हरत हठि पद्मिनी के पात सम, पंख ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष कों।
दूरि कै कलंक-अंक भव-सीस-ससि सम्, राखत है 'केसौदास' दास के वपुष कों।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तौरै, दसमुख मुख जोवै गजमुख मुख कों।।

शब्दार्थ: बालक= यहाँ हाथी के बच्चे से अभिप्राय है। मृणालिनी = कमल नाल = कमल की डंडी जो बहुत कोमल होती है। दीह = दीर्घ, बड़ा। कलुष = पाप। वपुष = शरीर। सांकरे = संकट में पड़ा हुआ। सांकरनि = श्रृंखलाओं, बन्धनों को। दसमुख = दसों दिशाएं (दसों दिशाओं के लोग) तथा ब्रह्मा- चार मुख, विष्णु- एक मुख, महादेव = पाँच मुख (ब्रह्मा+विष्णु+महादेव=दसमुख)। गजमुख = गणेश।

प्रसंग: केशव दास जी 'रामचन्द्रिका' का प्रारम्भ करते हुए विपत्तियों को नष्ट करने वाले गणेश जी की वन्दना कर रहे हैं। गणेश 'गजवदन' हैं, इसलिए उनके सभी कार्यों को कवि ने हाथी के बच्चे के कार्यों के समान दिखाने की चेष्टा की है। दसों दिशाओं के मनुष्य उनके कृपाकांक्षी रहते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि इसी तथ्य को प्रकट कर रहा है।

व्याख्या: जैसे हाथी का बच्चा सभी कालों में कमल- नाल को तोड़ डालता है, वैसे ही गणेशजी बड़े-बड़े भयंकर व कठिन दुखों को नष्ट कर देते हैं। विपत्तियों को इस प्रकार दूर कर देते हैं, जिस प्रकार हाथी का बच्चा कमलिनी के पत्ते को सरलता से तोड़ देता है तथा पाप (कलुष) को कीचड़ की तरह दबाकर पाताल में भेज देते हैं। आप दास के शरीर से कलंक का चिन्ह दूर करके उसे शिव के मस्तक के चन्द्रमा के समान (कलंक-रहित) बना देते हैं तथा उसकी (सदा) रक्षा करते हैं। आप सामने आते ही संकट में पड़े भक्त के बन्धनों को तोड़ डालते हैं। दसों दिशाओं के लोग अथवा दस-मुख (त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश-ब्रह्मा के चार मुख, विष्णु का एक मुख, शिव के पांच मुख= दस मुख) श्रीगणेश जी का मुख देखते रहते हैं अर्थात् गणेश जी से सहायता की आशा करते रहते हैं।

विशेष: 1. अलंकार : 'बालक मृणलिनी..... दुख को' में उदाहरण, 'कठिन कराल' में 'क' की अनेक बार आवृत्ति, 'दीह दुख' में 'द' की अनेक बार आवृत्ति, 'हरत-हठि' में 'ह' की कई बार आवृत्ति, 'पाताल..... पठवे' में 'प' की एक से अधिक बार आवृत्ति तथा 'सांकरे' .....सन्मुख में 'स' की बहु बार आवृत्ति में वृत्यानुप्रास, 'पद्मिनी के पात सम' तथा 'भव-दीस ससि सम' में उपमा, 'कराल-अकाल', कलंक-अंक में ध्वनिसाम्य और 'गजमुख-मुख' में यमक तथा 'गजमुख' का साभिप्राय प्रयोग होने से परिकरांकुर अलंकार है।

कविकुलविद्याधर सकल कलाधर, राजराज वर वेष बने।
गनपति सुखदायक, पसुपतिलायक, सूर सहायक कौन गनै॥
सेनापति बुधजन, मंगल गरुगन, धर्मराज मन बुद्धि धनी।
बहु, सुभ मनसाकर, करुनामय अरु, सुरतरंगिनी सोभसनी॥

शब्दार्थ : कवि कुल= शुक्राचार्य, कवि। विद्याधर= देवताओं की एक जाति, विद्या को धारण करने वाले, विद्वान। कलाधर= कलाकार, चन्द्रमा। राजराज= कुबेर, राजाओं के राजा। बर= उत्तम। गनपति= गणों के स्वामी, गणेश। पसुपति= शिवजी पशुओं के स्वामी। सूर= शूरवीर। सेनापति= कार्तिकेय, सेना के अध्यक्ष। बुध= विद्वान, बुध नामक ग्रह। गुरु= उपाध्यक्ष तथा गुरु अर्थात् बृहस्पति ग्रह। धर्मराज= परम धर्मात्मा, सुरतरंगनी= देव नदी, सरयू।

प्रसंग : प्रस्तुत छंद में महर्षि विश्वामित्र अयोध्या के नागरिकों का वर्णन करते हुए कहते हैं-

व्याख्या : अयोध्या नगरी देव-सभा से भी बढ़कर है, क्योंकि देव- सभा में तो एक ही कवि (शुक्राचार्य) हैं जबकि यहाँ पर कवियों का समूह है। देव-सभा में विद्याधर नाम की एक देव जाति के लोग हैं, किन्तु यहाँ पर सभी लोग विद्या को धारण करने वाले अर्थात् विद्वान हैं। देव-सभा में कलाधर (चन्द्रमा) एक ही है, किन्तु यहाँ पर सभी कलाकार हैं। देव-सभा में उत्तम वेश धारण करने वाले अनेक व्यक्ति हैं। देव-सभा में देवों को सुख देने वाले केवल एक (गणपति गणेश) हैं, जबकि यहाँ पर पशुओं के स्वामी अनेक हैं। राज-काज में सहायता देने वाले ये शूरवीर इतने हैं कि गिने भी नहीं जा सकते। देव-सभा में सेनापति कार्तिकेय एक ही हैं जबकि यहाँ पर अनेक सेनापति हैं। देव-सभा में एक बुधजन एवं गुरु है, जबकि यहाँ मंगलकारक गुरुओं का समूह है। देव-सभा में अच्छा मन और अच्छी बुद्धि रखने वाले एक ही धर्मराज (यमराज) हैं, जबकि यहाँ पर अनेक धर्मात्मा हैं। देवलोक में एक ही कल्पवृक्ष है जबकि यहाँ पर बहुत से मनोवांछित फल देने वाले वृक्ष हैं। वहाँ एक ही दयापूर्ण विष्णु तथा एक ही सुर-तरंगिनी (देव नदी, आकाश गंगा) है जबकि यहाँ बहुत-से लोग दयापूर्ण हैं और यहाँ परम पावन सरयू नदी है।

विशेष : 1. अलंकार : 'कवि-कुल, कल-कला', राज-राज, वर-वेष बने, पसु-पति, सूर-सहायक, गुरु-गन, सोम-समी में अनुप्रास। लगभग सभी शब्दों में श्लेष तथा मुद्रा अलंकार है, क्योंकि उनका एक अर्थनाम है। दायक-लायक-सहायक, जन-गन-मन में ध्वनिसाम्य है।

2. इस पद में कवि का अलंकार चमत्कार तथा शब्दों का गठन विशेष उल्लेखनीय है।

3. अनेक स्थानों पर मुद्रा अलंकार का प्रयोग है। शब्द शक्ति का वर्णन चमत्कारपूर्ण है। अर्थ सहज बोधगम्य नहीं है। ऐसी ही छन्द-रचना के कारण केशव 'कठिन काव्य के प्रेत' कहे गये हैं।

4. इस छन्द में प्राय: सभी पद श्लिष्ट हैं। श्लेष अलंकार के चमत्कार के कारण यद्यपि कठिनाई आ गई है, किन्तु देव-सभा की अपेक्षा अयोध्या की जो विशेषता दिखाना कवि को इष्ट है, वह पूरा हो गया है।

पावक, पवन, मनि पन्नग, पतंग, पितृ, जेते ज्योतिवत जग ज्योतिषिन गाए हैं।
असुर, प्रसिद्ध सिद्ध, तीरथ सहित सिंधु, 'केसव' चराचर जे बेदन बताए हैं।
अजर-अमर अंगी औ-अनंगी सब, बरनि सुनावै ऐसे कौने गुन पाए हैं।
सीता के स्वयंवर को रुप अवलोकिबे कों, भूपन को रूप धरि विस्वरूप आए हैं॥

शब्दार्थ : मनि पन्नग= मणिधारी सर्प। पतंग= सूर्य। पितृ= पूर्वज। ज्योतिवंत= प्रकाशवान। अंगी= शरीरधारी। अनंगी= अशरीरी। अवलोकिबेकों= देखने के लिए। विस्वरूप= भगवान। अजर= जो कभी वृद्ध न हो।

प्रसंग- महाकवि केशवदास अपने महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' में सीता के स्वयंवर के अवसर पर मण्डप में उपस्थित सुर-असुर, सिद्ध आदि का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या- ज्योतिषियों ने संसार में अग्नि, वायु, मणिधारी सर्प, सूर्य, पितर आदि जितने तेजस्वी ताये हैं। वेदों ने असुर, प्रसिद्ध सिद्ध, सागर सहित सभी तीर्थ तथा जितने चर और अचर प्राणियों का वर्णन किया है; सभी अजर-अमर, निराकार और साकार प्राणियों का वर्णन कर सके, ऐसे गुण किसे प्राप्त हुए हैं ? अर्थात् किसी को नहीं। ये सभी सीता के स्वयंवर में उपस्थित हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान विष्णु स्वयं ही राजाओं का रूप बनाकर सीताजी का स्वयंवर देखने को पधारे हैं।

विशेष- 1. **अलंकार-** 'पावक-पवन, पतंग-पितृ, जेते-ज्योतिवन्त-जग-ज्योतिषिन, सहित-सिन्धु, बेदन-बताये' में अनुप्रास; 'बरनि सुनावै ऐसे कौन गुन पाये हैं' में वक्रोक्ति से पुष्ट सम्बन्धातिशयोक्ति तथा 'भूपन के रूप धरि विस्वरूप आये हैं' में उत्प्रेक्षा अलंकार हैं। 'प्रसिद्ध-सिद्ध, अजर-अमर, अंगी-और-अनंगी' में ध्वनिसाम्य है। 2. शांत रस, ब्रजभाषा एवं घनाक्षरी छंद है। 3. शब्द चयन में अत्यन्त लाघव और कौशल का प्रदर्शन है।

'केशव' ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेल बई है।
दान-कृपान-विधानन सों सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है।
अंग छ: सातक आठक सों भव तीनिहू लोक में सिद्धि भई है।
वेदत्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ जोगमई है।

शब्दार्थ - केशव= राम। मिथिलाधिप= मिथिला के राजा जनक। कीरति= यश। बई= बोई। विधानन= कार्यों। अंग छ: = शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द, छ: वेदांग। सात अंग= राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, दुर्ग और सेना। आठ अंग= यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, प्रत्याहार, ध्यान और समाधि। वेदत्रयी= तीनों वेद-ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद।

प्रसंग- रामचन्द्रजी को महर्षि विश्वामित्र राजा जनक के गुणों से अवगत कराते हुए कह रहे हैं।

व्याख्या- हे राम! ये मिथिलापुरी के राजा जनक हैं, जिन्होंने संसार में अपने यश की बेल को बो दिया है अर्थात् इनका यश संसार में सर्वत्र फैल रहा है। इन्होंने दान, तलवार और राजनीति के नियमों के द्वारा समस्त पृथ्वी को अपने अधिकार में कर रखा है। इनको छहो वेदांग- शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, ज्योतिष और छंद का ज्ञान है तथा ये राज्य के सातों अंगों से युक्त हैं और योग के आठों अंगों से सम्पन्न हैं। शास्त्र के छह अंगों, राज्य के सात अंगों और योग के आठ अंगों द्वारा इन्होंने तीनों लोकों में अपना प्रभाव जमा रखा है। वेदत्रयी तथा राजश्री दोनों की परिपूर्णता का शुभ योग इनमें हुआ है अर्थात् ये वेदों के ज्ञाता और राजा दोनों ही हैं। यह इनकी विशेषता है।

विशेष- 1. **अलंकार-** 'जग में जिन', 'बेलि-बई' में अनुप्रास तथा दान-कृपान-विधान, सातक-आठक में ध्वनिसाम्य है। 'कीरति-बेलि' में रूपक और 'जोग' में श्लेष अलंकार है। 2. महर्षि विश्वामित्र रामचन्द्रजी को राजा जनक के गुण बताते हुए उन्हें वेद और राजा दोनों को सिद्ध करते हुए उनकी विलक्षणता का प्रदर्शन करते हैं। 3. ब्रजभाषा भाषा और सवैया छंद है। 4. वेद, राज्य और योग के अंगों का संकेत करके केशव ने अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।

ताड़का संहारी तिय न विचारी, कौन बड़ाई ताहिं हने ?
मारीच हुते संग प्रबल सकल खल, अरु सुबाहु काहू न गने।
करि क्रतु रखबारी गुरु सुखकारी, गौतम की तिय सुद्ध करी।
जिन रघुकुल मं ्यो हरधनु खं ्यो, सीय स्वयंवर मांझ बरी।

शब्दार्थ: तिय= स्त्री। सकल = सब। खल = धूर्त, दुष्ट। क्रतु= यज्ञ। गौतमतीय= गौतम की पत्नी, अहिल्या। हर= शिवजी। मंड्यो= सुशोभित किया।

प्रसंग: प्रस्तुत छन्द परशुराम और वामदेव के संवाद के रुप में है। वामदेव द्वारा राम का परिचय ताड़का-वधकर्ता के रुप में पाकर परशुरामजी बोले-

व्याख्या: परशुरामजी कहते हैं कि राम ने ताड़का राक्षसी का वध किया, परन्तु यह नहीं विचारा कि वह नारी थी और नारी तो अवध्य है। अत: एक नारी का वध करने में कौन-सी बड़ाई की बात है? राम की यह प्रशंसा व्यर्थ है। तब वामदेवजी कहते हैं कि ताड़का अकेली न थी। उसके साथ सब धूर्त राक्षसों में बली मारीच और सुबाहु भी थे। इन सबको किसी ने नहीं गिना। इतना ही नहीं, यज्ञ की रक्षा करके गुरु विश्वामित्र को सुख देने वाले राम ने गौतम की पत्नी अहिल्या को पवित्र करके उसका उद्धार किया और महादेव जी के धनुष को खण्ड-खण्ड करके संसार को अपने यश से सुशोभित किया। स्वयंवर में सब राजाओं के मध्य में राम ने सीता का वरण किया अर्थात् उनसे विवाह किया। ऐसे शूरवीर जनहितकारी एवं बली राम को आप नहीं जानते, यह आश्चर्य है।

विशेष: 1. **अलंकार-** 'करि-क्रतु', 'सीय-स्वयंवर' में अनुप्रास, 'प्रबल-सकल-खल', 'बारी-कारी', 'मंड्यो-खंड्यो' में ध्वनिसाम्य है। 2. कवित्त छंद एवं संस्कृतनिष्ठ ब्रजभाषा में लिखित इन

पंक्तियों में केशवदास का संवाद-कौशल झलक रहा है। 3. परशुरामजी द्वारा नारीकी अवध्यता का प्रश्न अनुत्तरित रह गया है।

निज देखौं नहीं शुभगीतहिं सीतहिं कारण कौन कहौ अब हीं।
अति मोहित कै बन माँझ गई सुर मारग मैं मृग मार्‌यो जहीं॥
कटु बात कछू तुमसों कहि आई किधौं तेहि त्रास ेरा रहीं।
अब है यह पणकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण हो नहीं॥

शब्दार्थ : शुभगीतहिं = उत्तम कीर्तिवाली को। हित = प्रेम। सुर मारग = शब्द के मार्ग से, जिस ओर से सीताजी को 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनाई पड़े थे, उस मार्ग से। त्रास = भय से। दुराय रही = छिप गई।

प्रसंग : जब श्रीराम और लक्ष्मण दोनों पर्णकुटी में लौटकर आये तो पर्णकुटी सूनी देखकर श्रीराम लक्ष्मण से पूछने लगे।

व्याख्या: मैं उत्तम कीर्तिवाली अपनी सीता को यहाँ नहीं रहा हूँ। इसका क्या कारण है ? तुम तुरन्त यह सब बताओ। क्या सीता मुझ पर बहुत प्रेम प्रकट करके वहां शब्द के मार्ग से वन में चली गई, जहाँ मैंने मृग को मारा था और जहाँ से उन्हें 'हा लक्ष्मण' शब्द सुनाई दिया था या तुम से उन्होंने कुछ कटु वचन कहे हैं, जिससे लज्जित होकर भय से कहीं छिप गई हैं या क्या यह हमारी वही पर्णकुटी है अथवा कोई दूसरी है ? क्या तुम मेरे भाई लक्ष्मण ही हो या अन्य कोई मायावी पुरुष हो ? भाव यह है कि पुर्णकुटी की सब व्यवस्था विपरीत देखकर राम उसका कारण नहीं जान पा रहे हैं।

विशेष : अलंकार- 1. 'कारण-कौन कहौ', 'मारग-मैं-मृग-मार्‌यो', 'तेहि त्रास' में अनुप्रास अलंकार तथा 'शुभगीतहिं-सीतहिं' में ध्वनिसाम्य है। सम्पूर्ण पद में संदेह अलंकार है। 2. सवैया छंद, ब्रजभाषा एवं वियोग श्रृंगार रस है। 3. इस छंद में उत्तम कोटि की भाव-व्यंजना है।

अभ्यास प्रश्न 6

1. केशव ने अपने काव्य में किन-किन भाषाओं का प्रयोग किया है ? (सही कथन के आगे (✓) और गलत कथन के आगे (x) का चिह्न लगाएं)।

क. बुन्देलखण्डी ( )

ख. अवधी ( )

ग. छत्तीसगढ़ी ( )

घ. भोजपुरी ( )

2. 'रामचंन्द्र की चन्द्रिका बरनत हौं बहुछन्द' किसका कथन है? इसका क्या अर्थ है ?

.....

.....

.....

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सिद्ध कीजिए कि केशव रीतिकाव्य के प्रवर्तक आचार्य हैं।
2. महाकवि केशवदास के काव्य की भावपक्षीय विशेषताएँ बताइये।
3. सिद्ध कीजिए कि केशव ने प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है।
4. रामचंद्रिका का महाकाव्यत्व की दृष्टि से आकलन करते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. केशव के प्रकृति वर्णन पर प्रकाश डालिए।

13.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि हिन्दी में केशवदास ने साहित्यशास्त्र अथवा काव्यशास्त्र (अर्थात् रस अलंकार, छंद आदि काव्यांगों) का का सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से लक्षण-उदाहरण सहित विवेचन प्रस्तुत करने का कार्य किया, जिससे वे रीतिकाव्य-धारा के प्रवत्तर्क आचार्य कहलाते हैं। केशव ने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' दो महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। साम्प्रदायिक दृष्टि से एक अलंकारवादी आचार्य थे, रस की दृष्टि से वे श्रृंगार के समर्थक थे और समग्रत: वे सर्वांगनिरूपक आचार्य थे। प्रबंधकाव्यों की परंपरा में केशव रचित 'रामचंद्रिका' की गणना होती है। 'रामचंद्रिका' अपने संवाद सौष्ठव में बेजोड़ है। प्रकृति वर्णन, भक्ति वर्णन संबंधी आदि पदों में केशव पर हृदयहीनता का आरोप लगाया जाता है। वस्तुत: उनके व्यक्तित्व में जो अंतर्विरोध मिलता है, वह संस्कृतमय वातावरण में पैदा होने और दरबार से जुड़े होने के कारण है। इस इकाई के संरचनाशिल्प के अध्ययन से इस बात को आप स्वयं अनुभव कर सकेंगे।

13.7 शब्दावली

विष	-	1. जल 2. जहर
अमृतन	-	1. सुधा 2. देवता
जीवनहार	-	1. सांसारिक जीव 2. पानी पीने वाले

अशेष	-	समस्त
प्रक्षालन	-	धोना
पात्रानुकूलता	-	पात्र के अनुकूल, जो पात्र के स्वभाव, शक्ति आदि के अनुसार हो।
लक्षण ग्रंथ	-	जिस ग्रंथ में कविता से संबंधित तत्वों – रस, रीति, अलंकार, ध्वनि, गुण, दोष आदि का विवेचन हो।
मानवीकृत	-	मानवीय रूप,
बारहमासा	-	जिसमें वर्षभर के बारह महिनों का वर्णन हो,यह विरहकाव्य में प्रयुक्त होता है।
प्रशस्ति	-	प्रशंसा,
आलम्बन	-	नायक या नायिका, जिसके कारण रति, क्रोध आदि भाव जाग्रत हो।
उद्दीपन	-	सुख-दुखात्मक भावों को उदीप्त अर्थात् बढ़ाने वाला।
सात्विक	-	पवित्रतायुक्त
सौष्ठव	-	सुडौलपन
आचार्यकवि	-	जो रीतिबद्ध कविता करने के साथ-साथ काव्यशास्त्र की शिक्षा भी देते थे।

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. ब. महाकाव्य
2. ब. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने

अभ्यास प्रश्न 2

1. लक्षण ग्रंथ को काव्यशास्त्रीय ग्रंथ भी कहा जाता है। जिस ग्रंथ में काव्य अथवा कविता से संबंधित तत्वों- रसों, अलंकार, वृत्ति, ध्वनि, गुण, दोष आदि का विवेचन किया जाता है, उसे लक्षण ग्रंथ कहते हैं।
2. ब. चिन्तामणि को।
3. कविप्रिया अलंकार निरूपक ग्रंथ है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. अपने काव्य में कवि जो कहता है या जिस विषय पर प्रकाश डालता है, वह कथ्य है।
2. 1. जहांगीर 2. रतनबावनी
3. 1. कूटनीति से पूर्ण है। 2. शिष्टाचारयुक्त हैं।
   3. पात्रानुकूल हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. काव्य में जहाँ पर जड़ या अचेतन पर मानवीय भावों का आरोप किया जाता है उसे 'मानवीकरण' कहा जाता है।
2. काव्य में जहाँ पर शब्द अपने मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ को छोड़ व्यंग्य अर्थ का बोध कराते हैं, वह व्यंग्यार्थ कहलाता है।

अभ्यास प्रश्न 5

1. क. सिरताज ख. सतरंज
   ग. बाजी घ. फरमान
   ङ. महल
2. शैली की दृष्टि से केशव ने रामचंद्रिका में **प्रबंधशैली** व रसिकप्रिया में **मुक्तक शैली** को अपनाया है।

अभ्यास प्रश्न 6

1. क. बुंदेलखंडी (✓) ख. अवधी (✓)
   ग. छत्तीसगढ़ी (×) घ. भोजपुरी (×)

2. यह कथन केशवदास का है। इस कथन का अर्थ है कि 'मैं रामचंद्रिका में श्री रामचंद्र जी की शोभा का वर्णन विविध छंदों के माध्यम से कर रहा हूं।'

13.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्त, गणपति चंद्र, (नवम सं. 2010), हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, *लोकभारती, इलाहाबाद।*
2. शुक्ल, रामचंद्र, (2010 तृ सं.), हिन्दी साहित्य का इतिहास, *लोकभारती, इलाहाबाद।*

3. सक्सेना, द्वारिकाप्रसाद, (1985-86), हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, *विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।*

4. सिंह, वासुदेव, (1993), हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, *संजय बुक सेंटर, वाराणसी।*

5. नगेन्द्र, (1983), रीति-काव्य की भूमिका, *नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली* ।

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. महाकवि केशव दास का जीवन परिचय देते हुए उनके संपूर्ण साहित्यिक रचना विकास पर विस्तृत निबंध लिखिए।
2. रीतिकालीन कवि एवं आचार्य केशव दास की काव्यगत विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उनका महत्व प्रतिपादित कीजिए।

इकाई 14 घनानन्द - परिचय, पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 रीतिमुक्त कवि घनानन्द
14.3.1 नाम संबंधी विवाद
14.3.2 घनानन्द और सुजानं
14.4 घनानन्द की रचनाएँ
14.4.1 घनानन्द की कविता- संदर्भ सहित व्याख्या
14.5 घनानन्द काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना
14.5.1 घनानन्द की काव्यानुभूति - भावपक्ष
14.5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
1.4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

यह इकाई रीतिकालीन कवि घनानन्द से संबंधित है। पूर्व में आप पढ़ चके हैं कि रीतिकाल में तीन प्रकार की काव्य-रचना होती थी, और इसी आधार पर ये कवि भी तीन प्रकार के थे - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। जो कवि काव्यांगों (रस, अलंकार) के लक्षण उदाहरण लिखने में ही अपनी काव्य शक्ति का उपयोग करते थे वे रीतिबद्ध कवि कहलाते हैं। (चिंतामणि त्रिपाठी, मतिराम,देव,भूषण, पद्माकर आदि) जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थ तो नहीं लिखे परन्तु अपनी रचनाओं के लिए इन ग्रन्थों से प्रेरणा अवश्य लेते रहे उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जाता है (बिहारी, बेनी, कृष्णकवि, रसनिधि, सेनापति आदि) तथा जिन कवियों ने न तो लक्षण ग्रन्थ लिखे और नहीं रीतिकालीन परम्परा व प्रवत्ति से प्रभावित हुए, वरन् स्वतन्त्र रूप से काव्य रचना करते रहे उन्हें रीतिमुक्त कवि कहा गया। घनानन्द ऐसे ही रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि हैं। इस इकाई में आप घनानन्द के जीवन वृत्तांत एवं उनकी काव्य रचनाओं तथा उनके काव्य की विशेषताओं से परिचित होंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई में आपको रीतिमुक्त कवि घनानन्द के जीवन एवं उनके काव्य से परिचित कराया जायगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि के रूप में घनानन्द के महत्व को समझ सकेंगे।
- घनानन्द की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- घनानन्द के काव्य का पाठ कर उसके अर्थ को समझ सकेंगे।
- घनानन्द के काव्य का विश्लेषण कर सकेंगे।

14.3 घनानन्द - परिचय

हिन्दी साहित्य के प्रथम तीन कालों अर्थात् आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल के प्रमुख कवियों के जीवन के विषय में दृढ़ता से कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन सभी कवियों ने अपने विषय में बहुत कम लिखा है। आदिकाल के चंद कवि अथवा नरपति नाल्ह किसी का भी जीवन परिचय पूरा नहीं मिलता। इस काल के पश्चात् यदि भक्तिकाल की ओर दृष्टि डालें तो वहाँ भी निराशा ही होती है। कबीर हो या सूर अथवा तुलसी सभी कवियों ने अपने विषय में इतना कम लिखा है कि वह उन पर पूर्ण प्रभाव डालने में असमर्थ है। इसी प्रकार रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द भी अपवाद नहीं हैं। उनका प्रेमवत्सल हृदय अपने प्रेमी की महिमा का वर्णन करने में ही मस्त रहता था। अब हम घनानन्द के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

14.3.1 नाम सम्बन्धी विवाद

वास्तव में हिन्दी साहित्य में केवल एक ही घनानन्द नहीं हुए, इस नाम के अन्य कवि भी मिलते हैं। इसी से स्वच्छन्द काव्य धारा के घनानन्द के नाम की प्रमाणिकता का प्रश्न सामने आता है। इस विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। घनानन्द, आनन्द घन और आनन्द-इन तीनों नामों में विवाद हैं, कि रीतिकालयुगीन घनानन्द कौन है ?

डा. ग्रियर्सन ने आनन्द को ही रीतिमुक्त काव्यधारा का कवि घनानन्द माना है। उनके मत में 'घन' शब्द आनन्द के साथ नहीं, पर वे 'आनन्द' ही घनानन्द हैं। परन्तु अत्याधुनिक शोध ने यह सिद्ध कर दिया हैं कि 'आनन्द' एक स्वतंत्र कवि थे, जिन्होंने कोक मंजरी की रचना की थी-

''कायस्थ कुल आनन्द कवि वासी कोट हिसार

कोक कला हिरूचि करन जिन यह किये विचार''

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के मत में भी ग्रियर्सन वाले 'आनन्द' घनानन्द नहीं हैं, क्योंकि दोनों के रचनाकाल में लगभग चालीस वर्षों का अन्तर है।

घनानन्द के नाम के संबंध में दूसरा मुख्य विवाद 'आनन्द घन' नाम को लेकर है। 'आनन्द घन' नाम के तीन व्यक्ति मिलते हैं।

1. जैन धर्मी घनानन्द
2. वृन्दावन के आनन्द घन
3. नन्दगॉव के आनन्द घन

श्री क्षितिमोहन सेन ने नवम्बर सन् 1938 में वीणा मैं 'जैन धर्मी आनन्द घन' शीर्षक लेख में वृन्दावन के आनन्द घन और जैन धर्मी आनन्द घन-दोनों एक ही व्यक्ति के नाम होने की सम्भावना प्रकट की है। श्रीमती ज्ञानदेवी ने भी दोनों को एक ही व्यक्ति माना है किन्तु आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक घनानंद और आनन्दघन की भूमिका में इस विवाद को समाप्त करते हुए यह सिद्ध किया है कि जैनधर्मी घनानन्द और वृन्दावन के आनन्दघन दोनों एक व्यक्ति नहीं थे - भिन्न भिन्न व्यक्ति थे क्योंकि दोनो व्यक्तियों के काव्य के रचना काल में समानता नहीं है और न ही उनके काव्य में कोई समानता है। मिश्र जी ने दोनों व्यक्तियों के रचना काल में कम से कम सौ वर्ष का अन्तर माना है। जैन धर्मी घनआनन्द का समय विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है, और वृन्दावनवासी 'आनन्दघन' का समय विक्रम की 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है।

जैनधर्मी 'घनआनन्द' और वृन्दावन के 'आनन्दघन' के पश्चात तीसरा नाम नन्दगॉव के आनन्दघन का आता है। यह चैतन्य महाप्रभु के समसामयिक कवि ठहरते हैं। रीतिमुक्त काव्यधारा के घनानन्द के समय में और नन्दगॉव के आनन्द घन के समय में लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर है। रीतिमुक्त घनानन्द का समय आठ वीं शताब्दी और नन्दगॉव के आनन्दघन का समय की 16 वीं शताब्दी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिमुक्त घनानन्द का समय सन् 1774 से 1796 तक माना हैं। इस प्रकार वृन्दावन के आनन्दघन ही रीतिमुक्त घनानन्द हैं। शुक्ल जी के विचारानुसार यह नादिरशाह के आक्रमण के समय मारे गये। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत भी इनसे मिलता है कवि का मूल नाम आनन्दघन ही रहा होगा, परन्तु छन्दात्मक लय विधान इत्यादि के कारण यह स्वयं ही आनन्दघन से घनानन्द हो गया। हिन्दी साहित्य में यह अपवाद नहीं, क्योंकि सूरदास के भी सूर, सूरजदास, सूरजश्याम और सूरज आदि नाम मिलते हैं।

जन्म तिथि व जन्मस्थान - घनानन्द के जीवन के लगभग सभी महत्वपूर्ण तथ्य विवादास्पद हैं नाम, जन्म स्थान, रचनाएँ, जन्मतिथि आदि। इनकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में भी विद्वानों के बीच मतभेद हैं। लाला भगवानदीन के अनुसार घनानन्द का जन्म संवत् 1715 को हुआ, परन्तु शुक्ल जी ने इस संवत् को न मानकर संवत् 1746 में इनका जन्म माना है। इसी प्रकार अन्य आलोचकों ने इनकी जन्मतिथि के विषय में अलग-अलग मत दिये है विभिन्न विद्वानों के मतों की आलोचना करने के पश्चात डा. मनोहर लाल गौड़ ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द और स्वच्छन्द काव्यधारा' में लिखा है- 'संम्वत् 1730 में इनका जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय 26 या 27 वर्ष के ये होते हैं। जो इनके दीक्षा वृत्त को देखकर ठीक प्रतीत होता है।'

जन्म तिथि की ही भाँति घनानन्द के जन्म स्थान का विषय भी विवाद का विषय है। कुछ आलोचक उन्हें हिसार निवासी मानते हैं, तो अन्य उन्हें बुलन्दशहर का मानते हैं। अधिकांश विद्वान घनानन्द का जन्म दिल्ली और उसके आसपास का होना मानते हैं। जगन्नाथ दास रत्नाकर ने इन्हें बुलन्दशहर का निवासी माना है श्री बहुगुणा के विचार में यह कोट-हिसार के रहने वाले थे। घनानन्द के काव्य में कहीं भी इसका संकेत नहीं मिलता कि वह कहाँ के रहने वाले थे। यह भटनागर कायस्थ थे और दिल्ली छोड़कर वृन्दावन चले गये थे इस बात को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। इन्होंने अपने काव्य में ब्रज और वृन्दावन का वर्णन सजीवता के साथ किया है, उसे पढ़कर यह अवश्य लगता है कि इनका अधिकांश जीवन यहीं बीता अन्यथा उनके काव्य में (ब्रज संस्कृति) इतना सुन्दर ब्रज का चित्रण नहीं मिलता हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सुजान के प्रेम में धोखा खाकर ये वृन्दावन चले गये होंगे।

14.3.2 घनानन्द और सुजान

घनानन्द के जीवन की सबसे प्रसिद्ध घटना जिसका उल्लेख प्रायः सभी विद्वानों ने किया है, इस प्रकार है-घनानन्द दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रँगीले के 'खास-कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे। मुहम्मद शाह के दरबार की सुजान नाम की वैश्या से वे जी जान से प्रेम करते थे। सुजान की इन पर अनुरक्ति और दूसरी और बादशाह के खास कलम इन दोनों बातों के कारण दरबारी इनसे ईर्ष्या करते थे। उन्होंने इन्हें राज्य से निष्कासित करने का षड्यन्त्र रचा। एक दिन दरबार में उन सबने बादशाह से घनानन्द की गान कला की प्रशंसा की। मुहम्मद शाह ने घनानन्द से गाने को कहा पर घनानन्द ने विनम्रता पूर्वक गाना सुनाने में अपनी असमर्थता व्यक्त की, इस पर उन षड्यन्त्रकारियों ने कहा कि यदि सुजान को बुलाया जाय और वह घनानन्द से

गाने का अनुरोध करे तो वे अवश्य गायेंगे। सुजान बुलाई गई और घनानन्द ने सचमुच सुजान की ओर मुँह करके गाना सुनाया। गाने ने सभी को मन्त्रमुग्ध कर दिया, किन्तु गाने के प्रभाव से मुक्त होने पर बादशाह अत्यधिक नाराज हुआ क्योंकि एक तो घनानन्द ने राजा की आज्ञा की अपेक्षा सुजान के अनुरोध को महत्व दिया दूसरे राजा की ओर पीठ व सुजान की ओर मुँह करके गाना सुनाया इस बेअदबी को बादशाह सहन न कर सका और उसने घनानन्द को देश निकाला दे दिया कहते हैं कि राज्य छोड़ते समय ये सुजान के पास गये। और उससे साथ चलने को कहा परन्तु उसने अपने जातीय गुणों की रक्षा की और साथ चलने से इन्कार कर दिया। वे खिन्न और विरक्त भाव से राज्य छोड़कर चल दिये और वृन्दावन पहुँचकर उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। अधिकांश विद्वानों ने घनानन्द का सुजान से प्रेम, बादशाह रँगीले द्वारा देश निकाला और सुजान के तिरस्कार को सत्य माना है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि घनानन्द के जीवन का अन्तिम समय वृन्दावन में बीता।

मृत्यु - घनानन्द की मृत्यु की तिथि भी उनकी जन्म तिथि के समान ही विवादास्पद है इस संबंध में विश्वनाथ प्रसाद के निष्कर्ष मान्य हैं। अन्य आलोचकों ने माना है कि घनानन्द की मृत्यु नादिर शाह के आक्रमण के समय हुई थी। परन्तु विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी के मत से उनकी मृत्यु नादिर शाह के आक्रमण के समय न होकर अहमद शाह अब्दाली के मथुरा पर किये गये द्वितीय आक्रमण के समय संवत् 1817 (सन् 1679) में हुई थी। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार सन् 1796 में नादिरशाह ने मथुरा पर नहीं, दिल्ली पर आक्रमण किया था, जबकि अहमदशाह अब्दाली ने मथुरा पर पहला आक्रमण सन् 1893 में और दूसरा आक्रमण सन् 1897 में किया था, इन दोनों आक्रमणों का वर्णन वृन्दावन दास कृत 'हरिकला' बेलि में मिलता है-

''ठारह सै सत्रहहौं वर्ष गत् जानियै।
साढ़ वदी हरिबासर बेल बखानियै''

घनानन्द की अभिलाषा थी कि वे ब्रज में लोटते हुए अपने प्राण दें और उनकी यह इच्छा पूरी हुई।

घनानन्द का सम्प्रदाय - घनानन्द के काव्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि वे निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनके ग्रन्थ परमहंस-वंशावली में उन्होंने अपने शुरू की परम्परा का वर्णन किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय में प्रेम-लक्षण अनुरागात्मिकता परमभक्ति को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। घनानन्द की भक्ति पर इस सम्प्रदाय की अर्थात गोपी या सखी भाव की पूर्ण छाया परिलक्षित होती है इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घनानन्द अपनी भक्ति साधना की चरम सीमा तक पहुँच गये थे। श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द ग्रंथावली' की भूमिका में एक स्थान पर कहा है- ''प्रेम साधना का अत्यधिक पथ पार कर वे बड़े-बड़े साधकों, सिंद्धों को पीछे छोड़कर 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गये थे। अतः सम्प्रदाय में उनका सखी भाव का नामकरण हो गया था'' निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा लेने पर भक्त को 'सखी नाम' लेना पड़ता है। अतः घनानन्द का भी सखी नाम रखा गया और वह नाम था 'बहुगुनी' घनानन्द के साहित्य में

कई कृतियों में इस नाम का उल्लेख मिलता है, जहाँ कवि ने घनानन्द के स्थान पर 'बहुगुनी' नाम से लिखा है।

''नीको नांव बहुगुनी नाम मेरो। बरसाने ही सुन्दर खेरो।।
राधा नांव बहुगुनी राखो। सोई अरथ हिये अभिलाख्यो''।।

14.4 घनानन्द की रचनाएँ

घनानन्द की विलुप्त और बिखरी हुई रचनाओं को समेटने का प्रयत्न भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सुंदरी तिलक' नाम से किया। इसके बाद सन् 1870 ई. में 'सुजान शतक' नाम से 119 कवित्त सामने आए। 1897 ई. में जगन्नाथदास रत्नाकर ने सुजान सागर निकाला। सन् 1907 में काशी प्रसाद जायसवाल ने 'वियोग बेलि', 'विरह लीला' का प्रकाशन किया। इसी क्रम में 'घनानन्द रत्नावली' का प्रयाग से प्रकाशन हुआ। 1943 में शम्भु प्रसाद बहुगुणा ने 'घनाआनन्द' नाम से पुस्तक प्रकाशित की। किन्तु इन सभी रचनाओं का वैज्ञानिक दृष्टि से संपादन विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया। इनका पहला संग्रह 'घनानंद कवित्त' (505 पद्य) नाम से आया। इनका दूसरा संग्रह 'सुजान हित' प्रबन्ध 701 कवित्त सवैया छंदों का आया। अंततः मिश्र जी ने 'घनआनंद ग्रंथावली' को 1952 में संपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया। इसमें ''प्रेम सरोवर,'' ''प्रेम पहेली,'' ''ब्रज वर्णन'' तथा 'सुजान हित' को समाहित किया गया। अब इस ग्रन्थावली में 1068 पद हैं इधर ''वृन्दावन मुद्रा'' ''प्रेम पत्रिका'' तथा ''प्रकीर्णन'' और आए हैं। तथा अन्य रचनाओं का अनुसंधान कार्य जारी है। अब ये काव्य छंद 4108 तक उपलब्ध हो गए हैं। घनानन्द ग्रन्थावली में संकलित कृतियों के नाम इस प्रकार हैं-

1. सुजान हित
2. कृपाकंद
3. वियोग बेलि
4. इश्कलता
5. यमुना यश
6. प्रीति पावस
7. प्रेम पत्रिका
8. प्रेम सरोवर
9. ब्रज विलास
10. सरस बसंत
11. अनुभव चंद्रिका
12. रंग बधाई
13. प्रेम पद्धति
14. वृष भानुपुर सुषमा वर्णन

15. गोकुल गीत
16. नाम माधुरी
17. गिरि पूजन
18. विचार सार
19. दान घटा
20. भावना प्रकाश
21. कृष्ण कौमुदी
22. धाम चमत्कार
23. प्रिया प्रसाद
24. वृंदावन मुद्रा
25. ब्रज स्वरूप
26. गोकुल चरित्र
27. प्रेम पहेली
28. रसना यश
29. गोकुल विनोद
30. ब्रज प्रसाद
31. मुरलिका मोद
32. मनोरथ मंजरी
33. छन्दाष्टक
34. त्रिभंगी
35. परम हंस वंशावली
36. ब्रज व्यवहार
37. गिरि गाथा
38. पदावली
39. प्रकीर्णक (स्फुट)

14.4.1 संदर्भ सहित व्याख्या

अब हम घनानन्द के कुछ पदों की संदर्भ सहित व्याख्या करेंगे। इससे आपको घनानन्द के काव्य की व्याख्या करने में मदद मिलेगी।

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हँसि बोलन मैं छवि-फूलन की, वर्षा उर ऊपर जाति ह्वै ।।
लटलोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि द्वैं।
अंग-अंग तरंग उठैं दुति की, परिहै मनो रूप अबै धर च्वै।।

संदर्भः- घनानन्द द्वारा रचित यह सवैया विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित 'घनानन्द कवित्त' पुस्तक से लिया गया है इस सवैये मैं कवि ने अपनी प्रिया 'सुजान' के रूप सौन्दर्य का स्वानुभूत वर्णन किया है।

प्रसंगः- सुजान के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

व्याख्या-नायिका का अत्यन्त सुन्दर गौर मुख चमक रहा है और उस पर कानों तक फैले हुए प्रेमोन्मत नेत्र सुशोभित हो रहे हैं; जब वह हँसकर बोलती है तो ऐसा लगता है मानो उसके उसके वक्षस्थल पर शोभा के फूलों की वर्षा हो रही है; कपोलों पर चंचल लटें हिलती हुई क्रीड़ा कर रही हैं और सुन्दर कंठ में दो लर की मोतियों की माला शोभा दे रही है; उसके अंग-प्रत्यंग की कान्ति से शोभा की लहरें-सी उठ रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो अभी पृथ्वी पर रूप चू पड़ेगा।

विशेषः-

(1) आलम्बन-विभाव का मोहक रूप-चित्रण हुआ है।
(2) प्रथम पंक्ति में 'छके' की शब्द में व्यंजना का चमत्कार दर्शनीय है। नेत्रों में प्रेम की खुमारी की परिपूर्णता को व्यंजित करने के लिये ही इसका प्रयोग हुआ है।
(3) तृतीय पंक्ति में 'क' तथा 'ल' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रास है।
(4) 'अंग-अंग (चतुर्थ पंक्ति) में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार और 'परिहै मनौ च्वै' में उत्प्रेक्षा अलंकार स्पष्ट है।
(5) भाषा का माधुर्य और लालित्य भी सुकोमल सौन्दर्य-चित्रण के अनुरूप ही है।

छवि कौ सदन, मोदमंि त बदन-चन्द,
तृषित चखनि लाल, कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेख करे, मटकीली भाँति सों ही,
मुरली अधर धरैं लटकत आयहौं।।
लोचन ुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह,
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौं।
बिरह-जगत जिय जानि, आनि प्रान प्यारे,
कृपानिधि, आनंद को धन बरसायहौं।।

सन्दर्भः-विरहिणी नायिका अपने प्रियतम की रूप-माधुरी का स्मरण कर व्याकुल हो रही है और पुनः उसके दर्शन की लालसा से विवश होकर विनय कर रही है।

व्याख्याः- हे प्रियतम ! तुम अपने प्रफुल्ल, शोभा के भण्डार चन्द्रमा रूपी मुख को न जाने कब तक मेरे इन प्यासे नेत्रों को दिखलाओगे और न जाने कब भड़कीला वेश धारणकर नाज-नखरों-

सहित ढंग से अधरों पर बाँसुरी बजाते मस्ती से झूमते हुए आओगे, तथा नेत्रों को चलाते हुए मन्द-मन्द मुस्कराहट के साथ, चंचलता पूर्वक स्नेह-सिक्त बातें करोगे न जाने कब तक हे कृपा के सागर, प्राण-प्रिय ! हृदय में मुझे विरहाग्नि से दग्ध होता हुआ जानकर, प्रेमानन्द की वर्षा कर प्राण-दान दोगे ?

विशेष:-

(1) विरह की दस काम-दशाओं में से 'स्मृति' तथा 'अभिलाषा' का मार्मिक चित्रण हुआ है।
(2) 'तृषित चखनि' (द्वितीय पंक्ति) में लक्षणा-मूला-शब्दी-व्यंजना है।
(3) 'मृदु मुस्क्यानि' (पंचम पंक्ति) में छेकानुप्रास और 'जरत जिय' जानि (सप्तम पंक्ति) में वृत्यानुप्रास दर्शनीय है।
(4) अन्तिम पंक्ति में 'कृपानिधि' लाल (कृष्ण) का साभिप्राय-विशेषण होने से परिकर अलंकार है।
(5) 'बदन चन्द्र' (प्रथम पंक्ति) में उपमेय पर उपमान (चन्द्र) का आरोप होने से रूपक अलंकार है।
(6) 'जानि-आनि' (सप्तम पंक्ति) में सुन्दर पद-मैत्री है।

भोर तैं साँझ लौं कानन-ओर निहारिति बाबरी नैक न हारति।
साँझ तैं भोर तारिन ताकिबौ तारनि सों कतार न टारति।।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनन्द आँसुनि औसर गारति।
मोहन सोंहन जोहिन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति।।

सन्दर्भ:-इस सवैया में विरहिणी-नायिका की मनः स्थिति का बड़ा ही यथार्थ आकलन किया गया है।

व्याख्या:-वह बावली विरहिणी-नायिका प्रातःकाल से सायंकाल तक जंगल की ओर ही देखती रहती है और तनिक भी नहीं थकती, संध्या से प्रातःकाल तक वह अपनी आँखों से इकटक निहारती हुई ही वह सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत करती (अर्थात् तारों को इकटक निहारती हुई वह सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत करती है); और यदि कहीं प्रिय दिखाई पड़ जाता है तो निरन्तर अश्रुप्रवाह के कारण उसके दर्शन-लाभ के सुअवसर को भी वह खो देती हैं; इस प्रकार उस विरहिणी के आँखों के हदय में प्रियतम को सदैव समक्ष देखने की लालसा बनी ही रहती है।

विशेष:-

(1) प्रिय-मिलन की आशा में प्रतीक्षा के क्षण कष्ट सहकर भी कितने मधुर होते हैं, इस मनोवैज्ञानिक-सत्य का उद्घाटन प्रथम दो चरणों में बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से किया गया है।
(2) 'आँखिन के उर' में व्यंजना का चमत्कार दर्शनीय है।
(3) 'निहारति-हारति' (प्रथम पंक्ति) में सभंग पद यमक है।

(4) द्वितीय चरण में 'तारनि' में यमक अलंकार है - तारनि (प्रथम) तारागण; तारनि (द्वितीय) पुतलियाँ।

पाप के पुंज सकेलि सु कोन धौं आन घरी मैं बिरंचि बनाई।
रूप की लोभनि रीझि भिजाय कै हाय ते पै सुजान मिलाई।।
क्यों धनआनन्द धीर धरै बिन पाँख निगोड़ी मरै अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखहाई।

सन्दर्भः-इस सवैया में स्नेही-कवि प्रिय सुजान के रूप-दर्शन के अभाव में अपने नेत्रों की अवस्था का वर्णन करता हुआ कह रहा है-

व्याख्याः- न जाने कौनसी अशुभ घड़ी में, संपूर्ण पापों के समूह को एकत्र करके विधाता ने मेरे इन नेत्रों की रचना की है; इतना ही नहीं बल्कि रूप के लोभी इन नेत्रों को प्रेम के रंग में भिगोने के उपरान्त भी सुजान की आँखों से मिला दिया है; फिर भला किस प्रकार से धैर्य धारणा करें, प्रिय सुजान के सहारे के बिना अथवा उन तक पहुँचने के आधार पंखों के अभाव में ये अभागे नेत्र विवशता में अकुलाकर मरे जा रहे हैं; इस प्रकार दुःख के मारे ये नेत्र प्रिय-दर्शन के प्यासे आँसुओं से भरे हुए, प्रिय सुजान का मुख देखने के लिए तड़पते हुए बरसते रहते हैं।

विशेषः-

(1) नेत्रों की नैसर्गिकता के प्रति विरही-कवि की खीझ बड़ी मार्मिक बन पड़ी है।
(2) 'विरंचि बनाई' (प्रथम पंक्ति); 'धीर धरै' (तृतीय पंक्ति) में 'ब' तथा 'ध' वर्णों की क्रमशः दो बार आवृति होने से छेकानुप्रास अलंकार स्पष्ट है।
(3) 'पाँख' (तृतीय पंक्ति) में श्लेष अलंकार है- सहारा; पंख
(4) 'प्यास-भरी' बरसै' में विरोधाभास अलंकार है।

अभ्यास प्रश्न -1

निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

क) रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द के जीवन के लगभग सभी तथ्य विवादग्रस्त हैं ( )
ख) हिन्दी साहित्य में घनानन्द नाम के कवि केवल एक है।( )
ग) घनानन्द कवि का सम्बन्ध वल्लभ सम्प्रदाय से था। ( )
घ) घनानन्द का अन्तिम समय वृन्दावन में व्यतीत हुआ। ( )

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

क) डा. ग्रियर्सन के मत में .....ही रीतिमुक्त काव्य धारा के कवि घनानन्द हैं।
ख) लाला भगवानदीन ने घनानन्द के जन्म की तिथि.....मानी है।
ग) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार घनानन्द की मृत्यु .....के मथुरा आक्रमण के समय हुई।
घ) घनानन्द की कई कृतियों में उनके.....नाम उल्लेख मिलता है।

2. घनानन्द के सम्प्रदाय पर टिप्पणी लिखिए (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए)

अभ्यास प्रश्न - 2

निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

क) रामचन्द्र शुक्ल ने घनानन्द की बिखरी और विलुप्त सामग्री को समेटने का प्रयत्न किया। ( )
ख) घनानन्द के पहले काव्य संग्रह 'घनानंद कवित्त ' में 505 पद हैं ( )
ग) वियोग बेलि और इश्क लता घनानन्द की ही रचनाएँ हैं। ( )
घ) घनानन्द रत्नावली का प्रकाशन वाराणसी से हुआ। ( )

(2) निम्नलिखित पंक्तियों में अर्थालंकार पहचानिये ?

(क) ''एरे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन, बीरी
तो सो और कौन मनै ढरकौंहीं बानि है।''
(ख) ''तब हार पहार से लागत हैं; अब आनि के बीच पहार परे''

(3) निम्नांकित पंक्तियों के अर्थ बताइये।
(क) ''रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै''।
(ख) अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नैकु सयानपन बाँक नहीं ।

14.5 घनानन्द काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना

घनानन्द मूलतः अति संवेदनशील प्रेम के कवि हैं अतः उनके काव्य का आधार और भावपक्ष प्रेम ही है। किंतु यह प्रेम रीतिकाल के रीतिसिद्व और रीतिबद्ध परम्परा वाला चमत्कारिक और कृत्रिम प्रेम नहीं है। सबसे पहले हम घनानन्द काव्य का भावपक्ष अथवा उनकी काव्यनुभूति का विश्लेषण करेंगे।

14.5.1 घनानन्द की काव्यनुभूति अथवा भावपक्ष -

घनानन्द अति संवेदनशील प्रेम कवि है अतः उनके काव्य का आधार प्रेम ही है। घनानन्द का प्रेम स्वानुभूत, स्वाभाविक और रूढ़ियों से मुक्त स्वच्छन्द प्रेम है,

जिसका आधार, जैसा कि आप जानते है कि कई विद्वानों ने उनकी प्रेमिका सुजान को माना है। स्वच्छन्द प्रेम होते हुए भी घनानन्द के प्रेम वर्णन में अश्लीलता नहीं है। उनका प्रेम विरह प्रधान है। विरह में ही घनानन्द प्रेम की गहन अनुभूतियों को अनुभव करते हैं। प्रेम के अतिरिक्त घनानन्द ने कुछ भक्तिपरक रचनाएँ भी की हैं - जिनकी चर्चा भी हम करेंगे।

घनानन्द की प्रेमाभिव्यंजना - हिन्दी साहित्य काव्य परम्परा में शायद ही कोई घनानन्द सा प्रेमी कवि हुआ होगा। वैसे आप जायसी की नागमती, मीरा की विरहाकुलता और सूर की वियुक्ता गोपियाँ से भली भाँति परिचित हैं लेकिन घनानन्द का दर्द, वेदना की तीव्रता और तड़प, प्रेम जगत में उन्हें सर्वोच्च पद पर आसीन करती है। घनानंद का स्वच्छन्द प्रेम शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति खुला विद्रोह करता दिखाई देता है। यह प्रेम लौकिक रीति से शुरू होकर राधा कृष्ण के भक्ति रस तक विस्तार पाता है। प्रेम में मिले विरह ने घनानंद को नया भाव लोक प्रदान किया। आचार्य शुक्ल लिखते हैं-''विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता तथा माधुर्य भी अपूर्व ही है। ये वियोग श्रृगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम की पीर लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबादानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ'' (हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं. 320)। प्रेमी घनानंद सुजान (प्रेमिका) तथा सुजान (राधा कृष्ण) बराबर पुकारते रहे। अपनी प्रेमिका के नाम को उन्होंने कृष्ण में मिला दिया। भक्ति की तो भी सुजान के नाम से भले ही आलम्बन बदल गया हो। अब तक आप समझ चुके होंगें कि लौकिक अर्थ में सुजान प्रेमिका के लिए और भक्ति भाव में सुजान राधा कृष्ण के लिए प्रतीक रूप में आया है। कारण यह चातक भाव का प्रेम है।

आप इस बात से अवगत हैं कि घनानंद सुजान नाम की वेश्या के प्रेम में बँधे हुए थे उसके प्रेम ने ही उन्हें प्रेम की समस्त अवस्थाओं में से गुजरने का अससर प्रदान किया। प्रेयसी सुजान का नाम ही उनकी कविता में प्रेम रसायन का सार है। यह नाम उनके चेतन-अवचेतन मन में इस प्रकार बस गया कि किसी भी स्थिति में छूटने का नाम नहीं लेता। घनानंद में प्रेम का भावपक्ष पूरी तरह मौजूद है लेकिन विभाव पक्ष का चित्रण कम है। उनके प्रेम वर्णन में प्रधानता बाहरी व्यापारों या चेष्टाओं की नहीं है हृदय के उल्लास और लीनता की ही है। प्रेम के विषय में घनानंद ने जो धारणा अभिव्यक्त की है उसके अनुसार प्रेम का मार्ग बहुत सीधा और सरल होता है, इसमें चालाकी, चतुराई और लोभ की जगह नहीं होती।

'' अति सूधो सनेह को मारग है, जहाँ नैकु सयानपन बाँक नहीं
तहे साँधे चलैं तजि आपनपौ झिझकै कपटी जें निसाँक नहीं
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरौ आँक नहीं
तुम कौन धौ, पाटी प` हो लला मन लेंहु पै देहु छटाँक नहीं

घनानन्द द्वारा चालाकी या सयानेपन की निंदा और सरलता एवं सहजता की प्रशंसा से यही सिद्ध होता है कि घनानन्द प्रेम की सहजता और सात्विकता में विश्वास करते हैं। घनानन्द के प्रेम निरूपण से सिद्ध होता है कि उनका प्रेम एकपक्षीय है, प्रतिदान की कामना उसमें नहीं है।

प्रेम का संयोग पक्ष - घनानन्द के काव्य में सर्वत्र प्रेम का साम्राज्य है। जब तक सुजान का साथ उनके भाग्य था उन्होंने उसे आनन्दपूर्वक भोगा और सराहा परन्तु भाग्य ने अधिक समय तक उनका साथ नहीं दिया। सुजान उनसे वियुक्त हो गई परन्तु उसकी स्मृति की तीव्रता ने मानसिक रूप से उन्हें सुजान के समीप ही रखा। घनानन्द के काव्य पर दृष्टिपात करें तो उसमें संयोग सम्बन्धी कवित्तों की संख्या वियोग की तुलना में अत्यन्त अल्प है लेकिन इस अल्प सुख का उन्होंने अत्यन्त खुले रूप में चित्रण किया है घनानन्द ने संयोग के वर्णनों मे रीझ, उत्सुक्ता, लालच, रोम-रोम का आनन्द से भरना, तथा अंग-प्रत्यंग से प्रसन्नता फूटना, संयोग के समय शताधिक भावनाओं का तीव्र गति से आना प्रेमी का अपने शरीर पर से शासन उठ जाना आदि बातों का कितना सजीव चित्रण किया है -

ललित उमंग बेलि आल बाल अन्तर ते।
आनन्द के धन सींची रोम-रोम है चढ़ी।
आगम- उमाह चाह छायौ सु उछाह रंग।
अंग-अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
बोलत बधाई दौरि-दौरि छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नोकें न है पढ़ी।''

प्रेम का वियोग पक्ष - घनानन्द के विरह वर्णन के संबंध में आचार्य शुक्ल लिखते हैं - ''यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर ही इनकी दृष्टि अधिक है। इसी से इनके वियोग सम्बन्धी पद प्रसिद्ध है। वियोग वर्णन भी अधिकतर अन्तवृत्ति निरूपक है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह ताप को बिहारी माप से मापा है, न बाहरी उछल कूद दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर है - बाहर से वह वियोग प्रशान्त और गम्भीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह से तपना है, न उछल-उछल कर भागना है'' घानानन्द के विरह वर्णन के संबंध में विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न विचार दिये हैं, परन्तु एक बात सभी में समान रूप से मिलती है और वह है घनानन्द में 'प्रेम की पीर'। सभी ने इनकी 'पीर' को विलक्षण माना है और उससे अधिक पीर की अभिव्यक्ति।

घनआनन्द के विरह-वर्णन के संबध में जितना कहा जाय वह कम है, क्योंकि इस 'प्रेम की पीर' के कवि ने अगर कुछ लिखा है तो वह 'विरह' है। यह विरह इतना गम्भीर है, अथाह है कि उसकी थाह पाने के लिए -

''समुझै कविता घनआनन्द की,
हिय आंखिन नेही की पीर तकी''

की आवश्यकता है। और इसे तो कोई रसिक ही समझ सकता है जिसने प्रेम की पीड़ा को हृदय की आँखों से साकार देखा है।

रूप सौन्दर्य का वर्णन - रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानन्द वास्तव में रूप सौन्दर्य के कवि है। अपनी प्रेमिका के रूप-सौन्दर्य पर वे इतने आसक्त थे कि उसे देखते हुए वे कभी तृप्त नहीं होते थे। घनानन्द ने सुजान के रूप का वर्णन परम्परागत चमत्कारिक ढंग से या रीतिकाल के अन्य कवियों की तरह लक्षण ग्रन्थों के आधार पर नहीं किया है, बल्कि 'सुजान' कवि को जिस जिस रूप में आकर्षित करती रही उन्हीं रूप छवियों के वर्णन की ओर घनानन्द प्रवृत्त हुए। घनानन्द के रूप सौन्दर्य वर्णन में मांसलता है, सूक्ष्मता है, नयी भावनाओं एवं कल्पनाओं का योग है। बाहय रूप सौन्दर्य के साथ-साथ घनानन्द ने सुजान के भीतरी मानसिक सौन्दर्य का भी चित्रण किया है। निम्नलिखित पद में उन्होंने सुजान के रूप सौन्दर्य का वर्णन अनुभूति की सजगता के साथ, अत्यन्त सादगी से किया है -

''सोभा बरसीली सुभ सों लसीली
सु रसीली हंसि हेरैं बिरह-तपति है।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि में
देखी पैज-पूरी, प्रीति-नीति को थपति है।
जाके गुन बंधे मन छूटे और ठौरनि तें
सहज मिठास लीजै स्वादनि सपति है।
पानिप उपार घनाआनंद उकति ओछी
जतन जुगति जोन्ह कौन बपै नपति है''

इस छंद से आपको यह बात स्पष्ट हो चुकी होगी कि घनानन्द ने स्वानुभूत रूप सौन्दर्य का ही वर्णन किया हैं न कि रीति कवियों की तरह चमत्कारिक रूप का।

घनानन्द की भक्ति भावना - आप इस तथ्य से अवगत हो चुके हैं कि घनानन्द पूर्ण रूप से प्रेम के ही कवि हैं, किन्तु जीवन के उत्तरार्ध में वे राधाकृष्ण के प्रति भक्ति भाव रखकर भक्तिपरक रचनाएँ करने लगे। सुजान द्वारा ठुकराये जाने पर उन्होंने लौकिक जीवन से मानसिक रूप से अपना नाता तोड़कर श्रीकृष्ण से नाता जोड़ लिया। एक पद में भौतिक स्नेह, ऐश्वर्य और धन की घोर निंदा करते हुए अपनी वैराग्य भावना का परिचय देते हुए वह कहते हैं।

''देह सौ स्नेह सो तौ हवै खेह-खिन ही मैं,
नाते सब होते परि रहै गौ नहीं रे नाम।''

राधाकृष्ण के प्रति अपनी असीम भक्ति, गहन आस्था श्रद्धा व अटूट विश्वास प्रकट करते हुए वे लिखते हैं-

''राधा रमन की बलि जाऊँ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रहि दुरम बेलि।
महा अनुपम रुप में शोभा लहलहानि रस झेलि।
आपु बन धन आपु तन मन है रहत निसि भोर''

घनानन्द ने सूफी भाव की इस मान्यता को तो अस्वीकार किया है कि आत्मा पुरूष और परमात्मा स्त्री है। किन्तु आत्मा की तड़त, बेचैनी, व्यग्रता, अंतस की टीस आदि सूफी काव्यधारा की विरहगत स्थितियों को उन्होंने स्वीकार किया है। 'वियोगबेलि' और 'इश्क लता' में यह फारसी प्रभाव कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाता है। घनानन्द ने जो स्वच्छन्दता प्रेम के क्षेत्र में दिखाई वही स्वछन्दता भक्ति के क्षेत्र में भी दिखाई अतः उनके प्रेम और भक्ति को किसी भी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

14.5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार -

अभिव्यंजना, पक्ष में हम घनानन्द की काव्यभाषा पर विचार करेंगे। आप देखेंगे की घनानन्द की काव्यभाषा में मधुरता, ध्वन्यार्थकता वक्रता और व्यंजकता आदि गुण विद्यमान हैं। घनानन्द ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग काव्य का उत्कर्ष बढ़ाने के लिए किया है न कि उसमें चमत्कार लाने के लिए। जहाँ तक छंद का प्रश्न है - घनानन्द ने कवित्त और सवैया इन दो छंदो का ही प्रयोग अपने काव्य में किया है।

काव्य भाषा - काव्य शिल्प की दृष्टि से यदि घनानन्द के काव्य का आकलन किया जाय तो सर्वप्रथम दृष्टि भाषा पर जाती है। रीतियुग ब्रजभाषा के परिमार्जन का युग रहा इस समय ब्रजभाषा की कलात्मकता अपेक्षाकृत अधिक हो गई थी। घनानन्द को विरासत में विकसित भाषा मिली। अतः उन्होंने पूर्ण साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया। उनकी भाषा की आलोचना करते हुए द्वारिका प्रसाद सक्सेना लिखते हैं - ''घनानन्द ने बड़ी स्वच्छता और सुन्दरता के साथ ब्रजभाषा का प्रयोग किया है, उसके एक एक शब्द की स्थापना की है और उसे अपने अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति के लिए गति प्रदान की है। ब्रजभाषा पर ऐसा अधिकार अन्य किसी हिन्दी कवि का नहीं दिखाई देता''

घनानन्द की भाषा का स्वरूप साहित्यिक होते हुए भी ठेठ ब्रजभाषा के शब्दों से युक्त है। औटपाय (उपद्रव) आवस (भाप) औंड (गहरी) सल (पता) सहारि (सहारे से) तेह (क्रोध) दुहेली (दुःखपूर्ण) आवरो (व्याकुल) न्यार (चारा) सौंज (सामग्री) भाभक (ज्वाला) हेली (खेल करने वाले) भोयौ (भीगा हुआ) गुरझिन (गाँठ) इत्यादि ब्रजभाषा के ठेठ शब्दों से उनकी काव्यभाषा अत्यन्त समृद्ध हो उठी है।

ब्रजभाषा के ठेठ रूप के साथ ही घनानन्द ने नये और अप्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे - गादरौं (शिथिल) अंगेट, सौनि (कुंदन का लाल वर्ण) विरचैं (विमुख होना) हटतार (एकटक देखना) चाड़ (उत्कण्ठा) उखलि (अपरिचित) मरक (सिंचाव) तपै (तपना) सवादिली (स्वादिष्ट) निरौठी (मस्त) आदि। भाषा प्रवीण घनानन्द ने तत्सम शब्दों का भी खूब प्रयोग किया हैं - मीन, पंकज, खंजन, प्राण, विष, कुंज, कुरंग, मलय, अर्क। संस्कृत शब्दों की संख्या तद्भव शब्दों से अपेक्षाकृत कम है। घनानन्द ने अपने काव्य में सर्वाधिक प्रयोग तद्भव शब्दों का किया हैं। कुछ शब्द इस प्रकार हैं - जतन, निति, कटाच्छ, ईछन-तीछन, निसान, मूरत, मसाल, दसनि, पाती, बिसासी इत्यादि। अरबी फारसी के शब्दों को देखा जाय तो उनकी संख्या

भी कम नहीं है जैसे - यार, हुस्न, चस्का, दिलदार, मजनूँ, आशिक, इश्क, बेदरद, कहर, इश्कमजाजी, नशा, तकसीर, तकदीर, तदबीर, आदि शब्द विशेष उल्लेखनीय है। तत्सम, तद्भव, ब्रजभाषा के ठेठ रूप और अप्रचलित शब्दों तथा अरबी-फारसी भाषा के चुने हुए शब्दों से जहाँ घनानन्द ने अपनी भाषा को समृद्ध किया, वहीं उनकी काव्यभाषा पंजाबी शब्द-समूह को भी अपने में समाहित किये है। जैसे - लैंदा, सोहणाँ, गल्ला, जिंन्द, नाल, कीता, जाणदा, हुण, तैनु-वेखाँ, कित्थे, लग्या आदि।

छंद एवं अलंकार - रीतिकाल छंदबद्ध कविता का काल था। घनानन्द कवि होने के साथ-साथ अच्छे संगीतकार एवं गायक भी थें। अतः उनकी रचनाएँ छंद विधान में पूरी तरह आबद्ध हैं। घनानन्द ने श्रृंगार और प्रेम के काव्य को ध्यान में रखकर ही कवित्त और सवैया छंदों का प्रयोग किया है। डा. मनोहर लाल गौड के शब्दों में '' आनन्दघन के सवैये अधिक संख्या में ऐसे ही हैं जो अत्यन्त कोमल शब्दावली में लिखे गये हैं और जिनमें संगीत की मधुर गूंज उत्पन्न होती है'' इन दो छन्दों के अतिरिक्त घनानन्द ने जिन अन्य छन्दों का प्रयोग किया है वे हैं - सुमेरू, त्रिलोकी, ताटंक, निसानी, शोभन, त्रिभंगी, प्रबन्ध काव्य में दोहे-चौपाई का भी प्रयोग किया है।

अलंकार की दृष्टि से यदि घनानन्द के काव्य का विवेचन विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होता है कि उन्होंने लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग किया है परन्तु अलंकार उनके काव्य में भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। कहीं पर भी चमत्कार प्रदर्शन के लिए अलंकारों की योजना नहीं की गई है/घनानन्द के काव्य में जो अलंकार आये हैं - वे उनके काव्य को अधिक स्पष्टता और गहराई के साथ प्रस्तुत करने में ही सहायक हैं। इस बारे में स्वयं घनानन्द का कथन है - ''लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत'' अर्थात जहाँ बाकी कवि (रीतिमार्गी) जी तोड़ कोशिश करके काव्य शास्त्र के नियमों का सहारा लेकर अलंकारों से सुसज्जित कर काव्य बनाने में लगे रहते हैं - वहाँ मैं तो कुछ भी नहीं करता-मेरे कवित्त मुझे बनाने हैं। अर्थात जो मैं जैसा अनुभव करता हूँ उसे वैसे ही अभिव्यक्त कर देता हूँ वास्तव में घनानन्द ने सायास कभी नहीं कहा, जो कुछ भी कहा वह उनके हृदय की सहज अभिव्यक्ति बन कर प्रकट हुआ। घनानन्द के काव्य में हमें शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनो मिल जाते हैं फिर भी उन्होंने विरोधमूलक और साम्यमूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया है।

घनानन्द की शैली में जो अलंकारण है वह उनके व्यक्तित्व से ही प्रसूत है। अलंकारों के नितान्त वैयक्तिक प्रयोग, सूझ की मार्मिकता के साथ-साथ नवीनता और अनोखापन उन्हें ब्रज-भाषा के अद्वितीय कवि की श्रेणी में बिठा देते हैं। उनके काव्य में जहाँ हमें असाधारण भावुकता के दर्शन होते हैं वहीं उनके काव्य के कला-पक्ष को भी पर्याप्त समुन्नत पाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

क) घनानन्द के काव्य में संयोग सम्बन्धी कवित्तों की संख्या अधिक है। ( )

ख) घनानन्द के काव्य में वियोग सम्बन्धी कवित्त अत्यल्प है। ( )

ग) घनानन्द वास्तव में रूप सौन्दर्य के कवि हैं। ( )

घ) घनानन्द की भक्ति भावना पर सूफी भक्ति भावना का थोड़ा प्रभाव पड़ा है।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

(क) घनानन्द का रूप-सौन्दर्य वर्णन..... है।

1. स्वानुभूत है।
2. चमत्कारिक है।
3. माँसल है।

(ख) घनानन्द ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग..... किया है।

1. चमत्कार लाने के लिए
2. भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए
3. कविता को सजाने के लिए

(ग) घनानन्द ने अपने काव्य में मुख्य रूप से.....छंदों का प्रयोग किया है।

1. घनाक्षरी और हरि गीतिका
2. सोरठा और रोला
3. कवित्त और सवैया

(घ) घनानन्द की काव्य भाषा में प्रयुक्त लैंदा, सोहणां, गल्ला, जाणदा, जैसे शब्द

.....शब्द समूह हैं।

1. तत्सम
2. पंजाबी
3. तद्भव

3. घनानन्द की भक्ति भावना पर अपने विचार दीजिए ? (उत्तर पाँच पंक्तियों में)

14.6 सारांश

इस इकाई में आपने रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानन्द का अध्ययन किया। घनानन्द ने स्वानुभूत प्रेम की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति द्वारा रीतिकाल की रीति परम्परा का विरोध कर कविता को बँधे -बँधाये धारो से मुक्त किया घनानन्द का श्रृंगार वर्णन रीतिकालीन अन्य कवियों की तुलना में बिल्कुल भिन्नता लिए है, वह नायिका भेद, नखशिख वर्णन इत्यादि से मुक्त होकर स्वच्छन्द प्रेम का निरूपण करता है। क्योंकि उनके प्रेम निरूपण की मुख्य प्रेरणा उनकी प्रेमिका सुजान थी। सुजान के रूप चित्रण में कवि का मन रमा है। किन्तु घनानन्द के श्रृंगार वर्णन में सुजान का रूप चित्रण इतना मुख्य नहीं है जितना सुजान के वियोग का वर्णन। सुजान के साथ अधिक समय रहने का मौका घनानन्द को नहीं मिला। सुजान से अलग रहते हुए विरह की

जितनी भी मार्मिक अनुभूतियों से घनानन्द को गुजरना पड़ा, उन सबका उन्होंने स्वानुभूत वर्णन किया। वस्तुतः वह प्रेम के ही कवि हैं।

भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो घनानन्द को विकसित ब्रजभाषा की परम्परा मिली और उन्होंने परम्परा से प्राप्त ब्रज भाषा में दूसरी भाषाओं के शब्दों को समाहित कर ब्रजभाषा के शब्द भंडार को और अधिक समृद्ध किया। घनानन्द ने मुख्य रूप कवित्त और सवैया छंदो का प्रयोग किया। अलंकारों का प्रयोग उन्होंने चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं अपितु भावों में गहराई लाने के लिए किया।

14.7 शब्दावली

आनन	-	मुख
छके	-	तृप्त
लोल	-	चंचल
जलजावली	-	दो लट की मोतियों की माला
कलोल	-	क्रीड़ा
चखनि	-	नेत्र
लड़काय	-	ललक के साथ
कानन	-	जंगल
बाबरी	-	पागल
ताकिबौ	-	देखना
सौं	-	पुतलियों से
इकतार	-	एकटक
सोहन	-	सामने
जोहन	-	देखना
सकेलि	-	एकत्र करना
आन	-	अन्य, अशुभ
बिरंचि	-	विधाता
निस द्यौंस	-	रात दिन
अरी	-	अड़ना
मोरनि	-	मुड़ना
ढोरनि	-	ढलने की भाँति
बाहनि	-	बहते हुए
अवगाहनि	-	धँसना
उसांस	-	उच्छवास
ध्यावस	-	धैर्य
सींचति ही	-	स्पर्श होते ही

हियरा	-	हृदय
सियराई	-	शीतलता
हिराई	-	खो जाती है
अनंग की आँचनि	-	काम की अग्नि
अगिलाई	-	आग

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1) (क) (√)

(ख) (×)

(ग) (×)

(घ) (√)

2) (क) (आनन्द)

(ख) (1715)

(ग) (अहमद शाह अब्दाली)

(घ) (बहुगुनी)

3) घनानन्द के सम्प्रदाय पर टिप्पणी लिखिए (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए) ?

घनानन्द निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित थे। इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घनानन्द अपनी भक्ति साधना की चरम सीमा तक पहुँच गये थे। निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा लेने पर भक्त को 'सखीनाम' लेना पड़ता था अतः घनानन्द का भी सखी नाम रखा गया और वह नाम था 'बहुगुनी'।

अभ्यास प्रश्न - 2

1) (क) (×)

(ख) (√)

(ग) (√)

(घ) (×)

2) (क) (मानवीकरण अलंकार)

(ख) (उपमा अलंकार)

3) क- हे प्रियतम ! आपके सौन्दर्य की रीति अपूर्व है अर्थात आपके सौन्दर्य में विलक्षणता विद्यमान है इसे जितना ही देखो उतना ही यह नया प्रतीत होता है।

ख- हे कृष्ण ! प्रेम का मार्ग तो अत्यन्त सीधा और सरल है। इस प्रेम मार्ग में तनिक भी चालाकी और कुटिलता नहीं होती।

अभ्यास प्रश्न - 3

1) (क) (×)

(ख) (×)

(ग) (√)

(घ) (√)

2) (क) (स्वानुभूत है)

(ख) (भावों को तीव्रता प्रदान करने के लिए)

(ग) (कवित्त और सवैया)

(घ) (पंजाबी शब्द समूह)

3) घनानन्द जीवन के उत्तरार्ध में राधा-कृष्ण के प्रति भक्तिभाव रखकर भक्ति परक रचनाएँ करने लगे थे। सूफी भक्ति भावना का भी उन पर कुछ प्रभाव पड़ा था लेकिन सूफियों की इस मान्यता को कि-आत्मा पुरूष है और परमात्मा स्त्री-उन्होंने स्वीकार नहीं किया किन्तु सूफी काव्य धारा की विरहगत स्थितियों आत्मा की तड़प, बेचैनी, व्यग्रता को उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया।

14.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ल, राम देव, घनानन्द का काव्य, द मैकमिलन कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड ,नई दिल्ली,
2. बहुगुणा, शम्भु प्रसाद, साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग।
3. वर्मा, कृष्ण चन्द्र, घनानन्द रवीन्द्र प्रकाशन, ग्वालियर, आगरा, 1966
4. भाटी, देशराज सिंह, घनानन्द की वाग्विभूति भारतीभवन, आगरा।

14.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. त्रिपाठी,रामफेर, रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि, रामा प्रकाशन।
2. साजापुरकर, उषागंगाधर राव, हिन्दी रीतिकाव्य में सौन्दर्य बोध ,स्मृति प्रकाशन।
3. नगेन्द्र डॉ, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. घनानन्द का जीवन परिचय दीजिए ? तथा घनानन्द काव्य वर्णित प्रेम के स्वरूप पर प्रकाश डालिए ?
2. घनानन्द के शिल्प एवं विरह भावना पर प्रकाश डालिए ?

इकाई 15 मतिराम - परिचय, पाठ और आलोचना

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 रीतिबद्ध कवि मतिराम
15.3.1 कवि मतिराम-परिचय
15.3.2 मतिराम की रचनाएँ
15.4 मतिराम की कविता - संदर्भ सहित व्याख्या
15.5 मतिराम काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना
15.5.1 मतिराम की काव्यनुभूति - भाव पक्ष
15.5.2 भाषा, छंद एवं अलंकार
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि मतिराम के काव्य का अध्ययन करेंगें। अब तक आप रीतिकाल की तीनों प्रवृत्तियों (रीतिबद्ध,रीतिसिद्ध,रीतिमुक्त) से अवगत हो चुके हैं। जिन कवियों ने रस अलंकार आदि काव्यांगो के लक्षण के अनुसार श्रृंगार काव्य की रचना की उन्हें रीति बद्ध कहा गया,जिन कवियों ने लक्षण ग्रन्थ तो नहीं लिखे परंतु काव्य रचना करते हुए उनकी दृष्टि इन ग्रन्थों की रीति का अनुपालन करती रही उन्हें रीति सिद्ध कहा गया और जिन्होंने न तो लक्षण ग्रन्थ लिखे और न ही जो रीतिकालीन परम्परा से प्रभावित हुए बल्कि जिन्होंने स्वतन्त्र रूप में काव्य रचना की उन्हें रीति मुक्त कवि कहा गया। इस परिचय के बाद अब आप रीतिबद्ध कविता के एक प्रतिनिधि कवि मतिराम का परिचय इस इकाई में प्राप्त करेंगें। इसके बाद आपको उनकी रचनाओं से अवगत कराया जाएगा। तत्पश्चात् आप मतिराम के काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करेंगें।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम रीतिकालीन कवि मतिराम के जीवन परिचय के साथ साथ उनके काव्य की विशेषताओं का अध्ययन करते हुए उनकी कविताओं की सन्दर्भ सहित व्याख्या प्रस्तुत करेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप

- रीतिकालीन कवि मतिराम के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- मतिराम की रचनाओं से परिचित हो सकेंगे।
- मतिराम की कविताओं को समझ सकेंगे।
- मतिराम के काव्य की विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- रीतिकालीन कविता में मतिराम के महत्व को समझ सकेंगे।

15.3 रीतिबद्ध कवि मतिराम

इस तथ्य से आप अवगत होंगे कि रीतिबद्ध कवियों का प्रमुख उद्देश्य काव्यशास्त्र की शिक्षा देना था। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर वे ग्रंथ रचना किया करते थे, इसीलिए इनका नाम रीतिबद्ध रखा गया। डा. नगेन्द्र ने रीतिबद्ध के स्थान पर इनका नाम रीतिकार अथवा 'आचार्य कवि' रखा है परंतु यह नाम अधिक प्रचलित नहीं हुआ।

रीतिबद्ध कवियों के भी दो वर्ग हैं-1.सर्वांग निरूपक और 2. विशिष्टांग निरूपक।

जो कवि समस्त काव्यांगो- रस,अलंकार,छन्द, शब्दशक्ति आदि का विवेचन करते हैं उन्हें सर्वांग निरूपक कवि माना गया है तथा जो कवि सभी काव्यांगों को अपने विवेचन का विषय न बनाकर रस, अलंकार,छन्द आदि में से एक,दो या तीन अंगों को ही अपने विवेचन का

विषय बनाते हैं उन्हें विशिष्टांग निरूपक कवि माना जाता है। हमारे आलोच्य कवि मतिराम का स्थान इसी वर्ग में ठहरता है। श्रृंगार रस को रसशिरोमणि मानकर केवल उसी का सांगोपांग विवेचन करने वाले आचार्यों में मतिराम का नाम सबसे पहले लिया जाता है।

15.3.1 कवि मतिराम-परिचय-

मतिराम के जीवनवृत्त की सूचना प्रायः हिन्दी साहित्य के समस्त इतिहास ग्रन्थों में मिलती है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों- शिवसिंह सेंगर, गार्सा-द-तासी, जार्ज ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास आदि ने जो तथ्य मतिराम के जीवनवृत्त एवं उनकी रचनाओं के संबंध में दिये हैं, वह प्रसिद्ध ग्रन्थों पर आधारित है। मतिराम की जीवनी और साहित्य को लेकर दो शोध-प्रबन्ध भी लिखे गये हैं वे हैं महेन्द्र कुमार का "मतिराम- कवि और आचार्य" और त्रिभुवन सिंह का "महाकवि मतिराम"। इन दोनों ग्रन्थों में लगभग सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। परन्तु अनेक प्रमाण होते हुए भी इन दोनों विद्वानों ने मतिराम के नाम पर मिलने वाले समस्त ग्रन्थों के रचियता एक ही और प्रसिद्ध कवि मतिराम को माना है। लेकिन भगीरथ मिश्र, मतिराम के नाम के दो कवियों को स्वीकार करते हैं और मतिराम के नाम से मिलने वाली रचनाओं में से रसराज, ललितललाम, फूलमंजरी और मतिराम सतसई को प्रसिद्ध कवि मतिराम की रचनाऐं एवं शेष चार अर्थात छंदसार पिंगल या वृत्तकौमुदी, अलंकार पंचाशिका, साहित्यसार, लक्षण श्रृंगार को दूसरे मतिराम की रचनाएँ मानते हैं। इस संबंध में तर्क देते हुए वे कहते हैं कि-

1. मतिराम का जन्म-समय १६03 ई. (स0 १६६0) के लगभग आता है और वृत्तकौमुदी की रचना उन्होंने १७0१ ई. (स0१७५८) में की और कुछ लोगों का विचार है कि 'साहित्यसार' आदि की रचना और भी बाद में हुई। एक ही व्यक्ति के सभी ग्रन्थ मानने पर वृत्तकौमुदी की रचना 98 वर्श की आयु में और अन्य ग्रन्थों की रचना उसके भी बाद ठहरती है। इस अवस्था में मतिराम का श्रीनगर (गढवाल) के राजा स्वरूप साहि बुन्देला के आश्रय में जाना और छन्दसार-संग्रह या वृत्तकौमुदी की रचना करना अधिक संगत नहीं जान पड़ता।

2. दोनों मतिरामों के समयों में ही थोड़ी भिन्नता नहीं, वरन् दोनों का कार्यक्षेत्र भी भिन्न रहा है। एक मतिराम का आगरा, बूँदी आदि था तथा दूसरे मतिराम का पहाड़ी क्षेत्र कुमाऊँ गढ़वाल आदि था।

3. दोनों की भाषा-शैली में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। जहाँ रसराज और ललित ललाम के रचयिता मतिराम की भाषा समर्थ, विदग्ध, अलंकार एवं भाव व्यंजना अद्भुत क्षमता सम्पन्न तथा छन्द प्रवाह पूर्ण सुन्दर, मोहक गतिवाले हैं वहाँ वृत्तकौमुदीकार की भाषा सामान्य, छन्द शिथिल तथा शैली अभिधात्मक है।

4. दोनों मतिरामों के वंश परिचय भिन्न-भिन्न हैं और दोनों का संबंध भिन्न गोत्रों के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है।

5.यदि अलंकार पंचाशिका और वृत्तकौमुदी या छंदसार संग्रह ग्रन्थ बाद में प्रसिद्ध मतिराम द्वारा अधिक परिपक्व अवस्था में लिखे गये होते तो वे निश्चय ही वैचारिक और भाषा संबंधी अधिक प्रौढता का द्योतन करते परन्तु ऐसा नहीं है।

15.3.2 गोत्र: पितृनाम एवं बंधु

अधिकांश विद्वान (शिव सिंह, विश्वनाथ प्रसाद, भगीरथ मिश्र) महाकवि मतिराम को तिकवॉपुर निवासी, रत्नाकर अथवा रतिनाथ पुत्र, कश्यपगोत्रीय और चिंतामणि एवं भूषण का सहोदर मानने के पक्ष में हैं। लेकिन भगीरथ प्रसाद दीक्षित, डा. महेन्द्र कुमार के अनुसार मतिराम वत्सगोत्रीय, बनपुर में जन्म लेने वाले विश्वनाथ पुत्र हैं और 'चिन्तामणि' और 'भूषण' कोई भी उनका सहोदर नहीं था।

मतिराम ने किसी भी ग्रन्थ में अपना कोई परिचय नहीं दिया। अतः इनके जन्म समय के संबंध में कुछ कहना कठिन है 'फूलमंजरी' के आधार पर इनका जन्म समय कृष्णबिहारी मिश्र ने १६02 ई. (सं. १६६0 वि0) के लगभग माना है। "फूलमंजरी" इनकी पहली रचना है जो जहाँ गीर की आज्ञा से लिखी गई। जहाँ गीर अपने राज्यारोहण का १६ वाँ जलूसी वर्ष आगरा में मना रहा था, उसी समय के आस-पास इसकी रचना हो सकती है। वह समय १0३0 हिजरी या सं. १६७८ था। मतिराम की यह किशोरावस्था की रचना मानने से उनकी अवस्था उस समय १८ वर्ष की रही होगी। अतः मतिराम का जन्म १६02 ई. (१६६0 वि0) ठहरता है।

15.3.3 मतिराम की रचनाएँ

मतिराम का अधिकांश समय बूँदी दरबार में व्यतीत हुआ था और वहाँ के हाड़ा राजाओं की वीरता और चरित्र का वर्णन इन्होंने अपने अलंकार ग्रंथ 'ललित ललाम' में किया है। महाकवि मतिराम के जिन ग्रन्थों का पता अब तक लगा है, उनका परिचय इस प्रकार है-

1) फूलमंजरी- इस ग्रंथ में ६0 दोहे हैं। एक दोहे को छोड़कर 59 दोहों में फूलों का वर्णन है। प्रत्येक दोहे में एक फूल का कथन है। इनमें कवि की प्रतिभा का विशेष चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता है। फिर भी वर्णनश शैली और शब्दमाधुर्य आदि सभी गुणों की दृष्टि से इसके दोहे मतिराम की अन्य रचनाओं के समान ही हैं। उक्तिचमत्कार में जो कमी दिखलाई देती है वह इस अनुमान को पुष्ट करती है कि यह पुस्तक कवि की प्रथम रचना है।

2) रसराज - इस ग्रंथ में श्रृगार रस के अंतर्गत नायिका भेद का वर्णन है। यह किसी राजा के आश्रय में नहीं लिखा गया है। कवि मतिराम का यह सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ हैं, क्योंकि इस पर कई उत्कृष्ट कवियों ने टीकाएं लिखी हैं। चरखारी के राजा रतनसिंह के आश्रित बख्तेश कवि ने रसराज पर एक उत्कृष्ट टीका लिखी है। इस ग्रंथ का रचनाकाल सं. 1690 और 1700 के बीच में माना जाता है।

3) छंदसार पिंगल- कहा जाता है कि श्रीनगर के फतेहसिंह बुँदेला के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई थी। इसका निर्माण काल अनिश्चित है, पर अनुमान किया जाता है कि यह संभवतः सं. 1700 और 1790 के बीच में लिखा गया।

4) ललित ललाम - यह अलंकारशास्त्र संबंधी ग्रंथ है। बूँदी के महाराजा भावसिंह जी के लिए इस ग्रंथ की रचना हुई है। इसका रचना काल अनुमानतः 1718 और 1719 संवत् के बीच का हो सकता है।

5) मतिराम सतसई - यह पुस्तक किन्हीं भोगराज नाम के राजा के लिए मतिराम जी ने लिखी थी। इस ग्रंथ का भी समय अनिश्चित् है। मतिराम ग्रंथावली (सं. कृष्ण बिहारी मिश्र) के अनुसार इसकी रचना ''रसराज'' और ''ललित ललाम'' के बाद की है। संभवतः यह ग्रंथ संवत् 1725 और 1735 के बीच का रहा होगा।

6) सहित्य सार - यह 90 पृष्ठों का छोटा सा ग्रन्थ है। इसमें नायिका भेद का वर्णन है। यह प्रति संन् 1837 की लिखी हुई है।

7) लक्षण श्रृंगार - यह 14 पृष्ठों का ग्रन्थ है। इसमें भावों और विभागों का वर्णन है। इसकी रचना भी संभवतः 1745 के लगभग हुई होगी।

8) अलंकार पंचाशिका - यह ग्रन्थ संवत् 1745 में कुमाऊँ के राजा उदोतचंद के लिए कवि मतिराम ने लिखा था।

अभ्यास प्रश्न - 1

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइहए ?

   (क) मतिराम सर्वांग निरूपक कवि थे।
   (ख) मतिराम विशिष्टांग निरूपक कवि थे।
   (ग) मतिराम रीतिमुक्त कवि थे।
   (घ) मतिराम रीतिसिद्ध कवि थे।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-

(क) ..... के अनुसार मतिराम नाम के दो कवि हुए हैं।

(ख) .....मतिराम की पहली रचना है।

(ग) कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार मतिराम का जन्म.....के लगभग आता है।

(घ) ललित ललाम मतिराम का ..... संबंधी ग्रन्थ है।

3. मतिराम के ग्रंथ फूल मंजरी पर प्रकाश डालिए। (उत्तर पाँच पंक्तियों में दीजिए) ?

15.4 मतिराम की कविता -

आपने मतिराम की रचनाओं के विषय में जानकारी प्राप्त की। अब हम आपको यह बताना चाहेंगे कि मतिराम की कविता की व्याख्या किस प्रकार की जाती है। कुछ पदों की व्याख्या हम यहाँ कर रहे हैं। इसकी सहायता से आप मतिराम के अन्य पदों की भी व्याख्या कर सकेंगे।

(1)

पारावार पीतम को प्यारी है मिली है गंग
बरनत कोऊ कवि-कोविद निहारिकै।
सो तो मतो मतिराम के न मन मानै निज
मतिराम सौं कहत यह वचन विचारिकै।
जरत बरत बड़वानल सौं बारिनिधि
वीचिनि के सोर सो जनावत पुकारिकै।
ज्यावत विरंचि ताहि प्यावत पियूष निज
कलानिधि-मं ल-कमं ल तें ारिकै।।

संदर्भः - प्रस्तुत पंक्तियाँ महाकवि मतिराम काव्य रचना ''ललित ललाम''से उद्धृत हैं।

प्रसंगः - सागर से गंगा के मिलन को एक अलग दृष्टि से देखते हुए कवि मतिराम कहते हैं -

व्याख्याः – प्राय: कवि कहते हैं कि वह देखो भगवती जाह्नवी प्रियतमा के रूप में अपने प्रियतम सागर से मिल रही है। मतिराम कवि को यह कथन ठीक नहीं लगता। उनका मत तो यह है कि बेचारा समुद्र बड़वानल की ज्वाल-मालाओं से झुलसा जा रहा है। ब्रह्मा से इस भयंकर आपदा से ऋण पाने के लिए पुकार-पुकार कर प्रार्थना कर रहा है। सागर तरंगों का करूणापूर्ण शब्द इसी प्रार्थना की सूचना देता है। ब्रह्मा को भी दया आ गई है। यह बड़ा-सा-चन्द्रमा उनका कमंडल है। इसमें लबालब पीयूष भरा हुआ है झुलसते हुए समुद्र को जिलाने के लिए उन्होंने इस कमंडल से सुधा ढरका दी है। यह गंगा नहीं है, वही ब्रह्मा के चंद्रकमंडल से गिरी सुधाधारा है, जिसे समुद्र पान कर रहा है।

विशेषः - इस पद में कवि ने अपह्नुति का सुन्दर प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास की छटा भी देखते बनती है जैसे –

(2)

पारावार पीतम, कोऊ कवि कोविद, वचन विचारिकै।
रावरे नेह को लाज तजौ अरू गेह के काज सबै बिसराए।

ारि दियो गुरू लोगन को रू गाम चबाय में नाम धराए।
हेत कियो हम जो तो कहा तुम तो मतिराम सबै बहराए।
कोऊ कितेक उपाय करो कहूँ होत हैं आपने पीउ पराए।।

संदर्भः - प्रस्तुत पंक्तियाँ रीतिकालीन कवि मतिराम के प्रसिद्ध ग्रन्थ रसराज से ली गई हैं। रसराज में श्रंगार रस के अंतर्गत नायिका भेद का वर्णन है।

प्रसंगः - परकीया खंडिता नायिका नायक को मृदुल फटकार देते हुए कहती है।

व्याख्याः - आपके स्नेह के कारण मैने लज्जा का त्याग किया। घर के सब काम काज भूल बैठी। गुरूजनों का भय भुला दिया। गाँव में अपने विषय में बदनामी होने दी। मैंने यह सब आपके हित की बातें की भी तो क्या हुआ? आपने तो सभी भुला डाला। सच है, कोई लाख प्रयत्न कर ले पराया प्रियतम भी कभी अपना हुआ है।

विशेषः - ब्रज भाषा के कवि मतिराम ने अर्थातरन्यास अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। अंतिम पद में जो झिड़की है, वह बड़ी सुकुमार मृदुल एवं रसीली है। नायिका ने नायक के लिए जो बदनामी झेली उसका नायक पर कोई असर नहीं हुआ अतः अवज्ञा अलंकार भी पद में विद्यमान है।

(3)

दोऊ अनंद सौं आँगन माँझ बिराजै असाढ़ की साँझ सुहाई।
प्यारी को बूझत और तिया को अचानक नाऊँ लियो रसिकाई।
आई उनै मुँह मैं हँसि कोपि प्रिया सुरचाप-सी भौंह चढ़ाई।
आँखिन तैं गिरे आँसू के बूँद सुहासु गयो उड़ि हंस की नाई।।

संदर्भः प्रस्तुत पंक्तियाँ रीतिबद्ध कवि मतिराम के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रसराज' से उद्धृत हैं।

प्रसंगः - पति के मुख से अन्य स्त्री का नाम सुनकर नायिका मान करती है। मानवती नायिका का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं।

व्याख्याः - असाढ की सुहानी संध्या में नायक और नायिका आनंद से आँगन में बैठे थे। बातों ही बातों में नायक के मुँह से अन्य स्त्री का नाम निकल गया नायिका कुपित हो गई। उसकी भौंहे इन्द्र धनुष के समान चढ़ गई। आँसू पावस ऋतु की बूँदों के समान बरसने लगे हँसी हंसके समान उड़ गई।

विशेष - इस सवैया में कवि ने उपमा का सुंदर प्रयोग किया है। मानवती नायिका की भौहे पावन ऋतु में दिखाई पड़ने वाले इन्द्र धनुष के समान चढ़ गई और आँसू बूँदों के समान गिरने लगे।

(4)

पावस भीति वियोगिनी बालनि यों समुझाय सखी सुख साजैं।
जोति जवाहिर की मतिराम नहीं सुरचाप छिनौं छवि छाजैं।
दंत लसै बकपाँति नहीं धुनि दुंदुभी की न घने घन गाजैं।
रीझिकै भाऊ नरिंद दिये कविराजनि के राजराज बिराजैं।।

संदर्भः- प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि मतिराम के ग्रंथ 'ललित ललाम' से उद्धृत है। ललित ललाम कवि का अलंकार शास्त्र संबंधी ग्रंथ है।

प्रसंगः- पावस-ऋतु के विभिन्न उपादानों पर बूँदी नरेश रावराजा भाऊसिंह के विशालकाय हाथियों का आरोप कर सखियाँ विरह विदग्ध नायिकाओं से कहती हैं -

व्याख्याः- पावस-ऋतु में विरह पीड़िता बालाओं को चतुराई से समझते हुए कहती हैं कि तुम सामने जिनको मेघ समझ कर विकल हो रही हो, वे वास्तव में मेघ नहीं बल्कि रावराजा भाऊसिंह के दिए हुए हाथियों का समूह है। वियोगिनियों के पूछने पर कि-फिर यह इन्द्रधनुष कैसा ? बकपंक्ति कैसी ? और वर्षाकाल में होने वाला गंभीर गर्जन कैसा ! सखियाँ इन शंकाओं का भी समाधान करते हुए कहती हैं कि जिन बहुमूल्य जवाहरात से गजों के शरीर सजाए गए हैं, उन्हीं की विविध रंगों की ज्योति से इन्द्रधनुष का भ्रम हो रहा है उसी प्रकार हाथियों की दाँतों की पंक्तियाँ बक पंक्ति का भ्रम उत्पन्न कर रही है और दुंदुभी का शब्द ही घोर घनगर्जन के समान सुनाई पड़ता है।

विशेषः- प्रस्तुत सवैये में वास्तविक पावस-ऋतु को छिपाकर हाथियों का वर्णन होने से अपह्नुति अलंकार है। प्रस्तुत छंद बूँदी नरेश की दान वीरता को भी स्पष्ट करता है।

(5)

सुनि-सुनि गुन सब गोपिकनि समुभयो सरस सवाद।
कढ़ी अधर की माधुरी मुरली है करि नाद।।

संदर्भः- प्रस्तुत छंद मतिराम सतसई से उद्धृत है। मतिराम सतसई के दोहों में एक से बढ़कर एक भाव विद्यमान है।

प्रसंगः- श्रीकृष्ण की मुरली से निकलने वाली रागिनियों की सरलता से आह्मदित होकर गोपियाँ आनंदित हो रही हैं -

व्याख्याः- श्रीकृष्ण की मुरली बज रही है। उसका मधुर स्वर गोपियों के कानों में गूँज रहा है। इस सरस नाद का स्वर उन्हें आनन्दमय अनुभव दे रहा है। उनका तो कहना है कि श्यामसुंदर के अधरों की माधुरी ही इस नाद रूप में निकलकर चारों ओर व्याप्त हो रही है।

विशेषः - कवित्त और सवैया जैसे लंबे छंदों की भाँति मतिराम जी ने दोहे जैसे छोटे छंद में भी भावों को पूर्णता प्रदान की है। प्रस्तुत दोहे में अनुप्रास की सुंदर छटा होने के साथ ही मुरली के मधुर स्वर को आस्वाद्य बिम्ब के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(6)

करौ कोटि अपराध तुम वाके हिये न रोष।
नाह-सनेह-समुद्र में बूड़ि जात सब दोष।

संदर्भः-प्रस्तुत दोहा रीतिकालीन कवि मतिराम की प्रसिद्ध रचना मतिराम सतसई से उद्धृत है।

प्रसंगः- नायिका के हृदय की उदारता का वर्णन करते हुए कोई सखी नायक से कहती है।

व्याख्याः- आप चाहे कितना ही अपराध कर लैं, पर वह रूष्ट नहीं होगी, क्योंकि प्रिय के स्नेह रूपी सागर में सभी दोष डूब जाते हैं। वास्तविक स्नेह दोषों को नहीं देखता।

विशेषः- रूपक अलंकार के साथ साथ अनुप्रास भी उल्लेखनीय है।

(7)

ज्याल जाल बिज्जुलि छटा घटा धूम अनुहारि।
विरहिनि जारनि को मनो लाई मदन देंवारि।

संदर्भः- प्रस्तुत दोहा रीतिकाल के सुकुमार कवि मतिराम की रचना 'मतिराम सतसई' से लिया गया है। सतसई में विरह का वर्णन बहुत उत्कृष्ट हुआ है। बिहारी तथा देव का विरह वर्णन तो अच्छा है ही, पर मतिराम जी ने भी विरह वर्णन में अपनी प्रतिभा का अच्छा चमत्कार दिखाया है।

प्रसंगः- पावस-ऋतु में विरहिणी की दशा का वर्णन इस प्रकार है -

व्याख्याः- वर्षा क्या आई, मानो कामदेव ने विरहिणी को जलाने के लिए दावाग्नि जला दी। ये घटाएँ बिल्कुल धुएँ के अनुरूप हैं तथा बिजली की चमक दावानाल की ज्वालमालाओं की समता करती हैं।

विशेषः- ब्रज भाषा के कवि मतिराम ने उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग कर 'पावक के प्रथम पयोद' का बिम्ब प्रस्तुत कर नायिका के विरह का वर्णन किया है।

15.5 मतिराम काव्य का विश्लेषण एवं आलोचना

मतिराम उस युग के कवि हैं जिसे हम 'रीतिकाल' या 'श्रृंगारकाल' कहते हैं। युग के बंधनों में बंधे रहकर भी भावचित्र की सहज अभिव्यक्ति के कारण वे उत्कृष्ट और सच्चे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं। भावुक और सहज कवि होते हुए भी अपनी रसमयी भावनाओं के अभिव्यंजनार्थ 'मतिराम' ने जो मार्ग ग्रहण किया उसमें श्रृंगारी भावना के प्रति विशेष मोह और आसक्ति थी। उनके कवि कर्म पर विचार करते हुए यदि हम उनके अलंकार और छंद की कृतियों केा छोड़ दे तो कह सकते हैं कि वे सामंतयुगीन श्रृंगारी प्रवृत्ति के कवि थे। संभवतः उनका प्रिय विषय श्रृंगार था इसीलिए उन्होंने अपने श्रृंगारी काव्यसर्जन के लिए 'रसराज' का वह माध्यम अपनाया जो उस युग रूढ़ लक्षण ग्रन्थों के प्रकाश में अपना पथ बनाता रहा।

15.5.1 मतिराम की काव्यनुभूति - भावपक्ष

श्रृंगारिकता - 'रसराज' मतिराम का मुख्य श्रृंगारी ग्रंथ है। रीतिश्रृंखला के आरम्भिक ग्रंथों में यह बड़ा ही लोकप्रिय हुआ। मुक्तक कविता में भावमयी कल्पना, सहज प्रतिभा और मनोहारी अभिव्यक्ति की शक्ति से समन्वित 'मतिराम' का रसराज युग की उत्तम रचना हैं। इसमें कवि ने नायिका भेद के अतिरिक्त भाव की परिभाषा दी है। 'भाव' के लक्षण में 'केशव' ने आखों, मुँह और वाणी से मन की बात प्रकट करना बताया पर मतिराम ने भाव प्रकट करने वाले उपकरणों में परिधि का विस्तार किया है। उन्होंने कहा है -

''लोचन, बचन, प्रसाद, मृदु हास, भाव, धृति, मोद।
नते प्रगटत जानिये वरनहि सुकवि विनोद''।।

नयिकाभेद संबंधी इनके उदाहरण अत्यंत सरस, रमणीय और हृदयस्पर्शी हैं। उदाहरणों की भावमय और चारूता में मतिराम का कवित्व निखर उठा है। लज्जावती मुग्धा नायिका का एक चित्र इस प्रकार है -

''अभिनव जौवन-ज्योति सौं जगमग होत विलास।
तिय के तनु पानिप बै, पिय के नैननि प्यास।।

नायिका के अवयव वर्णन में मतिराम ने मुख, कपोल, वेनी, नेत्र, अधर, कपोल, कटि, हाथ पाँव आदि का वर्णन किया है। परन्तु उनकी सतसई में सर्वाधिक वर्णन नेत्रों का है -

''भौंह कमान कटाक्ष सर समरभूमि बिचलै न।
लाज तजेहूँ दुहँन के सजल सुभट से नैन।।''

× × ×

''मानत लाज लगाम न हिं नैक न गहत मरोर।
होत लाल लखि बाल के दृगतुरंग मुँह जोर।।''

संयोग श्रृंगार के वर्णन में मतिराम ने ऐसे अनेक चित्रों को अंकित किया है, जो अपरिष्कृत और अश्लील कहे जा सकते हैं। वियोग श्रृंगार का वर्णन भी कवि ने किया है। विरह के पूर्वराग, मान और प्रवास के तीनों पक्षों के उन्होंने 'रसराज' के अतिरिक्त 'सतसई' में भी बहुत से चित्र खींचे हैं। परम्परागत होने पर भी मान के ये रूप चित्र (विशेषतः स्वकीयासंबद्ध) बड़े ही मधुर और सरल हैं -

''बाल सखिन की सीख तैं मान न जानति ठानि।
बिन पिय-आगम भौन में बैठी भौंहैं तानि।।''

संचारी भावों के अंकन में 'मतिराम' अत्यधिक समर्थ हैं। औत्सुक्य, अभिलाषा, स्वप्न, चिंता, और स्मृति तथा दूसरे पक्ष में उन्माद, व्याधि, जड़ता और उद्वेग आदि के सरस चित्रों के वर्णन में उनकी प्रतिभा अप्रतिम है। मुख्यतः 'रसराज' में इन्हें देखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह कि आलंबन, उद्बीपन, सात्विक भाव, अनुभाव, संचारी भाव आदि के बहुत ही सजीव, अकृत्रिम और प्रभावशाली चित्र 'मतिराम' ने अपनी कविता में चित्रित किये हैं।

सामंती परिवेश में रहकर भी इनकी रचना में ग्राम्य जीवन के कुछ चित्र मिल जाते हैं। ऐसा लगता है कि गाँव के सरल जीवन, सहज आकषर्ण ने उनको प्रभावित किया है। बाग-बगीचों और खेत खलिहानों के बीच गाँव की किशोरी और उसके प्रेम को उपस्थित करने में 'मतिराम' के श्रृंगार का विशेष आग्रह दिखाई देता है। मतिराम के कुछ दोहों में विशेषतः - सतसई के छंदों में ऐसे अनेक अंश हैं, जिनमें गाँव के बीच प्रणय, की सहज अनुभूतियों के सुन्दर चित्र खींचे गये हैं -

खेत निहारो धान को यों बूझति मुसिक्याई।
यहौ हमारे पिय कहौ सघन ज्वारि दरसाई।।

समंती श्रृंगार के बीच रहते हुए और उसमें डूबे रहने पर भी 'मतिराम' की भावुक वृत्ति, गाँव की नायिकाओं के सच्चे भाव और भोले सौन्दर्य पर न्योछावर थी।

'मतिराम' की नायिकाओं में स्वकीया का वर्णन विशेष उल्लास के साथ किया गया है। उन्होंने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा - ये तीन भेद स्वकीया के माने हैं। उनकी श्रृंगारी तृषा को जो संतोष स्वकीया और गृहवधुओं के विलास और कामकेलि के वर्णन में प्राप्त होता था, वह परकीया प्रसंग में नहीं।

वीरभाव - श्रृंगार के अतिरिक्त वीर भाव की अभिव्यक्ति मतिराम ने की है। 'ललित ललाम' में उन्होंने शैर्य और पराक्रम के भाव के चित्र खींचे हैं। आरम्भिक नृपवंश के वर्णन में उन्होंने युद्धोत्साह और दानोत्साह आदि के माध्यम से 'ललित ललाम' वीर रस की अच्छी अभिव्यक्ति की है। मतिराम वीर रस सम्पृक्त आलंबन के ओजमय चित्रण सहज उत्साह के साथ करते जान पड़ते हैं -

'मंदर-बिलंद मंद गति के चलैया, एक
पल में दलैया, पर-दल बलखनि के;
मदजल भरत मुकत जरकस झूल,
झालरिनि झलकत झुं मुकतानि के।
ऐसे गज बकसे दिवान दुहूँ दीननि कौं;
'मतिराम' गुन बरनैं उदार पानि के;

फौज के सिंगार हाथी और महिपालन के
मौज के सिंगार भावसिंह महादानि के।

प्रकृतिः - प्रकृतिवर्णन के प्रसंग में मतिराम की काव्यरूचि परंपराभुक्त रूढ़ि का ही अनुगमन करती है। वे वस्तुतः उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति के मादक और सौन्दर्य को देखते हैं। श्रृंगारी सुख दुख बोधों को बढ़ाने और तीव्र करने वाले उद्दीपन विभाव के रूप में उन्होंने अधिकांश रीतिकवियों के समान प्रकृति का उपयोग किया। संयोग वियोग परक श्रृंगार चित्रों के अंकन में पृष्ठभूमि सी धरती और प्रकृति-मतिराम के परम्पराग्रस्त वर्णनों में केवल चित्रपट तक ही रह गई है। मानव अंतः करण की रागवृत्तियों के उद्भावन और विभावन में प्रकृति का आधार आलंबन बनकर अंकित होने को गौरव न पा सका। वर्षा, वसंत, आदि जैसे मादक ऋतुवर्णन के अतिरिक्त ग्रीष्म, शरद और शिशिर आदि के भी चित्र 'मतिराम' की कविता में उपलब्ध होते हैं।

15.5.2 भाषा, अलंकार और छंद

किसी भी सहित्यकार की भावों की अभिव्यक्ति का साधन भाषा होती है भावों और विचारों की वाहक भाषा ही होती है। भाषा प्रयोग की दृष्टि से 'मतिराम' प्रायः अत्यन्त सफल हैं। उनकी भाषा प्रायः अपने अकृत्रिम पर साथ ही अलंकार मंडित रूप को लेकर चलती है। उनकी भाषा में शब्दों के अर्थ, कृत्रिम और स्वामाविक रूप से उक्ति को सहजता और माधुर्य देते चलते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में - ''मतिराम की भाषा में आनुप्रासिक शब्द चमत्कार और अर्थालंकारगत नीरस अर्थचमत्कृति के लिए अशक्त शब्दों की भरती प्रायः कहीं नहीं मिलती। उनके शब्द और भाव - अधिकतः भाव व्यंजन के उपकरण उत्पादन के रूप में प्रयुक्त हैं'' आडंबरहीनता और भाव के प्रवाह से युक्त उनकी भाषा बनावटीपन से प्रायः दूर रहती हुई, काव्यसौष्ठव की उत्कृष्ट कला का स्वरूप अंकित करती है।फारसी काव्यपरंपरा के प्रभाव से उनकी रचना में इलाज, बिरची, खलक, दरिआव, गनीम, जहान, गुमान, मजलिस आदि अनेक अरबी तथा फारसी शब्द मिलते हैं। पर प्रचलित और सटीक होने से प्रयोग सामान्यतः भावबोध में सहायक हैं। छंदयोजना की दृष्टि से मतिराम का विस्तार अत्यन्त सीमित है। छप्पय और सोरठा के सीमित प्रयोग को यदि छोड़ दिया जाय तो उनके प्रिय छंद तीन ही हैं - सवैया, कवित्त और दोहा। इनमें भी सवैया उनका सर्वाधिक प्रिय छंद है।

मतिराम ने प्रायः सभी अलंकारों को अपने काव्य में समाहित किया है लेकिन अलंकारों का प्रयोग बड़ा संयत बन पड़ा है।

कुछ उदाहरण देखिये -

ऐरे मतिमंद चंद धिक है अनंद तेरो
जो पै विरहिनि जरि जात तेरे ताप ते।
तूँ तो दोषाकर दूजे धरे है कलंक उर
तीसरे कपालि संग देखो सिरछाप ते।
कहैं 'मतिराम' हाल जाहिर जहान तेरो
बारूनी के बासी भासी रबि के प्रताप ते।
बाँध्यो गयो मथ्यो गयो पियो गयो खारो भयो
बापुरो समुद्र तो कुपूत ही के पाप ते।।

दीपक अलंकार -

सकल सहेलिन के पीछे पीछे ोलति है
मंद-मंद गौन आज आपु ही करति है।
सनमुख होत सुख होत मतिराम जब
पौन लागे घूँघट के पट उघरत है।
जमुना के तट बंसीबट के निकट
नंदलाल पै सँकोचन ते चाह्यो ना परत है।
तन तो तिया को बर भाँवरे भरत मन
साँवरे बदन पर भाँवरे भरत है।।

निष्कर्षतः मतिराम रीतिकाल के ऐसे कवि हैं - जो भावुकता के विचार से युगप्रभावित होकर भी उत्कृष्ट कलाकार है। काव्य शिल्प और अभिव्यंजना के विचार से उनकी कविता में उत्कर्ष और लालित्य का स्थान अक्षुण्ण है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगा हए ?

(क) मतिराम मुख्यतः श्रृंगारी प्रवृत्ति के कवि थे।

(ख) मतिराम की कविता में ग्राम्यजीवन के चित्र नहीं हैं।

(ग) मतिराम ने स्वकीया की अपेक्षा परकीया नायिका का चित्रण अधिक उल्लास से किया है।

(घ) मतिराम की काव्य-भाषा में फारसी के शब्द विद्यमान हैं।

2. रिक्त स्थान में सही विकल्प लिखिए -

(क) .....मतिराम का प्रिय छंद है

(सोरठा,छप्पय,सवैया,हरिगीतिका)

(ख) मतिराम ने युद्धोत्साह और दानोत्साह के माध्यम से अपने ग्रन्थ .....में वीररस की अच्छी अभिव्यंजना की है। (साहित्य सार,छंदसार पिंगल,रसराज,ललित ललाम)

(ग) मतिराम ने प्रकृति का.....रूप में ही चित्रण किया है।

(उद्दीपन,आलम्बन, दूती के रूप में, रहस्यात्मक रूप में)

(घ) मतिराम का मुख्य श्रंगारी ग्रन्थ.....है।

(फूलमंजरी,मतिराम सतसई, रसराज,लक्षण श्रृंगार)

15.6 सारांश

मतिराम रीतिकाल की रीतिबद्ध परम्परा के सुकुमार कवि माने जाते हैं। यद्यपि उन्होंने काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार कई ग्रंथ लिखे, फिर भी इनकी अलंकृति बड़ी सहज और मार्मिक है। सौन्दर्य और श्रृंगार भावना की इनकी अभिव्यक्तियाँ अनूठी हैं। सामंती परिवेश में रहते हुए भी ग्राम्य जीवन के सुन्दर चित्र इनकी कविता में मिल जाते हैं। मतिराम ने प्रकति का चित्रण परम्परा रूप में किया है। उपर्युक्त विशेषताओं के कारण सहज प्रतिभा के धनी कविवर मतिराम रीतियुग के एक उत्कृष्ट कवि माने जाते हैं।

15.7 शब्दावली

पारावार	-	समुद्र
बरनत	-	वर्णन
निहारिकै	-	देखकर
ज्यावत	-	जीवित करते हैं
कलानिधि	-	चन्द्रमा
रावरे	-	तुम्हारे
चवाय	-	चुगली करना
सुरचाप	-	इन्द्रधनुष
नरिंद	-	नरेश
बूड़ि	-	डूब जाता है
बिज्जुलि	-	बिजली
दँवारि	-	दावाग्नि

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - 1

1) (क) (×)

(ख) (√)

(ग) (×)

(घ) (×)

2) (क) (भगीरथ मिश्र)

(ख) (फूलमंजरी)

(ग) (1602ई. संन् 1660 वि0)

(घ) (अलंकार शास्त्र संबंधी)

3. फूल मंजरी मतीराम की पहली रचना है। इस ग्रंथ में 60 दोहे हैं। एक दोहे को छोड़कर शेष सभी दोहों में फूलों का वर्णन है। प्रत्येक दोहे में एक फूल का कथन है।फूलमंजरी में कवि प्रतिभा का विशेष चमत्कार नही दिखाई देता है। फिर भी वर्णन शैली और शब्द माधुर्य की दृष्टि से यह रचना अच्छी है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1) (क) (√)
(ख) (×)
(ग) (×)
(घ) (√)

2) (क) (सवैया)
(ख) (ललित ललाम)
(ग) (उद्दीपन)
(घ) (रसराज)

3) मतिराम की नायिकाओं में स्वकीया का वर्णन विशेष उल्लास के साथ किया गया है। मतिराम को स्वकीया नायिका विशेष रूप से आकर्षित करती है। स्वकीया के उन्होंने तीन भेद

माने हैं - मुग्धा, मध्या, और प्रौढ़ा, परकीया नायिका का चित्रण भी उनके काव्य में मिलता है। लेकिन स्वकीया के चित्रण में उनको अपार संतोष मिलता है।

15.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, कृष्णबिहारी सं. , मतिराम ग्रंथावली नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
2. मिश्र, भगीरथ, रीतिकाव्य नवनीत ग्रन्थम, रामबाग कानपुर-12
3. गुप्त, राकेश, रीति-रसचतुर्वेदी डा. ऋषिकुमार सं. ग्रन्थायन।
4. गुप्त, जगदीश, रीति-काव्य संग्रह,ग्रन्थम प्रिंटिंग प्रेस, साकेत नगर, कानपुर - 14 (1983)

15.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. त्रिपाठी,रामफेर, रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि रामा प्रकाशन,
2. साजापुरकर, उषागंगाधर राव , हिन्दी रीतिकाव्य में सौन्दर्य बोध स्मृतिप्रकाशन
3. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मतिराम की श्रृंगार भावना पर एक निबन्ध लिखिए ?
2. मतिराम की काव्य भाषा पर प्रकाश डालिए ?
3. मतिराम के काव्य की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ?
4. मतिराम के जीवन वृत्तांत पर प्रकाश डालिए ?